भारत के वन्य पशु

श्रीराम शर्मा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत-सरकार



शेर

प्रथम संस्करण

मार्च 1988

Srinagar

29088

विषय-सूची

● प्रस्तावना

हमारा देश जंगली जीवों के लिए प्रसिद्ध है। हमारे देश के अतिरिक्त अन्य देशों में भी बड़े ही विचित्र तथा आकर्षक जंगली जीव पाए जाते हैं। जंगली जीवों के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करना केवल कौतूहल की ही दृष्टि से आवश्यक नहीं है, वरन यह काफी मनोरंजक भी है। भूमण्डल पर सृष्टि की रचना कैसे हुई, सृष्टि का विकास कैसे हुआ और उस रचना में मनुष्य का क्या स्थान है? प्राचीन युग के अनेक भीमकाय जीवों का लोप क्यों हो गया और उस दृष्टि से क्या अनेक वर्तमान जंगली जीवों के लोप होने की कोई आशंका है? मानव-समाज और जंगली जीवों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? यदि जंगली जीव भूमण्डल पर न रहें, तो मनुष्य के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा? तेजी से बढ़ती हुई आबादी की प्रतिक्रिया जंगली जीवों पर क्या हो सकती है? आदि प्रश्न गहन चिन्तन और अध्ययन के हैं।

भारत के जंगली जीवों के समूह तथा उनके समुदाय भूमण्डल के अन्य देशों के जीवों के समान हैं, पर यों कहना भी अनुचित नहीं है कि विश्व के जंगली जीवों का यदि वर्गीकरण किया जाए तो भारत के जंगली जीव भी उसी वर्गीकरण में आ जाते हैं। इसलिए भारत के जंगली जीवों का विशद वर्णन देने से पूर्व विश्व के जीव जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण देना आवश्यक है, ताकि पाठक भली-भांति समझ सकें कि भारत के जंगली जीवों का स्थान इस वैज्ञानिक वर्गीकरण में क्या है और वे विश्व के जंगली जानवरों के वर्गीकरण के किस क्रम में आते हैं।

जीव-जन्तुओं के वर्गीकरण से पूर्व यह जानना भी आवश्यक है कि सृष्टि-रचना कैसे हुई। पहले पेड़ हुए या गतिशील प्राणी? फिर सृष्टि-रचना की क्रिया अब से कितने वर्ष पूर्व हुई? इस सृष्टि-रचना में मनुष्य का आविर्भाव कब हुआ? सृष्टि के इस ऊहापोह में विभिन्न जीव-जंतुओं में क्या कोई समता है? वैज्ञानिक दृष्टि से उसको कैसे समझा जाए?

प्रस्तुत 'भारत के वन्य पशु' पुस्तक प्रवेशिका के रूप में नहीं है और इसमें इसलिए जंगली जीव-जन्तुओं का वर्गीकरण शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। जीव-जन्तुओं के वर्गीकरण का विषय है तो बड़ा क्लिष्ट पर साथ ही वह बड़ा रोचक भी है और विषय को समझने के लिए बड़ा ही आवश्यक भी । अतः भारत के जंगली जीवों पर लिखने से पूर्व सृष्टि की रचना और उसका विकास, भूमण्डल ग्रौर भारत के भौतिक निर्माण पर सूक्ष्म रूप से प्रक.श डालने के उपरांत जीव-जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है।

'भारत के जंगली जीव' शीर्षक से जो प्रवेशिका पुस्तिक पहले प्रकाशित हुई है, उसमें लेखक ने भारत के अनेक जंगली जीवों पर जानबूझ कर इसलिए नहीं लिखा कि उन सबका वर्णन करने से एक तो पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ ज.ता और

साथ ही यह भी आशंका थी कि इस विषय में प्रवेश करने वालो के लिए विशद वर्णन शायद अरुचिकर भी होता, पर प्रस्तुत बड़े ग्रंथ में, जहां भारत के जंगली जीवों पर विशद रूप से लिखा गया है, वहां क्लिष्ट बातों को सरल रूप में वर्णित करने का प्रयास करते हुए कोई भी आवश्यक बात छोड़ी नहीं गई है। यहां यह बात निःसंकोच रूप से लिखी जाती है कि अभी तक हमारे देशवासियों ने जंगली जानवरों के विषय में यथेष्ट मौलिक खोज करने का प्रयत्न नहीं किया। जो भी पुस्तकें हिन्दी में निकली हैं, वे अधिकांश अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों के आधार पर ही लिखी गई हैं। फलस्वरूप उनकी गलतियों की भी पुनरावृत्ति कर ली गई है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी की 'रायल नेचुरल हिस्ट्री' जैसी प्रामाणिक पुस्तक में घड़ियाल (Gangetic Garial) के विषय में लिखा है कि घड़ियाल केवल मछली खाने वाला ताजे पानी का जानवर है। इसके अतिरिक्त उस महत्व-पूर्ण पुस्तक में घड़ियाल का चित्र भी ठीक नहीं है। भारत के जंगली जीवों के प्रति जो रुचि रखते हैं और उनके विषय में जो आधुनिकतम जानकारी रखने का प्रयत्न करते हैं, वे जानते हैं कि भारत में चीता जंगली रूप में अब नहीं पाया जाता। अंग्रेजी की प्रामाणिक पुस्तकों में जंगली चीते के रहन-सहन और उसके रहने के स्थान का वर्णन है, पर वास्तविकता यह है कि जंगली चीता भारत के मैदानों और झाड़ियों से एक प्रकार से लुप्त ही हो गया है। भारत की वन्य शोभा का एक प्राणी समाप्त हो जाए, यह दुख की बात है। भूल से लोग शेर को चीता (Tiger) कहते हैं और बाघ नाम से भी उसे संबोधित करते हैं, पर यह बात गलत है। शेर, बाघ (Leopard) और चीते में से चीता आसानी से पाला जा सकता है। गहराई से देखने पर पता चलता है कि चीते की टांगें अपेक्षाकृत पतली होती हैं और नाखून कुछ बाहर निकले रहते हैं। बाघ से उसके गुल (धब्बे) भी भिन्न होते हैं और अगला हिस्सा अपेक्षाकृत भारी नहीं होता।

प्रवेशिका पुस्तिका की भांति इस बड़े ग्रंथ में भी शेर शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'टाइगर' शब्द के लिए किया गया है। अंग्रेज़ी के 'लैपर्ड' या 'पैंथर' को कहीं गुलदार, कहीं चीता, कहीं बघेरा और कहीं तेंदुआ कहते हैं। लेखक 'लैपर्ड' और 'पैंथर' को बाघ कहता है और गत इकतालिस वर्षों से वह 'लैपर्ड' और 'पैंथर' को बाघ ही लिखता आया है।

भारत से हिमबाघ (Snow Leopard) कस्तूरा (Musk Deer) मारखोर, जंगली भैंस, गौर, कच्छ की खाड़ी का जंगली गधा—सब लोप होने की सीमा पर पहुंच ही गए हैं। यदि यही स्थिति रही तो भारत का प्रसिद्ध गैंडा भी खतम हो जाएगा, क्योंकि वह भी खत्म होने की सीमा के निकट है। सरकार के विशेष संरक्षण से अब तक गैंडा भारत में बचा हुआ है और यदि हिम बाघ, कस्तूरा, जंगली भैंस तथा गौर को समुचित संरक्षण नहीं मिला तो वे मिट ही जाएंगे। मैदानों की शोभा काला हिरन और चिकारे (Ravine Deer) का भविष्य भी अंधकारमय है। सन् 1925-26 तक जहां काले हिरनों के 400-500 के

झुंड पाए जाते थे, वहां अब इक्के-दुक्के हिरन ही पाए जाते हैं और चिकारा तो अनेक स्थानों से लुप्त हो गया है। जंगली हाथी का भविष्य भी उज्जवल नहीं है। बढ़ती आबादी, असंतुलित खेती और जंगलों के कट जाने से यह स्थिति पैदा हो गई है, और यदि संतुलित ढंग से जानवरों की रक्षा नहीं की गई, तो मानव-समाज का अहित भी निश्चित है। जंगली जानवरों की संख्या संतुलित ढंग से सुरक्षित होनी चाहिए, क्योंकि जंगली जानवर हमारे देश में केवल शोभा के लिए ही नहीं है, वरन संतुलित जीवन और उद्योग-धंधों की दृष्टि से भी बड़े उपयोगी हैं।

मनुष्य और जंगली जानवरों का सम्बन्ध अति प्राचीन है। यदि भारतीय साहित्य से जंगली जानवरों का वर्णन हटा दिया जाए, तो हमारा साहित्य बड़ा कंगाल हो जाएगा और साथ ही मनुष्य की बुद्धि भी अपेक्षाकृत कुंठित हो जाएगी, क्योंकि अलंकारों और उपमाओं में उपयोगिता और सजीवता के लिए जंगली जीवों की चर्चा आती है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय साहित्य में अनेक जंगली जानवरों पर एक-एक पृथक प्रामाणिक सचित्र पुस्तक लिखी जाए, पर इस कार्य के लिए इस विषय में लेखकों की गहरी दिलचस्पी के अतिरिक्त, गहन अध्ययन की भी आवश्यकता है। चीतल, जंगली हाथी, शेर, बघेरा, गीदड़, घड़ियाल काला सांप तथा अन्य जानवरों पर बहुत ही आकर्षक और सजीव पुस्तकें लिखी जा सकती हैं।

यह ग्रंथ लेखक के अपने इकतालिस-बयालीस वर्षों के जंगली जानवरों सम्बन्धी व्यक्तिगत ज्ञान, प्रकृति-निरीक्षण-प्रवृत्ति, शिकार तथा वन्य जीवों संबंधी पुस्तकों पर आधारित है।

यहां यह बताना आवश्यक है कि प्रस्तुत पुस्तक का सम्बन्ध केवल भारत के ही जंगली जीवों से है। समूह के पांच समुदायों में (1) मत्स्य (2) उभयचर (3) उरंगम (4) पक्षी (5) स्तनपोषित हैं। इनमें से पक्षियों के ऊपर कुछ नहीं लिखा जाएगा, क्योंकि भारत सरकार के 'प्रकाशन विभाग' ने एक पुस्तक भारत के पक्षियों पर पहले ही प्रकाशित कर दी है। मत्स्य समुदाय पर भी इस पुस्तक में कुछ नहीं लिखा जा रहा, क्योंकि मछलियों का विषय भी इतना रोचक और बड़ा है कि यदि प्रस्तुत पुस्तक में उस पर कुछ लिखा जाए तो पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ जाएगा, इसलिए मत्स्य-समुदाय को इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया है।

लेखक ने इस पुस्तक के लिखने में अपने अनुभव के अतिरिक्त अंग्रेजी की अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों से सहायता ली है तथा श्री लडेकर द्वारा संपादित अंग्रेजी की प्रामाणिक पुस्तक 'रायल नेचुरल हिस्ट्री' से विशेष सहायता ली है। साथ ही लेखक ने डनवार ब्रेन्डर की पुस्तक 'वाइल्ड एनिमल्स इन सेंट्रल इंडिया', सर सेमुअल बेकर की 'वाइल्ड वीस्ट एण्ड देयर वेज', जिम कोर्बट की 'मैन ईटिंग लैपर्ड आफ रुद्रप्रयाग', 'मैन ईटर्स आफ कुमायूं' और 'टेम्पिल टाइगर एण्ड अदर मैन ईटर्स आफ कुमायूं', चेम्पियन की 'विद ए कैमरा इन टाइगरलैंड' का अध्ययन किया है। पृथ्वी कैसे बनी और जीवों का उस पर कैसे आविर्भाव हुआ इन विषयों पर लेखक

ने 'वंडर्स आफ नेचर' आदि से सहायता ली है और श्री सुरेशसिंह लिखित 'जीव-जगत' से कुछ उद्धरण लिए हैं। जीव-जंतुओं के वर्गीकरण में अंग्रेजी की पुस्तकों तथा ब्रजेश बहादुर की 'जन्तु-जगत' पुस्तक से सहायता ली है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित अनेक लेखों से भी लेखक को काफी सहायता मिली है। यों शिकार और जंगली जानवरों सम्बन्धी अनेक अन्य पुस्तकों से भी लेखक ने लाभ उठाया है। सांपों के लिए घोरपड़े की 'स्नेक्स आफ़ इंडिया' पुस्तक से सहायता मिली है। इसलिए वह उपर्युक्त पुस्तकों के लेखकों और प्रकाशकों का आभारी है।

लेखक अपने मित्र श्री जगतमोहन रैना, आई० ए० एस० चीफ कमिश्नर, मनीपुर और वहां के वन-विभाग के अधिकारी का भी बहुत आभारी है, जिन्होंने वहां के प्रसिद्ध मस्तक शृंग हिरन पर एक प्रामाणिक लेख लिख कर दिया।

भारत सरकार के सूचना विभाग तथा पब्लिकेशन्स डिवीज़न के कर्मचारियों ने परामर्श देकर लेखक की जो सहायता की है, उसके लिए भी उनको लेखक धन्यवाद देता है।

यह लिखना भी अप्रासंगिक और अनुचित न होगा कि इस पुस्तक के लिखने में लेखक की बड़ी लड़की कुमारी कमला शर्मा ने योग न दिया होता, तो यह पुस्तक लिखी ही नहीं जा सकती थी।

श्रीराम शर्मा

बल्का बस्ती, आगरा

विषय-प्रवेश

भारत के जंगली जानवरों का भविष्य ठीक वैसा ही है, जैसा कि अन्य देशों के जंगली जानवरों का। अफ्रीका जैसे महाद्वीप के अनेक जानवरों के विषय में यह आशंका प्रकट की जा रही है कि यदि वर्तमान गति से उनका संहार जारी रहा तो, उनका अस्तित्व ही मिट जाएगा। अफ्रीका के सफेद गैंडे की संख्या बहुत कम रह गई है और यही दशा विश्व के अन्य देशों के जंगली जानवरों की भी है। यूरोप के कई देशों मे जंगली सुअर मिट चुका है। जंगली जानवरों के विषय में भी 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे'—वाली बात लागू है। जंगली जानवरों का जो संहार, शिकार की खातिर, शौक की खातिर और खेती के रक्षा की खातिर हो रहा है उस पर विशेषज्ञों को ही नहीं, प्रकृति-प्रेमियों और मानव-समाज के हित-रक्षकों को भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

जंगली जानवरों के विनाश और लोप होने के अनेक कारण हैं। उनमे से एक मुख्य कारण है, मनुष्यों की बेहद बढ़ती हुई संख्या। बढ़ती जनसंख्या की विषम समस्याओं को समझने के लिए, यदि हम अपने ही देश की जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करें, तो इस समस्या के भावी रूप को अच्छी तरह समझ सकते हैं। भारत-विभाजन के समय भारत की जनसंख्या 40 करोड़ थी और विभाजन के बाद पाकिस्तान बन जाने पर हमारे देश की आबादी 36 करोड़ रह गई थी, पर सन् 1961 में अकेले भारत की आबादी 44 करोड़ के लगभग हो गई। सन् 1901 में भारत की आबादी 23 करोड़ थी। यह आबादी अखंड भारत की थी। अनुमानतः अकेले भारत की जनसंख्या में प्रति वर्ष लगभग 70-80 लाख की वृद्धि हो जाती है। रोगों के उपचार और रोग-निवारण के लिए वैज्ञानिक विकास के कारण मृत्यु-संख्या भी घट गई है—और वह घटनी भी चाहिए। इस प्रकार सन् 1980 के लगभग भारत की आबादी का अनुमान 80 करोड़ तक होने का है। चीन की जनसंख्या में जो वृद्धि हो रही है उससे तो विश्व-शान्ति को खतरा पैदा हो गया है।

यदि ठीक ढंग से बढ़ती जनसंख्या की समस्या का हल नहीं निकाला गया तो हमारी ही नहीं, विश्व की भी खैर नहीं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में जाकर देखिए, वहां गांवों में पहुंचने के लिए प्रशस्त मार्ग तक नहीं हैं, पेड़ कटते चले जा रहे हैं। बिहार और बंगाल की भी यही हालत है। दुधारू पशुओं की संख्या कम हो गई है, जंगली पशु मिट रहे हैं। इस विषय में स्वास्थ्य-विज्ञान के विश्व विख्यात विशेषज्ञ श्री हर्मन बेटी ने ब्लैकपूल (इंग्लैंड) में 1961 के स्वास्थ्य-कांग्रेस की रायल सोसाइटी के तत्वावधान में एक वक्तव्य पढ़ा। डा० हर्मन बेटी के मत से—

'आगामी सन् 2050 में अर्थात् अब से 90 वर्ष बाद संसार की हालत महाप्रलय से भी खराब हो जाएगी। उस समय दुनिया की आबादी 9 अरब तक

जा पहुंचेगी और न तो तब धरती पर इतने लोगों के लिए खाना मिल सकेगा, न स्वच्छ व शुद्ध वायु, न पानी और न बिजली ही मिल सकेगी। लोगों के रहने के लिए जो मकान मिलेंगे, उनमें बस उनके खड़े होने भर की जगह रहा करेगी।

किसी भी घर में किसी भी किस्म का पालतू जानवर नहीं होगा। ऐसा इसलिए होगा कि ये जानवर इंसानों की खुराक बहुत खाते हैं। इसलिए लोग इन्हें चट कर जाएंगे। पशुओं के न रहने से उनके मांस, दूध तथा चर्बी के न मिलने से लोग उसके स्थान पर खास तरह की आहार की गोलियां खाया करेंगे।'

पाठकों को उपर्युक्त वर्णन में अतिशयोक्ति प्रतीत होगी, पर चीन में आजकल कोई भी व्यक्ति कानूनन कुत्ते और बिल्लियां नहीं पाल सकता, क्योंकि वे मनुष्य के भोजन में साझीदार बन जाते हैं। जापान में घनी आबादी के कारण ट्रैक्टर, तो क्या बैलों से भी खेती सम्भव नहीं। आदमी खुरपी और कुदाल से खेती करते हैं और वहां पर खाद्यान्न का उत्पादन प्रति एकड़ भारत से कई गुना अधिक है। हमारे देश में खेती के उचित तरीकों और खाद्यान्न की समस्याओं पर संतुलित और वैज्ञानिक विचार नहीं है।

स्वास्थ्य-विज्ञान के विशेषज्ञ श्री हर्मन बेटी के कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यदि हम भारत के गत 50 वर्षों के इतिहास पर जंगली जीवों, खाद्यान्न समस्याओं और बढ़ती आबादी की दृष्टि से दृष्टिपात करें तो हम श्री हर्मन बेटी के परिणामों पर ही पहुंचेंगे। आज हमारे देश से जंगली भैंस, गेंडा, चीता, समुद्र तटवर्ती कच्छ के बालुकामयी रनों से जंगली गधा, पर्वतों से हिम बाघ, और कस्तूरा क्यों लोप के बिन्दु पर पहुंच गए हैं? अनुचित ढंग से खेती करने के कारण जंगलों और झाड़ियों को बुरी तरह काटा गया है तथा जानवरों के सुरक्षित स्थानों को नष्ट कर दिया गया है। मांस, चर्बी और खाल के लालच में जंगली जानवरों का इतनी बुरी तरह संहार किया गया है कि उनका प्राप्त होना दुर्लभ ही है। अतः मनुष्यों की नासमझी के कारण भारत के अनेक जंगली जीव विनाश के पथ पर हैं। योजनाएं बनाते समय केवल मनुष्य के पेट भरने का ही सवाल सामने रखा जाता है, और इस प्रकार वन की विभूतियां—जंगली जीव नष्ट हो ही जाएंगे। उत्तर प्रदेश की तराई का क्षेत्र जंगली जानवरों के लिए विश्वविख्यात है। तराई, हिमालय और मैदानी इलाकों के बीच स्पंज का काम करती थी। हिमालय के पानी को वह सोखती थी और बदले में घास और जंगलों का बाहुल्य प्रदान करती थी, जो शेर, बघेरा तथा तरह-तरह के हिरनों का स्वर्ग बना रहता था। तराई के जंगल काट कर खेती करना फिलहाल भले ही लाभप्रद दिखाई पड़ता हो, पर दूरदर्शिता से वह नीति हानिकारक होगी। कुछ ही वर्षों बाद तराई की जमीन खेती के योग्य नहीं रहेगी, क्योंकि जमीन में अम्लता आने की पूरी आशंका है। साथ ही मैदानी क्षेत्रों के पेड़ कट जाने से ईंधन का घोर अभाव हो गया है। जो गोबर खाद के रूप में खेतों में जाना चाहिए, वह ईंधन के काम में लाया जाता है। बाढ़ों के प्रकोप का एक कारण मनुष्य निर्मित है। जंगल काट देने से विशेषकर नदियों के किनारे के पेड़ काट देने से बाढ़ और जमीन की कटान की विकराल समस्याएं सामने आ गई हैं।

हिमालय के जंगल भी बुरी तरह काट डाले गए हैं और हिमालय से निकलने वाली नदियां हिमालय की उर्वरा भूमि को काट कर नदियों की तलहटी को भर रही हैं। सम्पन्न और शक्तिशाली देशों का एक मापदंड है कि वहां के 30 प्रतिशत भूभाग पर जंगल और पेड़ होने चाहिएं। पर हमारे देश में औसतन लगभग 14 प्रतिशत भूभाग पर ही पेड़ हैं और मैदानी क्षेत्रों में तो जंगल लगभग 4 प्रतिशत ही हैं। यदि कृषि के साथ कृषि उपयोगी पेड़ लगाए जाएं और बनों का विकास किया जाए, तो खाद्यान्न की स्थिति भी संभल जाए और भारतीय वनों के गौरव, अनेक जंगली जानवरों को जीवन दान भी मिल जाए।

यह बात निःसंकोच रूप से लिखी जाती है कि सन् 1912 के जंगली जानवरों और पक्षियों के संरक्षण सम्बन्धी कानून (The Wild Birds and Animals Protection Act of 1912) के कारण तथा अंग्रेजी शासन के राजाओं के सहयोग से जंगली जानवरों और अनेक मूल्यवान पक्षियों को सुरक्षा मिल सकी, और यह काम 1930 तक सुचारु रूप से चलता रहा, पर गत द्वितीय महायुद्ध के बाद जंगली जानवरों की संरक्षण-नीति में आकस्मिक परिवर्तन हो गया। झाड़ियों और जंगलों के बुरी तरह कटने से जंगली चीता तो समाप्त ही हो गया और स्थिति यहां तक पहुंच गई कि भारत में वह प्राकृतिक स्थिति में नहीं पाया जाता। जल-प्रपातों और बांधों से बिजलीघर बनाने की गतिविधि और जंगल काट कर खेती करने की होड़ से जंगली जानवरों का विनाश हो रहा है और उचित सुरक्षा के अभाव में अनेक अन्य पशु भी चीते की गति को ही प्राप्त होंगे। यह ठीक है कि गैर-कानूनी ढंग से शिकार और शिकार सम्बन्धी अपर्याप्त कानूनों के कारण जंगली जानवरों का काफी विनाश होता है, पर यह बहुत कुछ रोका भी जा सकता है। मांसाहारी कबीलों से शिकार के कारण जो हानि जानवरों की होती है, वह इतनी नहीं है जितनी जंगल काट कर असंतुलित खेती करने से होती है। चोरी छिपे शिकार खेलना और शिकार सम्बन्धी अपर्याप्त कानूनों का उपाय तो जल्दी हो सकता है, पर राष्ट्रीय योजनाजन्य बांधों और विशाल जलाशयों के बांधों के निर्माण का कार्य तो राज्यों द्वारा ही होता है तथा इनके निर्माण के कार्य से जंगली जानवरों के नैसर्गिक स्थान पानी में डूब जाते हैं। इस प्रकार की योजना बनाने में जंगली जानवरों का खयाल रखना बहुत आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति विशाल बांध निर्माण करके उद्योगों के पीछे पशु विरोधी नहीं हो सकता। मनुष्यों की खातिर बहुत कुछ जानवरों का विनाश भी संभव है, पर उनका उन्मूलन मनुष्य के लिए भी खतरनाक है और ऐसी स्थिति मनुष्य के लिए भयावह भी है। ऐसी योजनाओं में मनुष्य के हित की खातिर जंगली जानवरों को भी उचित सुरक्षा मिलनी ही चाहिए। उदाहरण के लिए उड़ीसा का हीराकुड-बांध भारत की एक शान है, पर हीराकुड-बांध से लगे 13 मील क्षेत्र में शताब्दियों का लगा जंगल नष्ट हो गया तो वहां के जंगली जानवर खतम ही हो जाएंगे। ऊपर उत्तर प्रदेश के विश्वविख्यात तराई क्षेत्र की चर्चा की गई है। वहां 1940 तक प्रत्येक प्रकार के जानवरों का बाहुल्य था, इतना बाहुल्य कि वहां का जंगल कट जाने पर भी वहां के ईख के

खेत में कभी-कभी शेरों के जोड़े पाए जाते हैं। उनके रहने के लिए जंगल नहीं हैं और ईख के खेतों में रह कर अब भी शेरों के दो चार जोड़े सुअर और चीतलों पर अपना निर्वाह करते हैं। कुमायूं में रामगंगा का जो बांध बांधा जा रहा है, उसमे पूरी आशंका है कि वहां के जंगली जानवरों के नैसर्गिक निवास-क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग जलमग्न हो जाएगा और वहां से शेर, बघेरों तथा हिरनों का लोप हो जाना तो सम्भव ही है। अन्य स्थानों पर इन पशुओं को संरक्षण मिलना जंगलों की कमी के कारण असंभव ही है। मैसूर शहर से 50 मील की दूरी पर कक्कनकोट का जो बांसों का सघन वन है, वह हाथियों का परम क्रीड़ा-क्षेत्र है, पर काविरी नदी पर बांध बंधने से उसका बहुत बड़ा भाग जल मग्न हो जाएगा। कक्कनकोट में खेदा से जो हाथी पकड़े जाते थे, उसके विषय में अंग्रेजी में बड़ा ही आकर्षक साहित्य है। बांस और हाथी-जीवन का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि बांसों का यह जंगल नष्ट हो गया तो मैसूर की एक विभूति भी नष्ट हो जाएगी। उद्योग, पानी और बिजली मिलने के साथ-साथ यदि बांस-वन बना रहे तो जंगली हाथी की भी रक्षा हो सकेगी। तात्पर्य यह है कि बांध-निर्माण-योजनाओं और कृषि-विकास-योजनाओं में वनों तथा जंगली जानवरों की रक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि इन योजनाओं के विशेषज्ञों, वन-विभाग के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं और संतुलित जीवन के विशेषज्ञों का मत लिया जाए और उनके सहयोग से योजनाएं बनें, तो उद्योग-धंधे भी चल सकते हैं और जंगली जानवरों की रक्षा भी हो सकती है। उद्योगों और धंधों की खातिर बांध बनने चाहिएं, बिजली की उपलब्धि भी होनी चाहिए, पर इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बेकार जमीनों में जलाशय बन सकें तथा जंगली जानवरों के लिए समुचित स्थानों की रक्षा हो सके, तो मनुष्यों का और भी अधिक हित होगा।

भारत में आजकल जानवरों के लिए जो सुरक्षित क्षेत्र हैं अर्थात वे स्थान, जहां शिकार खेलना वर्जित है, वहां चोरी छिपे बेहद शिकार खेला जाता है। उसकी रोकथाम परमावश्यक है। भारतीय गैंडे के लोप हो जाने की बड़ी भारी आशंका है। एक समय था जब भारत के उत्तर पश्चिम से लगा कर इंडोचीन तक भारतीय गैंडा पाया जाता था। बाबर ने सिंधु नदी के तट पर गैंडे का शिकार खेला था, पर अब नैपाल के चितावन जंगल और पश्चिमी बंगाल के उत्तरी जंगलों तथा असम के एक अति सीमित क्षेत्र में कतिपय भारतीय गैंडों को संरक्षण प्राप्त है। असम के काजीरंगा-क्षेत्र में लगभग 300 गैंडे जीवित सुरक्षित बताए जाते हैं। गैंडे को मारने का एक कारण यह है कि उसके सींग के बने प्याले में यह अद्‌भुत शक्ति बताई जाती है कि उसमें जहर मिली कोई चीज रखने से जहर का पता चल जाता है। इसके अतिरिक्त गैंडे के सींग का बुरादा मूल्यवान दवाइयों के काम आता है। वर्तमान औद्योगीकरण के युग में गैंडे के सींग का मूल्य बहुत अधिक है। गत 1961 में असम के नौगांव-क्षेत्र के 13 सुरक्षित गैंडों में से सबसे बड़ा नर गैंडा मरा पाया गया और उसकी लाश से उसका सींग गायब था। उसके हृदय में गोली लगी थी। कलकत्ता के बाजार में उस गैंडे के सींग का मूल्य

दस हजार रुपए से कम न होना। ऐसी दशा में भारतीय गैंडे को बचाने के लिए जंगली जानवरों के सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों में परिवर्तन करके कड़ाई से पालन करना होगा। भारत से लोप होने वाले ऐसे पशुओं को मारने वालों को मृत्यु-दंड नहीं तो कालापानी या अन्य कठोर दंड की व्यवस्था करनी होगी और देखभाल का भी समुचित प्रबन्ध करना होगा।

भारतीय जंगली भैंस भी एक ऐसी जानवर है, जो कदाचित अपने अंतिम दिन गिन रही है। अब से कुछ ही वर्ष पूर्व वह मध्य प्रदेश में काफी संख्या में पाई जाती थी, पर अब उसकी संख्या घट गई है और असम, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा के एक सीमित क्षेत्र में ही पाई जाती है। जंगली भैंस के रहने का स्थान आदमियों की आबादी का नहीं है और न वह जंगलों में जाती है, वह तो दलदल तथा घासवाले क्षेत्रों में ही रहती है। बढ़ती खेती के प्रसार-आंदोलन में वह एक प्रकार से धकेल कर एक संकुचित क्षेत्र में पहुंचा दी गई है। यही गति रही तो उसका खात्मा भी निश्चित है। मांसाहारियों के लिए भैंस से मांस मिलता था और उद्योग-धंधों के लिए चमड़ा, सींग आदि। भारतीय जंगलों की एक और विभूति भारतीय गौर के भी खतम होने की आशंका है। दक्षिण की वायनाड पहाड़ियों का वह सिरमौर है। विशालकाय वह इतना है कि शेर से भी वह सहज नहीं मारा जा सकता। भारी इतना कि उसके शव का मूल्य मांस के रूप में दो सौ पचास रुपया प्रति जानवर होता है। अब जो वहां पर बांध आदि की बहुउपयोगी योजना बन रही है, उससे उसके खतम होने की आशंका है।

भारतीय जंगली चीता झाड़ियों में रहने वाला पशु है। दक्षिण और मध्य प्रदेश में वह बहुतायत से पाया जाता है। घने जंगलों में वह रहता नहीं है और कृषि प्रसार के लिए झाड़ियां काट डाली गई, तो नासमझ शिकारियों की गोली से वह मारा गया। वर्षों की जिज्ञासा और खोज के बाद भी भारतीय जंगली चीता किसी भी क्षेत्र में अब नहीं मिलता। सन् 1952 में ही वह प्राकृतिक अवस्था में अंतिम बार देखा गया था।

भारतीय सिंह या गीर सिंह की संख्या भी सीमित है, जो अनुमानत: 300 होगी। वर्षों से उन्हें संरक्षण प्राप्त है, इसलिए वे अभी इतनी संख्या में हैं। हिरनों और सुअरों की संख्या भी घट गई है, अत: सिंहों की प्राकृतिक खुराक कम हो गई है तिस पर नासमझ फैशनेबुल शिकारी अपने शिकार की संख्या बढ़ाने के लिए जहां कहीं सिंह मिलते हैं उन्हें धुन डालते हैं।

कच्छ के रनों—छोटी खाड़ियों—के दलदली इलाकों में भारतीय जंगली गधा सिमट-सिकुड़ कर आ गया है, पर ये छोटी खाड़ियां भी उपजाऊ बनाई जा रही हैं तथा भरी जा रही हैं। अत: पूरी आशंका है कि भारतीय जंगली गधा भी चीते की गति को प्राप्त होगा। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मस्तक शृंग हिरन, जिसके विषय में सन् 1951 में रिपोर्ट लिख दी गई थी कि वह खतम हो चुका है, वह अनायास 3-4 की टोली में मनीपुर में पाया गया। भारत सरकार ने उसे फौरन संरक्षण दिया और सुरक्षित किया, अनुमानत: उनकी संख्या अब सौ के करीब हो गई है।

कस्तूरा तो इनी-गिनी संख्या में ही भारतीय हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है और गढ़वाल, कुमायूं तथा हिमांचल प्रदेश से तो वह खतम-सा ही हो गया है। इस बात का ठीक पता भी नहीं कि वह अब गढ़वाल और कुमाऊं में हैं भी या नहीं। कस्तूरी की खातिर इस छोटे तथा सुन्दर हिरन को वुरी तरह मारा गया है। शुद्ध कस्तूरी के एक-एक नाफे का मूल्य 400–500 रुपए तक होता है और इस लालच के कारण चोरी छिपे लोगों ने उसे मार कर पैसे कमाए। हिम बाघ भी अपने अन्तिम दिन गिन रहा है। पंजाब के यूरियल हिरन और कश्मीर के मारखोर की भी वुरी दशा है। मैदानी इलाकों के काले हिरन और चिकारे भी तेजी से कम हो गए हैं। सांभर और चीतल भी वुरी तरह घट रहे हैं। गौंद भी बुरी तरह मारा गया है और वह विनाश के पथ पर है।

अब प्रश्न यह है कि क्या यह सम्भव है कि भारत के वनों की इन विभूतियों को किसी प्रकार बचाया जा सकता है। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' वाली वात आंशिक रूप से इन अर्थों में ठीक है कि मनुष्य अपनी बुद्धि, वीरता और श्रम से धरती माता के भोग भोगता हैं, पर यह वात भी निर्विवाद सत्य है कि विना पशुओं के संतुलित मानव जीवन सम्भव नहीं। वढ़ते उद्योगों और कृषि प्रसार की योजनाओं के सामने क्या हमारे अद्‌भुत जंगली जानवर वच सकेंगे ? लेखक का मत है कि भारत के जंगली जानवर भी बच सकते हैं और भारतवासी अव से अच्छा तथा संतुलित भोजन भी प्राप्त कर सकते हैं, यदि जंगली जानवरों की उपयोगिता पर प्रत्येक दृष्टि से ख्याल किया जाय और उनके संरक्षण के लिए कारगर तथा उचित कदम उठाए जाएं। सन् 1912 में हमारे यहां जंगली पक्षियों और जंगली जानवरों की रक्षा के लिए (The Wild Birds and Animals Act) बना और सन् 1952 में भारत के वन्य जीवन के लिए एक बोर्ड (The Indian Board for Wild life) बना, पर इन सबके होने पर भी जंगली जानवरों के संरक्षण के लिए संतोषजनक कार्य नहीं हुआ। आवश्यकता इस बात की है कि सन् 1912 के कानून में संशोधन किया जाए और उस कानून को भंग करनेवालों के लिए उसमें कठोरतम दंड की व्यवस्था हो। उस कानून भंग के मुकदमों की अपील की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए और सैनिक न्यायालय की भांति अभियुक्तों पर मुकदमा चलाना चाहिए। उस कानून के विषय में लोगों की बहुत कम जानकारी है, इसलिए भारतवर्ष के प्रत्येक जिले में जिलाधीश के तत्वावधान में उसका प्रचार किया जाए। पुलिस कर्मचारियों और माल विभाग के कर्मचारियों को इससे अवगत कराया जाए और भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में उसकी चर्चा की जाए।

सन् 1952 में जिस बोर्ड की स्थापना हुई है, वह एक प्रकार से परामर्श देने के लिए है। उसे "स्टैट्यूटरी बोर्ड" बना दिया जाए, जिसके सभापति प्रधान मंत्री हों और सदस्यों में प्रत्येक राज्य के कुछ योग्य जानकार गैर-सरकारी व्यक्ति हों। इस बोर्ड की बैठक नई दिल्ली में वर्ष में दो बार हो। प्रत्येक राज्य में भी इस प्रकार का बोर्ड बने और उस बोर्ड का सभापति उस राज्य का मुख्य मंत्री हो। राज्य के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष उसके सदस्य हों। विजली, सिंचाई, कृषि, वन और पशुपालन विभाग के सदस्य उसमें अवश्य ही होने चाहिएं। चार-पांच या आवश्यकता के अनुसार प्रति कमिश्नरी का एक प्रतिनिधि उस वोर्ड का सदस्य हो। केन्द्र और राज्यों के गैर-सरकारी सदस्यों की नामजदगी

राज्यपालों की ओर से कमिश्नरों की सिफारिश पर होनी चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल वे ही आदमी नामजद किए जाएं, जो इस विषय के जानकार हों और उसमें दिलचस्पी रखते हों। केन्द्रीय बोर्ड का यह भी कार्य होना चाहिए कि वर्ष में दो प्रामाणिक सचित्र पुस्तकें भारत के जंगली जीवों पर अवश्य प्रकाशित हों और उनका प्रकाशन केन्द्रीय सरकार द्वारा ही होना चाहिए। इस कार्य के लिए खोज और शोध की आवश्यकता होगी, इसलिए उस कार्य के लिए प्रति पुस्तक कुछ खर्च भी करना पड़े तो वह लाभप्रद ही होगा, क्योंकि इस प्रकार की पुस्तकें बड़ी ही लोकप्रिय होंगी। गैंडा, चीतल, सांभर, कस्तूरा, हिमबाघ, चीता, घड़ियाल, महा शेर मछली, मारखोर, हाथी, शेर और बघेरे पर सचित्र और प्रामाणिक पुस्तकों की बड़ी ही आवश्यकता है तथा इस कार्य का प्रारम्भ भी जल्दी ही होना चाहिए।

प्रत्येक राज्य में राज्य के सीमा-विस्तार और आवश्यकतानुसार जंगली जानवरों के लिए सुरक्षित स्थान (Sanctuary) बनने चाहिएं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के उत्तरी गढ़वाल क्षेत्र में तिब्बती सीमा से कुश कल्याण तक कस्तूरा के लिए सुरक्षित स्थान होना चाहिए। आगरा जिले में कीथम झील के आसपास काले हिरन और चिकारे के लिए सुरक्षित स्थान होने चाहिएं। पंजाब का हिसार का फार्म और उसका निकटवर्ती क्षेत्र चिकारे और काले हिरन के लिए सुरक्षित होना चाहिए। कच्छ की छोटी खाड़ियों में भारतीय जंगली गधे को सुरक्षित कर देना चाहिए। राजस्थान, मध्य प्रदेश और दक्षिण में चीते और हिरनों के सुरक्षित स्थान होने चाहिएं। मैसूर में गौर और हाथियों के लिए भी सुरक्षित स्थान की आवश्यकता है। जंगली भैंस के लिए मध्य प्रदेश, उड़ीसा और असम के क्षेत्र में स्थान विशेष सुरक्षित कर दिए जाएं। बिहार में हजारी बाग के आसपास और उत्तर-प्रदेश में ऋषीकेश, धौलखण्ड या तराई के पास खेरी के बनों में शेर को संरक्षण मिलना चाहिए। सुझाव के तौर पर यह बात लिख दी गई है। यों गीर सिंह और गैंडे के लिए स्थान सुरक्षित हैं, पर उनके संरक्षण की व्यवस्था और भी अच्छी कर देनी चाहिए। मोटर और यातायात के साधन उन स्थानों में पहुंचने के लिए सुलभ नहीं होने चाहिएं। मुनाल पक्षी को भी हिमालय-क्षेत्र में संरक्षण की आवश्यकता है। कान वाले (Horned) उल्लू का संरक्षण भी बहुत आवश्यक है, पर किस पक्षी और किस जानवर का संरक्षण कहां पर और किस प्रकार हो, इसका निश्चय जंगली जीवों सम्बन्धी बोर्ड की मीटिंग में होना चाहिए।

पर उपर्युक्त सुझावों से भी महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि हमारे शिक्षा विभाग को भी जंगली जानवरों के संरक्षण में योग देना चाहिए। कालेजों से लगा कर देहाती स्कूलों तक में इस कार्य के लिए समितियां हों और संरक्षण बैज और तमगे एक-एक आने की कीमत पर लोगों में बंटने चाहिएं, जिसे विद्यार्थी और अध्यापक बड़ी शान से अपने कपड़ों पर लगाएं और शपथ का पालन करें। संरक्षण शपथ में भू-संरक्षण जल-संरक्षण और जंगली जानवरों का संरक्षण निहित है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस दिशा में काफी अच्छा काम हो रहा है। शिकार और संरक्षण के लिए वहां पर कारगर और उपयोगी नियम हैं, जिनका अधिकांश लोग पालन करते हैं, फलस्वरूप वहां वनों का संरक्षण है, जंगली जानवरों का भी संरक्षण है। अमरीका में संरक्षण की खातिर विदेशों

से उपयोगी पक्षी लाकर छोड़े गए हैं। भारत से हजारों ही काले और भूरे तीतर तथा चकोर अमरीकी जंगलों में छोड़े गए, जहां वे बहुत अच्छी तरह पनप रहे हैं।

लेखक ने जंगली जानवरों के विषय में जो सुझाव ऊपर रखे हैं, ये सब व्यावहारिक हैं। संरक्षण के विषय में कोरी बातों से काम नहीं चलता और न आकाश-पाताल के कुलावे मिलाने से ही कोई काम चलता है। लेखक यह बात नि:संकोच रूप से लिखता है कि यदि हम स्वार्थ की खातिर ही—खाद्यान्न की यथेष्ठ प्राप्त के लिए ही जंगली जानवरों का कायदे से संरक्षण करें तो हमारे उद्योगों, चमड़े और भोजन के लिए मांस की आवश्यकता पूरी हो सकती है। संरक्षण का तात्पर्य है कि उचित संख्या में जानवरों की रक्षा हो सके और उनकी बेहद बढ़ती संख्या को घटाया भी जा सके। इस विषय में लेखक ने सन् 1951 में सबसे अच्छा कार्य महाराज धौलपुर (अब स्वर्गीय) महाराजा उदयभान सिंह का देखा, पर उससे पूर्व लेखक ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रसिद्ध सचित्र पाक्षिक पत्र 'लाइफ' में महाराज धौलपुर के जंगली जानवरों के संरक्षण सम्बन्धी कार्यों के चित्र देखे थे। धौलपुर जाकर लेखक महाराज की मोटर में बैठा और उन्होंने मोटर में गाजरें, रोटियां, अन्न के दाने और फलों के टुकड़े रख लिए। राज-प्रासाद से कुछ ही दूर आगे मोटर की आवाज सुन कर एक मादा सांभर भागती हुई मोटर की ओर आई। बच्चा पीछे-पीछे लजाता सा ठुमुक-ठुमुक कर मां के स्नेह से खिंच आया। मादा सांभर ने 8-10 गाजरें महाराज के हाथ से खाई और धीरे-धीरे जंगल में लौट गई। थोड़ी दूर आगे मोटर की आवाज सुनकर झुंड के झुंड तीतर पंखों के 'भिरं भिरं और भरं' शब्द के साथ उड़ कर आए और उन्होंने मोटर को घेर लिया। तीतरों को चुग्गा डाल कर कुछ बातें करके महाराज धौलपुर आगे बढ़े। एक फर्लांग आगे जाकर उन्होंने 'मुंशीजी, मुंशीजी' की आवाज लगाई तो गीदड़ों का एक जोड़ा भागता हुआ आया और मोटर के पास खड़ा हो गया। एक-एक रोटी मुंशी और मुंशियाइन को मिली, जिसे वहीं बैठ कर उन्होंने खाया। सौ सवा सौ गज की दूरी पर जंगली लोमड़ी आई, जिसे मांस के कुछ टुकड़े मिले। फिर आगे एक मंदिर के निकट तालाव के किनारे जो मोटर रुकी तो कूकली के कई जोड़े, एक दर्जन बड़ी मैनाओं और मचभैयों ने मोटर के भीतर प्रवेश किया। मोर तो मोटर के बाहर रहे, पर अन्य चिड़ियों में से कोई तो महाराज के सर पर बैठी, कोई बांह पर, कोई पीठ पर और सबने कुछ न कुछ भोजन पाया। महाराज धौलपुर ने दुखी होकर कहा, "जंगलों को इतनी बुरी तरह काटा जा रहा है कि जानवरों का रहना असम्भव हो गया है। सामने तालाब पर मैं रोजाना शेर दिखा सकता था, चीतल, सांभर भी काफी थे। ये सब जंगली जानवर और जंगली चिड़ियां हमारे साहित्य और हमारे जीवन के लिए बहुत सहायक हैं। संतुलित ढंग से इन्हें संरक्षण देना एक राष्ट्रीय योजना होनी चाहिए।"

जंगली जानवरों के जीवन सम्बन्धी फिल्म बनने भी बहुत आवश्यक हैं। शेर, बाघ, गैंडा, हाथी, गौर, जंगली भैंस, चीतल, कस्तूरा तथा अन्य जानवरों पर प्रामाणिक फिल्मों का बनना बहुत आवश्यक है। यदि फिल्म कम्पनियां यह कार्य करें और कालेजों तथा स्कूलों में उन्हें दिखाएं तो उन्हें घाटा नहीं रह सकता। अंग्रेजी में 'ट्रेडर होर्न' 'एस्किमों', 'ब्रिंग देम बैक अलाइव' 'अफ्रीका स्पीक्स' तथा अन्य ऐसी ही सुन्दर फिल्में हैं, जिनको

देखने से मनोरंजन के अतिरिक्त ज्ञान की वृद्धि भी होती है और उनसे जंगली जानवरों के संरक्षण की प्रेरणा भी मिलती है। इस प्रकार की फिल्में बनाने में व्यय तो पड़ेगा ही, पर सरकार से ऐसी फिल्मों के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में भी ये चलचित्र उपयोगी तो हैं ही साथ ही, जंगली पशुओं के संरक्षण का शुद्ध प्रोपैगंडा भी करेंगे।

यह कार्य केवल सरकारी कर्मचारियों के ही करने का नहीं है, वरन प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है कि वह संरक्षण-कार्य में योग दे और केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों की सरकारें इस आवश्यक कार्य में केवल रुचि ही नहीं, वरन सक्रिय कदम उठाएं, ताकि देश की संतुलित और चतुर्मुखी समृद्धि हो सके।

श्रीराम शर्मा

3—सृष्टि का उद्भव और विकास

विज्ञान ने महान प्रगति की है और जीवन सम्बन्धी सभी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है, पर सृष्टि की रचना कैसे हुई, जीवों का उद्भव कैसे हुआ ? इस प्रश्न का उचित उत्तर देने में वैज्ञानिक अभी तक सफल नहीं हो सके हैं। वैज्ञानिक स्पष्ट रूप से यह नहीं वता पाए हैं, कि विश्व का प्रारम्भ कैसे हुआ और हमारा भूमंडल, जो सूर्यमंडल का एक बहुत छोटा भाग है, किस प्रकार अवतरित हुआ, पर संभवत: भू मंडल की बनावट सृष्टि के उद्भव के समय उन्हीं तत्वों की वनी थी, जिनकी आजकल है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पृथ्वी के उद्भव का हम कोई भी सिद्धान्त मानें, पर यह बात तो माननी होगी कि प्रारम्भ में पृथ्वी गैस का एक उष्ण प्रकाश पुंज गोला थी और अपनी गैस की ही अवस्था में उसने चन्द्रमा को अपने से पृथक कर दिया। शून्य में व्याप्त तीव्रतम शीत ने पृथ्वी के वाह्य गैस को ठंडा करके जमा दिया और साथ ही उसकी गर्मी कम हो जाने से ऊपरी सतह फेनिल हो गई। वाद में वह वाह्य फेनिल रूप, पपड़ी या छिलके की तरह हो गया।

पृथ्वी के और प्राणियों के उद्भव के विषय में हमें यहां पौराणिक मत नहीं लेना है, हालांकि है वह भी वड़ा रोचक। वैज्ञानिकों के मत से पृथ्वी अव से दो अरव वर्षों से भी पहले सूर्य से अलग होकर एक स्वतन्त्र ग्रह बन गई थी। सूर्य से अलग होने के एक वर्ष बाद तक प्राणहीन पदार्थों का ही वनना विगड़ना चलता रहा। पृथ्वी पर प्राणियों का उद्भव किस प्रकार हुआ इस पर कुछ लिखने से पूर्व यह लिखना आवश्यक है कि पृथ्वी के प्रादुर्भाव के विषय में विभिन्न वैज्ञानिकों के क्या मत हैं। सन् 1749 में फ्रांस के वैज्ञानिक वफटन (Vofton) ने अपना मत प्रगट किया कि एक बहुत बड़े प्रकाशपिंड की टक्कर सूर्य से हो गई। फलस्वरूप सूर्य से बड़े-वड़े टुकड़े उचट कर बाहर हो गए और समय पाकर ठंडे हुए और हमारे वर्तमान ग्रह-उपग्रह वने।

उपर्युक्त निर्णय के वाद एक दूसरा सिद्धांत पृथ्वी के उद्भव के विषय में यह आया कि वह बहुत वड़ा प्रकाशपिंड सूर्य से टकाराया तो नहीं, पर उसके अति निकट से निकला तो उसके खिचाव से सूर्य के वाष्पपुञ्ज में वहुत जोर की लहरें उद्वेलित होकर उसकी परिधि से बाहर हो गईं। परिधि से वाहर निकला हुआ यह भाग कई हिस्सों में बंट गया तथापि धीरे-धीरे ठंडे होकर ये हिस्से—हमारी यह पृथ्वी और अन्य ग्रह-उपग्रह वन गए।

तदुपरांत सन् 1755 में विश्वविख्यात जर्मन विद्वान कांट और सन् 1796 ई० मे प्रसिद्ध गणितज्ञ लापलास ने पृथ्वी के उद्भव के विषय में अपने नए सिद्धान्त वैज्ञानिकों को दिए। अपने मत में उन्होंने कहा कि सूर्य के चारों ओर वाष्प का एक घेरा आच्छादित था, वह घेरा सम्भवत: सूर्य में ही होने वाले भयंकर विस्फोट के कारण उत्पन्न हुआ था। घूमते-घूमते सूर्य के वाष्पीय पिंड से कुछ भाग वाहर निकल पड़े और सूर्यजन्य आकर्षण के कारण वे उसका चक्कर काटने लगे। ये ही वाद में ठंडे होकर पृथ्वी तथा अन्य ग्रह-उपग्रह वने।

पर सन् 1951 में प्रसिद्ध विद्वान जेरार्ड पी० कूपर ने पृथ्वी के उद्भव के विषय में एक अन्य नवीन सिद्धान्त संसार को दिया। श्री जेरार्ड पी० कूपर के सिद्धान्त को प्रायः सभी विद्वानों ने मान्यता दी है। श्री जेरार्ड पी० कूपर के मत से शून्य (Space) में व्याप्त सब नक्षत्र धूल और गैस से पूरित हैं और गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के कारण घनत्व प्राप्त करके अंतरिक्ष में चक्कर लगा रहे हैं। पर वे प्रकाशमय क्यों हैं? इसका कारण श्री कूपर ने बताया है कि तीव्र गति से चक्कर काटते रहने के कारण उनमें इतनी उष्णता बढ़ गई है कि वे चमकते हुए तारों की हालत में आ गए हैं।

यद्यपि पृथ्वी सूर्य से अलग हो गई पर फिर भी उसका सम्पर्क सूर्य से बना रहा और वह अब भी उसकी परिक्रमा करती है। पृथ्वी ठंडी हो रही थी, पर फिर भी उसके चारों ओर वाष्प के बादल घिरे थे और इस कारण सूर्य-किरणें पृथ्वी के धरातल तक नहीं पहुंच पाती थीं। पृथ्वी पर जो पानी बरसता, वह पृथ्वी पर गिरने से पहले ही फिर भाप बन कर ऊपर उठ जाता। करोड़ों वर्षो बाद जब पृथ्वी काफ़ी ठंडी पड़ी, तब बरसने वाला पानी पृथ्वी पर रुक सका। उधर पृथ्वी को रह-रह कर ज्वालामुखी और भूकम्प कंपाते। पृथ्वी के भीतर से लावा ऊपरी पपड़ी को फोड़ कर बाहर निकलता और जम कर ठंडा हो जाता। जहां लावा निकल कर ठंडा हो गया वहां तो स्थल भाग बने और जमीन पर जहां-जहां लावा वहीं बैठ गया, वहां मीलों लम्बी दचकी जमीन में गड्ढे हो गए और समय पाकर वही महासागर बने। पृथ्वी के गर्भ की अग्नि ज्यों-ज्यों ठंडी होती गई त्यों-त्यों ऊपर धरातल पर सिकुड़नें पड़ती गईं। इस प्रकार पृथ्वी पर पहाड़ और घाटियां बनीं। वर्षा का पानी पृथ्वी के खड्डों में एकत्र होने लगा। और पृथ्वी के तीन चौथाई भाग में महासागर बने। इन महासागरों का पानी प्रारम्भ में मीठा था।

भयंकर तथा लगातार वर्षा से भाप तथा बादलों का प्रकोप कम हुआ और सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पहुंचने लगीं। इस प्रकार एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। पृथ्वी प्रकाश से देदीप्यमान हो उठी और उस पर इस परिवर्तन से जीवन का उद्भव भी सम्भव हुआ। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पृथ्वी की ऊपरी सतह उस समय नग्न और गरम रही होगी, अतः जीवन में अंकुर सर्वप्रथम समुद्र में ही फूटे। यह प्रगट है कि प्रोटोप्लाज्म या जीवपंक में ही सर्वप्रथम जीवन के अंकुर थे, जिन्हें केवल अणुवीक्षण यंत्र द्वारा ही देखा जा सकता है, जो एक प्रकार का चिपचिपा पारदर्शी पदार्थ था। इस प्रकार एक कोशीय जीवों का प्रादुर्भाव पानी में हुआ और सम्पूर्ण प्राणियों का केन्द्रबिन्दु एक कोशीय जीवन से प्रारम्भ हुआ। एककोशीय अवस्था से बहुकोशीय अवस्था विभाजन तथा अन्य कारणों से आ गई विशेष परिस्थितियों में कोशों ने विशेष कार्य प्रारम्भ किया और इस प्रकार धीरे-धीरे नए जीवों की उत्पत्ति हुई। उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट है कि सजीव की उत्पत्ति जल में लगभग एक अरब वर्ष पूर्व हुई। इस प्रकार जन्तुओं का यह रूप अचानक नहीं, वरन धीरे-धीरे विकास करके आया है। कोशीय जीवन बड़ा विचित्र होता है, उनका आकार गोल होता है और भीतर एक जीवबिन्दु रहता है। जीवबिन्दु के भीतर अनेक सूक्ष्म परमाणु होते हैं, जिनके चारों ओर बहुत छोटे-छोटे अणु तेजी से चक्कर लगाते रहते हैं।

जीवों के विकास की इस सीमा तक वनस्पति और जीव-जन्तुओं का एक ही क्रम

चला, पर विकासक्रम में कुछ ने अपने ऊपर सैलीलोज का आवरण चढ़ा लिया और हरे रंग का क्लोरोफिल (Chlorophyll) पैदा किया । हरे पदार्थ का यह गुण था कि जिस प्राणी के भीतर रहता, उसके लिए सूर्य के प्रकाश की शक्ति का उपयोग करके कार्बन-डाइ-आक्साइड (Carbon-Di-oxide) को हवा और पानी की खुराक में बदल देता और बस यही दो चीजें किसी भी प्राणी के लिए जरूरी हैं। ये पत्ते के हरे 'क्लोरोफिल' ही हमारे वृक्षों के पूर्वज हैं। जिन जीव कोषों ने सैलुलोज (Cellulose) का आवरण तो चढ़ा लिया, पर 'क्लोरोफिल' पैदा नहीं किया वे चलने फिरने योग्य तो हो सके पर गैस और पानी को अपने लिए हवा और पानी में न बदल सके । इसलिए जीवन धारण हेतु उन्होंने पड़ोसी हरे जीव-कोशों को खाना शुरू किया । इन्हीं जीव-कोशों को हम संसार के समस्त प्राणियों का पूर्वज कह सकते हैं, क्योंकि सारे संसार के जीवों का विकास इन्हीं से हुआ । एक कोशीय जीव बढ़कर दो भागों में बंट जाते थे और दोनों स्वतन्त्र जीव बन जाते थे और इसी तरह वे विभक्त होते रहते । यह परिवर्तन काफी समय तक चला, लेकिन उसके बाद वे एक-कोशीय जीव आपस में मिलकर एक संयुक्त कोशीय जीव की शकल में आने लगे और उनमें अब अलग-अलग होकर स्वतन्त्र जीव बनने की क्षमता न थी ।

समय पाकर इन संयुक्त कोशीय जीवों में परिवर्तन हुआ और प्रत्येक कोश अलग-अलग कार्य करने लगा । जीवों का शरीर भी एक नली के समान हो गया और जिनमें एक ओर मुखछिद्र रहता था, जिससे भोजन शरीर के भीतर पहुंच कर सब कोशों का पोषण करता था । तत्पश्चात एक भाग से दूसरे भाग तक संदेश पहुंचाने के लिए स्नायुमंडल का विकास हुआ और फिर धीरे-धीरे जब जीवों का विकास हुआ तो उनका आकार भी बढ़ गया और रक्तवाहिनी नलियों का जाल सा उनके शरीर के सब कोशों का पोषण करने लगा । चूंकि इन कोमल शरीर वाले जीवों ने अपने चिह्न (Fossil) नहीं छोड़े हैं इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि कितनी शताब्दियों तक ये जीव विकास करते रहे । पचास करोड़ वर्ष पुराना 'फासिल', जो मिला है, उससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि उस समय तक सब अमेरुदंडीय जीवों का विकास हो चुका था । इस समय तक पृथ्वी तो पहाड़ों और चट्टानों से भरी थी पर समुद्र में असंख्य प्राणी भर गए थे और जीवन-संघर्ष करते हुए विकास की ओर बढ़ रहे थे । इन जीवों को जीवित रखने के लिए समुद्र में छोटे-छोटे पौधों का भी उद्भव हो गया था ।

विभिन्न आकार-प्रकार के इन समुद्री जीवों में सबसे अधिक विकसित अर्थात पानी में रहने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त और काफी संख्या में संतान की उत्पति करने वाला, ताकि नयी-नयी जातियां बनें, एक ट्रिलोबाइट (Trilobite) नामक जीव था । बीस करोड़ वर्षों तक ट्रिलोबाइटों ने समुद्र में अपना शासन जमाया । इन जीवों के नाश के बाद जिस नए जीव ने अपना विकास किया वह समुद्री पनबिछिया (Water Scorpion) कहलाया । इन मांसाहारी जीवों के शरीर आठ-नौ फुट तक बड़े होते थे और अनेक विकसित जीवों को अपना भोजन बना कर बीस करोड़ वर्षों तक समुद्रों में वे ठाठ से रहे । फिर विकास क्रम में इनका भी लोप हो गया और मीठे पानी के जलाशयों के कीचड़ से भरी तह पर जीव जगत के भविष्य को बनाने वाले एक विशेष प्रकार के जीव स्वतन्त्र-रूप

से विकास कर रहे थे। इन जीवों के आकार भद्दे, छोटे और चपटे थे। मुखछिद्र के स्थान पर शिगाफ जैसा कटा था, जिससे वे अपना भोजन कीचड़ में से चूस लेते थे। पर प्रकृति ने दो अद्भुत उपहार इन जीवों को दिए थे, एक तो शरीर का कड़ा खोल और दूसरा उनका मस्तिष्क। समुद्री पनविछिया इन दोनों उपहारों के कारण इन जीवों को खाने में असमर्थ रहा। इन जीवों को स्ट्राकोडर्म या कवचधारी मत्स्य (Shell Skinned Fish) कहा जाता है।

इन्हीं कवचधारी मछलियों की एक शाखा से, जिनका विकास और आधिपत्य समुद्र में साढ़े सात करोड़ वर्ष तक रहा, हमारी मछलियों का विकास हुआ। इन विकसित मछलियों के शरीर में मेरुदंड था, जिसने हमारे जीव जगत के विकास में एक नया अध्याय ही प्रारम्भ कर दिया। मेरुदंड के साथ-साथ शरीर के भीतर हड्डियों का कंकाल भी बना और पक्षों (Fins) का भी विकास हुआ। इन मछलियों का शरीर सूच्याकार हो गया, जिससे वे पानी में बड़ी सुविधा से विहार करने लगीं। अब पानी की तलहटी के कीचड़ में न रह कर वे ऊपर तैरने लगीं, क्योंकि उनके सुफन पानी में शरीर को संतुलित तो रखते ही थे, गति में भी तीव्रता लाते थे। चूंकि अब कवच की कोई आवश्यकता न थी, इसलिए कवच भी गायब हो गया। सारे मीठे जलाशय जब इस प्रकार की मछलियों से भर गए तब इनको समुद्र में स्थान मिला, जहां इनकी अनेकों जातियां विकसित हुईं और वे पांच करोड़ वर्षों तक समुद्र में अपना आधिपत्य जमाए रहीं। इन मछलियों के दो मुख्य भेद थे (1) कोमल हड्डीवाली मछलियां, जैसे आजकल की हांगर (Shark) (2) कड़ी हड्डीवाली मछलियां जैसी आजकल अन्य साधारण मछलियां होती हैं।

कड़ी हड्डीवाली मछलियां अपेक्षाकृत अधिक संख्या में फैलीं और उनमें फेफड़े का भी विकास हुआ। अगर ऐसा न हुआ होता तो वे केवल पानी में ही सांस ले सकती थीं, और जब पृथ्वी का मौसम इतना खुश्क हो गया था कि सारे जलाशय मरे जीवों की लाशों से पट गए थे और पानी में प्राणवायु (Oxygen) की कमी हो गई थी, तब वे मर जातीं, पर फेफड़ों के कारण ऐसी संकटापन्न अवस्था में वे मछलियां पानी की सतह पर आकर बाहर की वायु में उसी तरह सांस ले लिया करतीं थी जैसे ह्वेल और सूस आदि करती हैं।

पृथ्वी पर फिर परिवर्तन हुआ और घनघोर वर्षा से सब सूखे जलाशय जब भर गए तब जल में प्राणवायु की कमी न रही और मछलियां फिर गलफड़ों से सांस लेने लगीं और उनके फेफड़े हवा की थैली के रूप में बदल गए। ये मछलियां ही आजकल की कड़ी हड्डी वाली मछलियों की पूर्वज हैं और इनकी बीस हजार जातियां हमारे समुद्रों तथा मीठे पानी के जलाशयों में भरी पड़ी हैं।

मछलियों के पांच करोड़ वर्षों के समय के प्रारम्भिक काल के दिनों में ही पृथ्वी पर वनस्पति का विकास हो रहा था। बिना पत्तियों और जड़ों के, ये पौधे सारी पृथ्वी पर फैलने लगे थे। धीरे-धीरे जब इनका विकास हुआ और मछली-युग जब तक समाप्ति पर आया, तब तक वे पौधे 40–50 फुट तक ऊंचे बढ़ने लगे थे। पृथ्वी पर इतनी हरे रंग की भोजन-सामग्री के लालच में पानी के जीव खुश्की पर आने के लिए ललचने लगे। जो जीव पानी से पृथ्वी पर आने लगे उन्हें उभयचर (Amphibious) कहते हैं।

उभयचर, जल और थल दोनों में रहने योग्य थे। उभयचरों का प्रारंभिक जीवन पानी में बीतता पर बड़े होने और फेफड़ों के कारण वह खुश्की पर भी रहते। पानी में भी खूब तैरते और पैरों के विकास के कारण खुश्की पर भी खूब दौड़ते तथा एक जलाशय के सूख जाने पर दूसरे में भाग जाते। इनके कान भी अद्भुत विकास को प्राप्त हो गए थे, जिनसे वे शत्रुओं से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो गए। उभयचरों ने पृथ्वी पर भोजन अधिक और शत्रु कम देखा तो वे अपना समय पृथ्वी पर ही अधिक बिताने लगे। पर उनके अंडे तो खुश्की में रह नहीं सकते थे, इसलिए पानी का सहारा भी उनके लिए आवश्यक हो गया। उभयचरों की रक्तवाहिनी नलियां और फेफड़े भी इतने विकसित नहीं थे कि वे खुश्की पर ही रह सकते। अतः उभयचर पानी के निकट वाले जंगलों में काफी संख्या में बढ़ने लगे। लगभग 10 करोड़ वर्षों तक पृथ्वी पर इन उभयचरों का बाहुल्य रहा, पर विकास क्रम में इनका भी लोप हो गया। इन्हीं उभयचरों के वंशज मेंढक इत्यादि अब भी दिखाई पड़ते हैं।

पर इसी समय जीवों की एक और शाखा भी अपने जीवन के लिए संघर्ष करके समय के अनुकूल परिवर्तन कर रही थी और धीरे-धीरे सारी पृथ्वी पर उनका ही आधिपत्य हो गया। ये उरंगम थे। इन उरंगमों को अंडे देने के लिए भी पानी की शरण लेने की आवश्यकता न थी, क्योंकि इन्होंने कड़े छिलके वाले अंडे देने का विकास कर लिया था। अतः कुछ भीमकाय उरंगमों को छोड़ कर, जो पानी से दूर नहीं जा सकते थे, बाकी सब उरंगम खुश्की पर ही रहने लगे। इस प्रकार खुश्की पर वानस्पतिक भोजन की भरमार के कारण इन जीवों की संख्या तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही गई, साथ ही आकार-प्रकार और भिन्न-भिन्न जातियों की वृद्धि भी होती गई। फलतः देखते-देखते समस्त भूमंडल पर इन उरंगमों का आधिपत्य हो गया। उरंगमों के विकास के लिए अन्य अनेक साधन भी थे। इनके पैर बड़े न होकर शरीर से सटे होने लगे, जिसके कारण बड़े भारी शरीर को चलाने-फिराने में बड़ी सुविधा होने लगी और गले की अपेक्षा पसलियों की सहायता से सांस लेने में सफल हो गए तथा रक्त संचार की व्यवस्था भी पूर्ण हो गई। धीरे-धीरे उरंगमों ने उचित वातावरण पाकर सारे भूमंडल को घेर लिया। अधिक समय तक स्थल पर रहने के कारण इन जीवों के पैर खुश्की पर चलने के योग्य हो गए। कुछ ने तो सांपों के समान पैर खो दिए, कुछ के पतवारनुमा हो गए और पानी में तैरने लगे तो कुछ के शरीर पर झिल्ली हो गई, जिससे वे आकाश में उड़ने लगे। आकाश में उड़ने वाले ये उरंगम हमारी चिड़ियों के पूर्वज नहीं हैं। चिड़ियों के पूर्वज तो वे उरंगम हैं, जिनको आर्कियोप्टेरिक्स (Archaeopteryx) कहते हैं। उरंगम के समान ही इसका जीवन था, पर केवल इनके शरीर पर पंख थे।

भीमकाय उरंगमों में डाइनासोर (Dinosaurs) सबसे प्रसिद्ध थे। इनकी अनेक जातियों में डिप्लोडोकस (Diplodocus) डाइनासोर की 90 फुट तक की लम्बाई हो गई थी। इस शाकाहारी जीव की पूंछ और गरदन बहुत लंबी और पतली थी, पर मस्तिष्क मुर्गी के अंडे के समान था। दूसरा प्रसिद्ध डाईनासोर ब्राक्रियासोरस (Brochiosaurus) था, जिसका वजन 50 टन होता था। वह सड़क पर खड़े होकर हमारे घरों की दूसरी मंजिल तक पहुंच सकता था। तीसरा डाइनासोर टाइरनोसोरस (Tyrannosourus)

कहलाता था। यह 6 इंच लंबे दांत वाला, 20 फुट ऊंचे माथे पर नुकीले सींगवाला, गरदन पर कड़े कवच वाला, मांसाहारी एक भयानक जीव था। इसकी पूंछ पर सींग-नुमा तेज अस्त्र होते थे। दस करोड़ वर्षों तक इन जीवों का पृथ्वी पर राज्य रहा।

इसके बाद पृथ्वी पर जलवायु में फिर परिवर्तन हुआ, दलदल वाले भाग सूख गए और अतल से पहाड़ों की चोटियां आकाश तक पहुंचने लगीं। उत्तरी ठंडी हवाओं से सब पेड़-पौधे समाप्त हो गए। इस प्रतिकूल जलवायु में वे उरंगम, जो नम और गर्म जगहों में रहने वाले थे, जीवन यापन में असमर्थ हो मिट गए। एक अन्य प्रकार का उरंगम शरीर को हलका करके परों का विकास करके आकाश में उड़ने की तैयारी कर रहा था। परिस्थितियां अनुकूल थीं, उन्हें सफलता भी मिल गई। आगे चलकर ये ही चिड़ियां बनीं। कोमल परों के कारण ही चिड़ियों के शरीर का तापमान एक जैसा रहने लगा। अत: अब शरीर को गरम रखने के लिए सूर्य की गरमी की आवश्यकता नहीं रही। पंखों से उड़कर वे रक्षा और भोजन प्राप्त करने लगीं। उरंगमों की एक शाखा तो पक्षी बनी पर दूसरी शाखा से कुछ छोटे जीव अपना अलग विकास करने लगे। ये चूहे के आकार के चार पैरों वाले गरम रक्त के जीव (Hot blooded mammals) थे। इनका मुख्य भोजन मांस था। गरम रक्त के जीव होना और शरीर पर बालों का विकास ही इनकी विशेषता थी।

ये जीव इस प्रकार के थे कि कीचड़ में नहीं रह सकते थे, अत: दलदल के सूखते ही जैसे ही बरफ से पृथ्वी ढक गई वैसे ही इन जीवों ने विकास किया। भारी शरीर वाले बैठकर खानेवाले उंरगम तो हिम आंधियों से नष्ट हुई वनस्पति के कारण भोजन न मिलने से मर गए, पर चूहे जैसे बालों वाले स्तनपोषी जीवों की भरमार होने लगी। इन स्तनपोषी गरम खून वाले, घने बालों वाले जीवों के मतिष्क भी विकसित थे। इन जीवों के भ्रूण शरीर के भीतर ही पलने लगे और अंडों के स्थान पर बच्चे पैदा होने लगे। डकबिल प्लैटिपस तथा एकिडना को छोड़ सब स्तनपोषी बच्चे पैदा करते हैं। बच्चों को स्तनों से दूध पिलाकर पालने से उन्हें काफी सुविधा बच्चे पालने में मिलती है।

भूमंडल पर अब मौसम में पहले जैसी बात नहीं रही थी। गरम जलवायु के अनुकूल नए-नए पेड़ पौधे उगने लगे थे, चारों ओर घास ही घास हो गई, पर ये प्रारम्भिक स्तनपोषी तो मांसाहारी थे, अत: वनस्पति इनके लिए व्यर्थ थी। पर जब इनकी संख्या बढ़ती गई और कीड़े-मकोड़े आदि भोजन के लिए पर्याप्त न रहे, तब विवश होकर कुछ जीव शाक-पात से पेट भरने लगे। इस तरह स्तनपोषियों की दो शाखाएं हो गईं, शाकाहारी और मांसाहारी। मांसाहारी फिर शाकाहारियों को अपना भोजन बना कर गुजर करने लगे। स्तनपोषियों में एक जीव मनुष्य आज भी सारी पृथ्वी पर अपना आधिपत्य जमाए है। स्तनपोषियों की एक शाखा आकाश, एक शाखा थल और एक शाखा जल में है पर उनमें सबसे अधिक विकसित मनुष्य ही है।

मानव भूमंडल का स्वामी यों ही नहीं बन गया है, इसके लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ा है। भोजन की सुविधा से जिस प्रकार भीमकाय उंरगमों का विकास हुआ था, उसी तरह स्तनपोषियों में भी मैमथ (mammoth) जैसे विशालकाय जीवों का भी विकास हुआ, पर मनुष्य का जिन जीवों से विकास हुआ वे जीव बहुत छोटे कद

थे। ये जीव तेज भागने वाले, पेड़ों पर चलने में बड़े चतुर होते थे। धीरे-धीरे समय पाकर इन्हीं जीवों से लंगूर, बन्दर, वनमानुष और मनुष्यों की शाखाएं निकलीं और उनके विकास में लगातार संघर्ष में पांच करोड़ वर्ष लग गए। मनुष्य के पूर्वजों में कुछ ऐसी विशेषताएं थीं, जो उसकी उन्नित का आधार बन गई। चारों पैरों में से अगले दो पैर हाथों में बदल गए, जिसके सहारे पेड़ों का तना पकड़ कर वे चढ़ने--उतरने लगे। हाथों में भी उंगलियों ने उनकी उन्नति में शीघ्रता से सहायता दी। पेड़ों पर निवास के कारण इनकी दृष्टि भी पैनी हो गई। पर सबसे अद्भुत था इनका मस्तिष्क, जिसने इनको सबसे बुद्धिमान जीव सिद्ध करके संसार का राज्य दिया।

जीवों के विकास के संघर्ष के दिनों में एकबार फिर उत्तर की बर्फीली हवाओं ने सारी पृथ्वी पर हिमयुग ला दिया। पेड़ सूख गए और पेड़ों पर निवास करने वाले जीव इस भयानक स्थिति में बचे न रह सके, बस वे ही जीव, जो पेड़ों से उतर जमीन पर भी चल फिर सकने में समर्थ हुए, हिमयुग में बच सके। यह जीव मनुष्य थे। समस्त जीवों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसके न विषदंत है, न पंख, न पंजे पर उसके पास मस्तिष्क है, जिसके बलबूते पर उसने संसार के समस्त जीवों और प्रकृति पर विजय पाई है। पेड़ों से उतर कर पृथ्वी पर रहने के समय से 7 करोड़ वर्ष पूर्व से पृथ्वी पर चार बार हिमयुग आया था। पर मनुष्य ने किसी न किसी प्रकार अपनी रक्षा की। वनस्पति तथा फल-फूल की कमी में वह मांस खाने लगा और मांस प्राप्त करने के लिए अन्य जीवों को मारने के लिए उसने पत्थर और लकड़ी का सहारा लिया।

मांसाहारी मनुष्य को जंगलों की कोई विशेष आवश्यकता न थी। गाय, बैल, सुअर आदि पशु मैदानों में ही पर्याप्त मात्रा में थे। लाठी में नुकीले पत्थर लगा कर मनुष्य ने नवीन प्रकार के हथियार बनाए और आग को अपने वश में करके अपनी सुरक्षा और भोजन का एक अच्छा साधन बना लिया। मनुष्य की इस अवस्था का समय 25 हजार ईसा पूर्व से 15 हजार ईसा पूर्व तक का माना जाता है और इस युग को मानव का पूर्वप्रस्तर काल (Old Stone age) कहते हैं। इस काल में मानव गिरोहों में रहता था और इधर-उधर शिकार मारा करता था। गिरोह के प्राणी कार्यों का बंटवारा कर लिया करते थे। कुछ शिकार करते तो कुछ खाल इत्यादि साफ करते। कुछ मनुष्य इन दिनों में भी झोंपड़े बनाकर रहना पसंद करते थे। एक गिरोह के मनुष्य दूसरे गिरोह के मनुष्यों से युद्ध करते रहते थे। इसके बाद ईसा पूर्व 15 हजार वर्षों से 3 हजार ईसा पूर्व तक का काल नवीन प्रस्तर काल (New Stone age) कहलाता है। इस युग में मनुष्य ने एक ही स्थान पर रह कर बीज बोकर खेती करना भी सीखा। उसने शिकारी बाना उतारा और वह किसान बन गया। जिन पशुओं को मार कर वह खाता था उनको पालतू बना कर उसने उनसे अधिक उपयोगी काम लेना प्रारम्भ कर दिया। अब तो पशु से रक्षा, मांस, दूध, सवारी खेती आदि का सब काम मनुष्य ने लेना शुरू कर दिया। भोजन की समस्या न रही और आराम का समय निकल आया तो उसने मिट्टी के बर्तन, ऊनी कपड़े, चित्र आदि बनाने में वह समय लगाया और आग से खाना पकाना भी सीख लिया।

नवीन प्रस्तर काल के बाद कांस काल (Bronze age) आया, जिसमें मनुष्य

ने कांसे के हथियार बनाए। वह पक्के मकान बनाने लगा, बड़े-बड़े गांवों को नगर बनाने लगा। उसने पहिए का आविष्कार किया, जिससे यातायात की सुविधा हो गई। सबसे बड़ी उन्नति, जो मनुष्य ने इस युग में की, वह थी, लिपि और वर्णमाला की। इसके बाद मनुष्य ने लोहे का भी आविष्कार किया। लोहा कांसे की अपेक्षा हथियारों के लिए अधिक उपयुक्त था। बस लोहे की प्रचुरता से लौह-काल का आरम्भ हो गया। लौह-काल अब तक चला आ रहा है। इस प्रकार जीवधारियों का यह लम्बा मार्ग तय हो गया, जिसके एक ओर जीवपंक तथा दूसरी ओर मनुष्य है।

सूर्य से अलग होकर हमारी पृथ्वी जब एक स्वतन्त्र ग्रह बनी, तब वह गैसीय अवस्था में थी। धीरे-धीरे वह ठंडी हुई। पृथ्वी के उस प्रारम्भिक समय में कोई भी जीवन उस पर न था। ज्वालामुखी की फुफकार और भूकम्पों की कंपकंपाहट से एक अरब वर्षों तक प्राणिहीन पदार्थ ही बने बिगड़े। आदिकाल के बाद ही विराट जीवहीनता के बीच जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। यह जीवन एक कोशीय जीवन के रूप में ही हुआ। तत्पश्चात संघबद्ध होकर ये जीव विकसित होने लगे। स्वतन्त्र सत्तावाले ये कोश जब संयुक्त होकर किसी का निर्माण करते हैं, तो पृथक हुए बिना ही उसका संरक्षण करते हैं।

जड़ और जीव में भेद है। जीव, कोश तथा कोश-समूह का संकलन है, जिसकी निश्चित शकल सूरत होती है। जीव अपने बढ़ने के लिए भोजन करते हैं, मल त्याग करते हैं, सांस लेते हैं और खाद्य पदार्थ तथा प्राणवायु की हलकी आंच में जलने से शक्ति पाते हैं। जीव में गति होती है। जीव संतान उत्पन्न कर सकते हैं। वृद्ध होने पर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जीवों को इस प्रकार दो भागों में बांट सकते हैं :—

(1) जीव-जन्तु

(2) पेड़-पौधे

पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं की बाह्य रचना में तो भेद है ही, आन्तरिक रचना में भी भेद है। पेड़ पौधे हृदय तथा मस्तिष्क से हीन तो हैं ही गतिशील भी नहीं होते। पेड़-पौधे जीव-जन्तुओं की तरह ठोस पदार्थ का भोजन नहीं कर सकते। जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों के कोशों में भी अंतर रहता है। जीव-जन्तुओं के कोशों में भित्ति नहीं होती और क्लोरोफिल का अभाव रहता है।

इन जीव कोशों की सहायता से एक-एक देह बनी है। उनको हम अनुवीक्षण से देख सकते हैं। जिस प्रकार एक-एक ईंट से भवन तैयार होता है, उसी प्रकार एक-एक कोश से शरीर की रचना हुई है। हर कोश के चारों ओर कोशभित्ति होती है, जिससे कोश के भीतर की वस्तुओं की रक्षा होती है और दूसरा कोश पहले से अलग रहता है। इन्हीं कोशों में जीवन-रस भरा रहता है। भिन्न-भिन्न कार्य करने के लिए भिन्न-भिन्न कोश होते हैं और भिन्न-भिन्न वंशों तथा वर्गों के कोश समूह भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। कोशों के भीतर का जीवन-रस गाढ़ा और चिपचिपा सा पदार्थ होता है, जिसमें 90 प्रतिशत पानी और शेष प्रोटीन, गंधक और फास्फोरस आदि होते हैं। जल ही जीवन का आधार है और इसका प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि कोशों के जीवन-रस में यदि पानी सूख जाए तो जीवनक्रिया समाप्त हो जाती है। जब एक कोश बढ़ जाता

तो दो में विभक्त हो जाता है और वे दोनों अलग स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लत हैं। कोश विभाजन दो प्रकार से होता है :— परोक्ष कोश विभाजन और प्रत्यक्ष कोश विभाजन। परोक्ष कोश विभाजन में तो कोश का शरीर बढ़ कर दो भागों में बंट जाता है और दोनों भाग दो स्वतन्त्र जीव हो जाते है। परन्तु प्रत्यक्ष कोश विभाजन में किसी जीव का कोई विशिष्ट कोश, जो संतानोत्पादन कोश कहलाता है, जीव से अलग निकल पड़ता है और नए जीव की उत्पत्ति करता है। यही अलैंगिक संतानोत्पत्ति कही जाती है। परन्तु जब नर और मादा के शरीर से संतानोत्पादक कोश निकल कर मादा के भीतर मिल कर संदूक कोश बन कर नए जीव के रूप में परिवतिति होकर पैदा होता है तो उसे लैंगिक संतानोत्पत्ति कहते हैं। सब स्तनपोषी जीवों की संताने इसी प्रकार पैदा होती हैं।

4–भारत का वर्तमान प्राकृतिक रूप

भारत पृथ्वी का एक बहुत छोटा अंग है। पृथ्वी का पूर्व रूप क्या था और सूर्य से अलग होकर उस पर वाष्प ज्वालामुखियों तथा वर्षा का क्या प्रभाव पड़ा और उसका वर्तमान रूप कैसे आया, इसका विवेचन किया जा चुका है। भारत में क्या-क्या प्राकृतिक परिवर्तन हुए उन सबको विशद रूप से वताने की आवश्यकता तो नहीं है, क्योंकि हमारा देश पृथ्वी का ही एक अंग है पर यह वताना आवश्यक है कि भारत का वर्तमान रूप कैसे आया।

भारत का सबसे पुराना भाग हिमालय नहीं है वरन विंध्य पर्वत और कुछ दक्षिण के प्लेटू हैं। हिमालय, वर्तमान पंजाव, उत्तर प्रदेश, विहार और वंगाल के स्थान में किसी समय सागर था। पृथ्वी के गर्भ से भयंकर ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ और लावा भीतर से वाहर आ गया और गरम लावे और अन्य पदार्थों के फिकने से हिमालय वना और हिमालय तथा विंध्य पर्वत के वीच सागर वना रहा। हिमालय के गगनचुंबी शिखरों पर अव भी समुद्र में पाए जाने वाले जीवों के पथराए चिह्न मिलते हैं। कालांतर में वर्षा और हिमपात के कारण हिमालय से नदियों का प्रवाह हुआ और वे समुद्र में गिरने लगीं। धीरे-धीरे पंजाव, उत्तर प्रदेश, विहार और वंगाल के डेल्टा के रूप में वनने लगे। अव भी वंगाल की खाड़ी में डेल्टा भूमि आगे वढ़ती जाती है। सुन्दरवन धीरे-धीरे बंगाल की खाड़ी की ओर वढ़ता जाता है। भारत के इस भूभाग के निर्माण में दो चार लाख वर्षों से भी वहुत अधिक समय लगा होगा। दक्षिण पठार में भी भूकम्पों के झटकों से पृथ्वी ऊपर उठी और वर्षा के जल से अरव सागर की ओर प्रवाहित होने लगी। इसी प्रकार भारत का वर्तमान रूप वना।

सृष्टि का उद्भव तथा एक कोशीय जीवों से लगाकर वर्तमान मानव का रूप कैसे आया, उस पर तो पहले ही लिखा जा चुका है। भारत एशिया का भूखण्ड है और उस पर जीवों की रचना पृथ्वी के अन्य भागों के समान ही हुई, पर इस पुस्तक का उद्देश्य तो केवल भारत के ही जंगली जीवों का वर्णन करना है। इस संदर्भ में पृथ्वी के अल्प जीवों की आवश्यकतानुसार चर्चा भले ही हो जाए, उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया के कंगारू, तस्मानिया का जंगली कुत्ता डिंगो, उत्तरी ध्रुव के ध्रुवी श्वेत भालू,

युक्त राष्ट्र अमेरिका के ग्रिजली, भालू, रेनडियर प्यूमा, दक्षिणी अमेरिका के जोगार मामा और पिकेरी सुअर और अफ्रीका के जेवरा, हार्ट बीस्ट, अफ्रीकन हाथी, चरखा —आदि वहां के अन्य अनेक आकर्षक जीवों का वर्णन भले ही कर दिया जाए, पर विशेष रूप से हमें केवल भारत के जीवों की चर्चा करनी है।

5—जीव-जन्तुओं का वर्गीकरण

भारत के जंगली जीवों के वर्गीकरण का प्रश्न एक प्रकार से विश्व के जीव-जन्तुओं के वर्गीकरण में आता है, क्योंकि भारत का भूखण्ड विश्व का एक भाग है और भारत के जंगली जीवों का वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टि से उसी आधार पर होना चाहिए, जिस आधार पर विश्व के जीव-जन्तुओं का वर्गीकरण होता है। जीव-जन्तुओं में जलचर, थलचर और नभचर होते हैं और आकार-प्रकार में वे ह्वेल मछली और हाथी से लगाकर खरगोशों तथा चूहों तक पाए जाते है। जीव-जन्तुओं में कीट-पतंग भी होते हैं, पर क्या सांप, चूहे, हाथी, गेंडा और गीध तथा मछली आदि में कोई समता है ? फिर मक्खी और केंकड़ा आदि से वर्गीकरण में उनका सम्बन्ध है ? यदि कहीं हाथी या ऊंट के हाड़ कंकाल पड़े मिलें और साथ ही चूहों, पक्षियों और आदमियों के कंकालों को ध्यान से देखा जाए तो क्या कोई समता उनमें दिखाई पड़ती है। यदि उनमें कोई समता है तो हाथी, खरगोश, मक्खी, मकड़ी और केंकड़े में क्या समता है ? देखने से स्पष्ट हो जाता है कि हाथी, ऊंट, पक्षी, चूहा, मानव और मछली के कंकाल मे रीढ़ की हड्डी—मेरुदंड होती है। पर मक्खी, केंकड़े और मकड़ी में यह हड्डी नहीं होती और इसलिए सुविधा की दृष्टि से नहीं वरन शरीर-रचना की वैज्ञानिक दृष्टि से हम जगत के सम्पूर्ण जीव-जन्तुओं को दो विभागों— दो समूहों में विभाजित कर सकते हैं। शरीर-रचना की दृष्टि से वे समूह हुए —

1. **मेरुदंडीय (Vertebrates)**
2. **अमेरुदंडीय (Invertebrates)**

जीव-जन्तुओं के उपर्युक्त दो समूहों—मेरुदंडीय और अमेरुदंडीय—में यह भेद है कि मेरुदंडीय में रीढ़ की हड्डी होती है तथा उससे लगा हुआ अस्थिपंजर होता है पर अमेरुदंडीय में रीढ़ की हड्डी नहीं होती और न अस्थिपंजर ही होता है। विकास के क्रम में इस प्रकार मेरुदंडीय समूह के जीव अमेरुदंडीय जीवों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के हुए। जीवों का उद्भव पहले अमेरुदंडीय प्राणी के ही रूप में था और धीरे-धीरे विकसित होकर वह निम्न श्रेणी से ऊंची श्रेणी पर पहुंचा है। इस विकासक्रम में मेरुदंडीय जीवों में काफी परिवर्तन हुआ और विशेषताएं आ गईं। मेरुदंडीय समूह के हजारों प्रकार के प्राणियों को पांच समुदायों में बड़ी आसानी से विभाजित किया जा सकता है, यथा—

1. **मत्स्य समुदाय**
2. **उभयचर समुदाय**
3. **उरंगम समुदाय**

4. पक्षि समुदाय
5. स्तनपोषित समुदाय

पृथ्वी पहले जलमय थी और सबसे पहले मेरुदंडीय समूह में मछली का प्रादुर्भाव हुआ। मछली ही सबसे पहला प्राणी था, जिसके रीढ़ की हड्डी थी। मत्स्य विकासक्रम में मछली के बाद उभयचर प्राणी आए और मेंढक को सब जानते हैं कि वह फुदकने वाला प्राणी जल और थल दोनों में समान रूप से रह लेता है। मेंढक पानी में अण्डे देता है और अंडे से निलकने के बाद कुछ समय तक वह पानी में ही मछली के समान तैरता रहता है, पर धीरे-धीरे उसके हाथ पैर निकल आते हैं और वह स्थल पर भी फुदक सकता है।

उभयचर प्राणियों से उरंगम जीवों का विकास हुआ । उरंगम जीवों के टांगें तो निकलीं, पर वे इतनी छोटी-छोटी होती हैं कि वे प्राणी पेट के बल रेंगते से प्रतीत होते हैं। उरंगम—पेट के बल रेंग कर चरने वाले—समुदाय में कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनके हाथ पैर नहीं होते जैसे सांप। सांपों के हाथ पैर इसलिए लुप्त हो गए, क्योंकि उन्होंने उनसे काम नहीं लिया। कुछ बड़े सांपों के शरीर में (पाइथन) टांगों के चिह्न अवशिष्ट हैं। मगर गिरगिट और कछुए की गिनती उरंगम समुदाय में है।

यहां यह जानना भी आवश्यक है कि— मत्स्य, उभयचर और उरंगम समुदाय के प्राणी ठंडे रक्तवाले हैं अर्थात उनके शरीर का तापमान बाह्य तापमान के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। इनके बाद विकासक्रम में जो जीव आए, वे गरम रक्त वाले जीव हुए अर्थात जिनके शरीर का तापमान वातावरण की सरदी-गरमी से घटता-बढ़ता नहीं है। मनुष्य का नार्मल तापमान कड़ाके की ठंड और भयंकर लू में एक ही रहेगा, पर मछली और सांप का तापमान एक-सा नहीं रहेगा।

विकासक्रम में उरंगम जीवों के बाद पक्षी आए। पक्षियों के पहले पंख नहीं होते थे वरन चमगादड़ों की भांति उड़ने के लिए झिल्ली होती थी, मुंह में दांत होते थे और उनके गिरगिट की सी पूंछ भी होती थी।

पक्षियों के बाद उद्भव हुआ स्तनपोषित समुदाय के प्राणियों का। पर यहां यह बताना आवश्यक है कि स्तनपोषित जीवों का विकास पक्षियों से नहीं हुआ। उभयचर जीवों के दो प्रकार के विकास हुए। एक से तो उरंगम और पक्षी और दूसरे प्रकार की विकास शाखा से किसी दूसरे ही प्रकार से कालांतर में स्तनपोषित जन्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ। वैज्ञानिकों के मत से पशु-संसार में स्तनपोषित समुदाय के प्राणी ही श्रेष्ठ हैं और उनमें भी मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, इसीलिए उसे 'अश्रफुउल मखलूक़ात—(Lord of Creation) कहते हैं।

स्तनपोषित समुदाय डकबिल को छोड़कर अंडज नहीं होते 'जरायुज' अर्थात उनके बच्चे पैदा होते हैं और स्तन से दूध पीकर पलते हैं। स्तनपोषित समुदाय की मादाओं के स्तन होते हैं। स्तनपोषित समुदाय की एक विशेषता यह है कि इनके सब जीवों के शरीर पर बाल होते हैं। जो स्तनपोषित लोमहीन होते हैं, जैसे ह्वेल। उनके भी मुंह पर दो-चार बाल होते हैं। बालों का एक विशेष उद्देश्य शरीर की गरमी को कायम रखना है। इस समुदाय के किन्हीं-किन्हीं जीवों के ऊन होती है। ऊन भी एक प्रकार का

बाल हैं। ऊन के किनारे दांतेदार होते हैं पर बालों के किनारे सीधे होते हैं। बालों के भी दो भेद हैं, एक तो वे, जो कभी झड़ते नहीं हैं, जैसे घोड़े की गरदन के अयाल और दूसरे प्रकार के बाल होते हैं, जो समय पाकर झड़ जाते हैं; तथापि उनके स्थान पर नए बाल निकल आते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सभी जानवरों के शुद्ध ऊन या बाल हों। बालों के स्थान पर मोटे कांटे और कड़े छिलके की तहें सी होती हैं। सेही के कांटे और आर्मिडिलो के शरीर के छिलके मूल रूप में बाल के परिवर्तित रूप हैं।

कुछ स्तनपोषित समुदाय के जीवों के सिरों पर सींग होते हैं, जो हड्डियों के परिष्कृत रूप मात्र हैं। सींग भी दो प्रकार के होते हैं; एक तो वे, जो पतनशील होते हैं अर्थात एन्टलर्स यानी प्रतिवर्ष गिर कर नए आने वाले। झांक और सांभर के पतनशील सींग होते हैं। दूसरे प्रकार के स्थायी सींग 'होर्न' होते हैं जो एक बार निकल कर आजीवन रहते हैं। ये सदा दुहरे होते हैं। इन पर एक खोल चढ़ा होता है, जो बालों का ही एक रूप है। गैंडे के जो सींग होता है, वह भी उसी पदार्थ का बना होता है, जिसके बाल बने होते हैं। वह एक प्रकार से ठोस और अनेक बालों को मिलाकर बनाया हुआ पदार्थ है।

स्तनपोषित समुदाय की एक विशेषता यह भी है कि उस समुदाय के जीवों के मुंह में प्रायः दांत होते हैं। इस समुदाय में दांतों का एक विशिष्ट स्थान है। दांतों के आकार-प्रकार और रचना से जन्तु की जाति, आहार, स्वभाव आदि अनेक बातों का पता चल जाता है। दांतों के चार प्रकार हैं—

1. **कृंतक दंत—Incisors**
2. **कीलें—Canines**
3. **दूध की डाढ़ें—Pre-molars**
4. **डाढ़ें—Molars**

कृंतक दन्त दोनों जबड़ों में सामने होते हैं और पैनी छैनी की सी इनकी धार होती है, क्योंकि इनका काम काटने का है। प्रत्येक जबड़े में 6 से अधिक कृंतक दंत नहीं होते, केवल थैली वाले जन्तुओं में किसी-किसी जबड़े में 4 या 10 तक होते हैं। रोमंथकर श्रेणी (Ruminants)—जुगाली करनेवाले—के जंतुओं के ऊपर के जबड़े में और दंतविहीन श्रेणी के दोनों जबड़ों में कोई भी कृंतक दंत नहीं होता। केवल कुछ चमगादड़ ही ऐसे हैं, जिनके ऊपर और नीचे के जबड़े में समसंख्यक कृंतक दंत नहीं होते वरना बहुधा सबके समसंख्यक होते हैं।

कीले नुकीले दांत होते हैं, जो कृंतक दांतों के इधर-उधर एक-एक होते हैं। शिकार करने वाले मांसभक्षी जन्तुओं के कीले विशेषरूप से बड़े होते हैं। शिकार को जकड़ कर पकड़ लेना कीलों का मुख्य कर्तव्य है। किसी-किसी के कीले असाधारण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं, जैसे सुअर की कांपें। किसी-किसी जाति में केवल नरों के ही कीले होते हैं, मादा के नहीं।

गालों में कीलों के पीछे दूध की डाढ़ें होती हैं। दूध की डाढ़ें तो दूध के दांतों के साथ निकलती हैं। दूध के दांतों में असली डाढ़ें नहीं होतीं। भिन्न-भिन्न जन्तुओं की दूध की डाढ़ों के आकार में फर्क होता है, किसी पर एक शिखर और किसी पर दो

शिखर उठे होते हैं। सबसे पीछे वाली दूध की डाढ़ को मांस-डाढ़ कहते हैं। यह मांस के टुकड़े करने में बड़ी उपयोगी होती हैं। बिल्ली के वंश के जन्तुओं में विशेष रूप से यह डाढ़ बड़ी होती है, पर कुतरने वाले (Rodents) जीवों के दूध की डाढ़ें नहीं होतीं।

डाढ़ें, दांतों की पंक्ति में सबसे पीछे होती हैं। किसी भी जबड़े में एक ओर तीन से अधिक कभी नहीं होतीं। डाढ़ों के एक से लगाकर चार तक जड़ें होती हैं। घास-पात भोजी जन्तुओं में, जिनको बहुत पीसना पड़ता है, उनमें डाढ़ों की संख्या अधिक होती हैं और वे चौड़ी होती हैं, पर मांसभक्षियों को डाढ़ों की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती, अतः उनके डाढ़ों की संख्या कम होती है। बिल्ली वंश के मुंह में एक ओर एक ही डाढ़ होती है। केवल कुछ ही जन्तु ऐसे हैं, जिनके मुंह में डाढ़ें नहीं होतीं। डाढ़ें एक बार निकल कर वृद्धावस्था तक रहती हैं। केवल हाथी के ही पुरानी घिसी डाढ़ गिर जाने पर नई निकलती हैं। उसकी डाढ़ें जीवन में चार बार बदलती हैं, क्योंकि लगभग 8 मन चारे का रस हाथी को रोजाना निकालना पड़ता है तब कहीं उसका पोषण होता है। जन्तुओं के दांतों का विवरण लिखने की एक सरल विधि इस प्रकार है—

कृंतक दंत $\frac{3-3}{3-3}$, कीलें $\frac{1-1}{1-1}$, दूध डाढ़ें $\frac{3-3}{2-2}$, डाढ़ें $\frac{1-1}{1-1}$ $=30$

लकीर के ऊपर वाले अंक ऊपर वाले जबड़े के एक-एक ओर की संख्या बताते हैं और नीचे के अंक नीचे वाले जबड़े के एक-एक ओर की संख्या बताते हैं। अतः बिल्ली के ऊपर वाले जबड़े में 3 कृंतक दंत दोनों ओर हैं, इतने ही नीचे हैं। ऊपर के जबड़े में दूध की डाढ़ों की संख्या प्रत्येक ओर 3 है और नीचे वाले में प्रत्येक ओर केवल 2 ही डाढ़े हैं।

स्तनपोषित समुदाय के जीवों के लगभग सब के ही 4 टांगे—हाथ पैर— होती हैं, पर जलचर स्तनपोषित जीवों के केवल अगली दो ही टांगे होती हैं, जिनसे वे तैरते हैं और वे पिछली टांगों का काम पूंछ से ले लेते हैं। नभचर स्तनपोषित जीव अर्थात चमगादड़ के हाथों की अंगुलियां झिल्ली को साधे रहती हैं। अब रही स्थल के स्तनपोषितों की बात सो उनके हाथ-पैर भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। किसी की अंगुलियों पर नाखून होते हैं, जो मुड़े, तेज, लम्बे और भोथरे सब प्रकार के होते हैं। थलचर स्तनपोषित समुदाय के जीवों के नख भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। बिल्ली, शेर आदि के नख मांस की गद्दी में छिपे रहते हैं, आवश्यकता पड़ने पर ही निकलते हैं। भालू और बिज्जू के नख भोथरे होते हैं और बाहर निकले होते हैं। घास-पात खाने वाले जन्तुओं के खुर या सुम होते हैं। इनमें भी कुछ 'सम संख्यक खुर वाले' जीव हैं— जैसे सुअर, बारहसिंगा, हिपो और हिरन। 'विषम संख्यक खुर वाले' जीवों में गैंडा और टेपिर आदि हैं। ठोस खुर ही सुम कहलाते हैं, जैसे गधे और घोड़े के।

सब स्तनपोषित जन्तुओं के मुंह में जिह्वा होती है, जो स्वाद का ज्ञान कराती है। जीभ पर कांटे या दाने उसके भोजन के प्रकार पर निर्भर हैं, जैसे बिल्ली के वंश की जिह्वा पर कांटों का होना। किसी-किसी की जीभ में रबड़ के समान बढ़ने की शक्ति होती है, जिससे भोजन प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिलती है। दंतविहीन श्रेणी के 'चींटी खोर' की जीभ ऐसी ही होती है। ह्वेल की जीभ बाहर नहीं निकल सकती।

किसी-किसी की जीभ में ग्रासक शक्ति होती है और वे जीव जिह्वा में पकड़ कर वस्तु को मुंह में पहुंचा सकते हैं।

स्तनपोषित जीवों के बच्चों का पालन दूध पीकर होता है और सब मादाओं के स्तन होते हैं। कम-से-कम दो स्तन होते हैं और अधिक-से-अधिक बारह। अधिकांश के स्तन पेट पर होते हैं, पर किसी-किसी के जांघों के बीच और किसी-किसी के वक्षस्थल पर भी होते हैं। गर्भ में भ्रूण का पालन माता के रक्त से नाल द्वारा होता है। केवल 2 वर्ग ऐसे हैं, जिनके भ्रूण गर्भ में नाल से नहीं पलते। वे दो वर्ग हैं—एक छिद्री श्रेणी (Monotremata) और थैलीवाले जन्तु की श्रेणी (Marsupialia)। एक छिद्री श्रेणी के जन्तु की मादाएं अंडे देती हैं और अंडे में से निकल कर बच्चे स्तन द्वारा पलते हैं, जबकि थैलीवाले जन्तु की श्रेणी की माता अपूर्ण बालक को जन्म देती है। ये बच्चे माता की पेट की थैली में रहकर स्तनों से दूध पीकर पलते हैं।

स्तनपोषित समुदाय के जीवों की एक विशेषता यह है कि अनेक जीवों के बच्चों की आंखें जन्म के समय बन्द होती हैं। यह प्रायः मांसाहारी जीवों के लिए लागू है। कुछ स्तनपोषित जीवों के बच्चे जन्म के बाद ही चलने-फिरने लगते हैं, पर अनेक काफी समय तक माता-पिता की देख-रेख में रहते हैं, जैसे मानव के बच्चे। चाल-ढाल की दृष्टि से भी स्तनपोषित जीवों में काफी भेद है। कुछ तो 'अंगुलचर' होते हैं, जो पैरों की गद्दियों की अंगुलियों पर चलते हैं, कुछ 'पदतलचर' हैं, जो पूरा तलवा भूमि पर रखते हैं। शेर, कुत्ता, बिल्ली, अंगुलचर हैं, भालू पदतलचर हैं। तीसरे प्रकार के वे हैं, जो न अंगुली पर चलते हैं न तलवे पर, वरन तलवे का कुछ भाग ही भूमि पर रखते हैं। बिज्जू, ऊदबिलाव इसी तरह चलते हैं।

जलचर स्तनपोषित जीवों के आकार अपेक्षाकृत बड़े होते हैं, क्योंकि पानी में उन्हें कम परिश्रम करना पड़ता है। पर स्थलचर स्तनपोषितों के आकार में बड़ा भेद होता है—एक ओर हाथी है तो दूसरी ओर चुहिया है। वृक्षों पर रहने वाले स्तनपोषित जीवों के शरीर प्रायः छोटे होते हैं।

विकास की दृष्टि से स्तनपोषी समुदाय काफी आगे है और संसार के सब प्राणियों में इनके मस्तिष्क सबसे अधिक विकसित होते हैं। उनमें भी मनुष्य के मस्तिष्क का तो कहना ही क्या। स्तनपोषी जीवों में मांसाहारी, शाकभाजी, फलाहारी, कीटभोजी एवं सर्वभक्षी सब प्रकार के जन्तु हैं।

स्तनपोषी जीवों की इंद्रियां भी बड़ी प्रबल होती हैं, जो उनकी आवश्यकता और रक्षा में सहायक होती हैं। इंद्रियों में आवश्यकता के अनुसार ही तीव्रता होती है। उदाहरण के लिए हाथी अपनी ओर आने वाली वायु से एक मील की दूरी के आदमी की गंध ले लेता है। हिरन आदि की घ्राणेन्द्रिय और श्रवणेंद्रिय बहुत तेज होती हैं तभी वे अपनी रक्षा कर पाते हैं। चमगादड़ की झिल्ली त्वचेन्द्रिय का काम करती है। पक्षियों की दृष्टि-शक्ति तो स्तनपोषितों को नहीं प्राप्त है, पर फिर भी वह प्रायः अच्छी होती है, मांसाहारियों की कुछ जातियां तो रात में भी देख सकती हैं।

स्तनपोषी जीवों का आमाशय भी विशेष प्रकार का, एक सीधी थैली जैसा होता है। केवल जुगाली करने वाले जीवों का आमाशय चार भागों में बंटा होता है। ये जन्तु

पहले तो जल्दी-जल्दी भोजन को निगल लेते हैं, फिर सुविधा से जुगाली करते हैं तो भोजन के गोले आमाशय के दूसरे भाग में बन कर उसके मुंह में जाते हैं और तब मुंह में अच्छी तरह भोजन पिस कर आमाशय के तीसरे भाग में जाता है, जहां से चौथे में हजम करने वाले रस में मिलकर आंत में चला जाता है और पोषण तत्व खींच लिया जाता है।

जीव-जन्तुओं के रंग उनकी आवश्यकता और रहने के स्थान के अनुरूप ही होते हैं। प्रकृति ने जीव-जन्तुओं के रंग उनकी भोजन प्राप्ति और रक्षा के लिए दिए हैं। शेर का रंग प्रगट करता है कि वह धूप, बादल और जंगल का जानवर है। अपने रंग के कारण ही वह शिकार के अति निकट शिकार द्वारा देखे बिना पहुंच जाता है। बाघ के जो गुल होते हैं उनके कारण वह झाड़ी में पहचाना नहीं जा सकता। गिरे हुए पेड़ों के तनों के पास खड़ा गैंडा आसानी से नहीं दिखाई पड़ता, वह प्राकृतिक वातावरण के रंग में मिल जाता है। अफ्रीका का जिराफ अचल खड़ा हुआ आसानी से पहचाना नहीं जा सकता कि वह कोई जीव है या मिमौसा का वृक्ष। ऋतु के हिसाब से भी रंगों में परिवर्तन हो जाता है। शीतकाल में खरगोश और लोमड़ी का रंग अपेक्षाकृत श्वेत हो जाता है और बरफ के रंग में मिल जाता है, ऐसा न हो तो वे भूखों मर जाएं। मादा को अपने बच्चों और अंडों की रक्षा करनी होती है इसलिए अनेक मादाओं का रंग बहुत सादा होता है, जैसे मोरनी और मुर्गी। यदि मोरनी और मुर्गी का रंग मोर और मुर्ग के समान हो तो गीदड़ और अन्य हिंस्र जीव उन्हें दूर से ही देख लिया करें और कदाचित वे दुनिया से ही मिट जाएं।

जीव-जन्तुओं के वर्गीकरण में उन्हें अब तक दो समूहों में (1) मेरुदंडीय, और (2) अमेरुदंडीय में विभाजित किया गया है। मेरुदंडीय समूह को पांच समुदायों में विभक्त किया गया है। अब इस वैज्ञानिक वर्गीकरण में कुछ और आगे चलते हैं। स्तनपोषी समुदाय की ऊपर व्याख्या की गई है। स्तनपोषी समुदाय के जीव विशेष लक्षणों के आधार पर अनेक वर्गों में बांटे जाते हैं। जैसे जितने जुगाली करते हैं वे रोमन्थकर श्रेणी में और जितने मांसभक्षी हैं वे मांसभक्षी श्रेणी में। फिर प्रत्येक श्रेणी में अनेक वंश माने गए हैं, जैसे मांसभक्षी श्रेणी में बिल्ली वंश, श्वान वंश और भालू वंश। इसी प्रकार प्रत्येक वंश के अन्तर्गत कई-कई जातियां होती हैं, बिल्ली वंश में जैसे शेर, बाघ, सिंह आदि।

फिर एक ही जाति के जीवों की रचना में भी भेद हो जाते हैं, जैसे चरख की जाति में दो प्रकार के जीव होते हैं। एक कद में छोटा और धारीदार होता है तो दूसरा कद में बड़ा और देह पर गुल होते हैं। अतः ये चरख जाति के जातिभेद हुए। एक ही जातिभेद में भी रंग, रूप, भोजन से थोड़ा बहुत अन्तर हो जाता है तब एक जातिभेद (Species) में दो या अधिक नसलें (Varieties) मानी जाती हैं। अतः हम देखते हैं कि जीव जगत के भेदोपभेद का क्रम इस प्रकार है—

(1) समूह (Division), (2) समुदाय (Class), (3) वर्ग (Order), (4) वंश (Family), (5) जाति (Genus), (6) उपजाति (Species) और नसल (Variety)।

यहां यह बताना भी आवश्यक है कि जीवों के भेद इतने प्राकृतिक नहीं हैं, जितने

कृत्रिम हैं। विकासक्रम में मनुष्य ने अपनी आवश्यकता और प्रजनन शास्त्र के अनुसार भेद किए हैं। वैज्ञानिकों ने भी एक-एक बात को लेकर भेद किए हैं। किसी ने हाथ-पैरों की रचना को आधार मान कर जीवों के भेदोपभेद किए हैं, तो किसी ने मस्तिष्क को आधार माना है, तो कोई दांत को ही आधार मानता है। हम इसका वैज्ञानिक, पर सरल ढंग से ही विवेचन करेंगे। स्तनपोषी जीवों के बच्चे गर्भ में नाल से पलते हैं। मां के शरीर से नाल द्वारा भ्रूण को भोजन मिलता है, अतः हम स्तनपोषी जन्तुओं को दो खंडों में बांटते हैं—

1. **एक तो वे, जो गर्भ में नाल द्वारा पोषित हैं, जिन्हें हम 'प्लेसेंटल' कह सकते हैं।**
2. **दूसरे वे, जो गर्भ से अपूर्ण अवस्था में उत्पन्न होते हैं और बाद में माता के दूध से पलते हैं। इन्हें हम 'इम्प्लेसेप्टल' कह सकते हैं। इस खंड में दो कक्षाएं हैं—(अ) एकछिद्री कक्षा (Monotremata) (ब) थैलीवाली कक्षा (Morsupialia)।**

नालपालित 'प्लेसेंटल' जीवों का विवेचन अब हम प्रसिद्ध विद्वान ब्लाइथ के अनुसार करते हैं। ब्लाइथ के अनुसार कुछ नालपालित जीवों के मुंह में चारों प्रकार के दांत होते हैं, जिन्हें 'टाइपोडानशिया' (Typodontia) कहते हैं—जैसे, बन्दर, चमगादड़, मनुष्य और मांसभक्षी जीव। कुछ नालपालित जीवों में दो ही प्रकार के दांत होते हैं, जिन्हें 'डिप्लोडानशिया' (Diplodontia) कहते हैं और इन जीवों की शरीर-रचना उत्तम नहीं होती जैसे चूहा, गिलहरी, बारहसिंगा, भेड़, गाय, बैल, हाथी, सुअर आदि शाकभक्षी। तीसरा प्रकार दांतों के अनुसार 'आइसोडानशिया' (Isodontia) का है, जिनके सब दांत एक ही आकार के होते हैं—जैसे व्हेल।

चारों प्रकार के दांत वाले 'टाइपोडानशिया' के जीवों में बन्दर, चमगादड़ को छोड़ कर सबके शरीर पर बालों की एक ही तह होती है और मनुष्य को छोड़कर इस समूह में दो श्रेणियां हैं:—

1. **चौदस्ते, जिनमें बन्दर, वनमानुष और लीमर जातियां आती हैं।**
2. **चमगादड़, इस श्रेणी के सब जीवों के हाथ और भुजाएं झिल्ली से मढ़े होते हैं।**

'टाइपोडानशिया' के शेष जीवों के शरीर पर दो प्रकार के बाल होते हैं—अर्थात उनकी एक भीतरी तह होती है। इस भाग के भी दो उपभाग हैं अर्थात—

1. **मांसभक्षी, जिनके नुकीले कीले तथा तेज डाढ़ें होती हैं और इनकी डाढ़ों पर नोकें नहीं होतीं।**
2. **कीटभक्षी, इस श्रेणी में छोटे-छोटे स्तनपोषी प्राणी हैं, जो कीड़ों-मकोड़ों पर जीवित रहते हैं। मांसभक्षियों की अपेक्षा इनके मुंह में दांतों की संख्या अधिक होती है।**

'डिप्लोडानशिया' विभाग के जीव निम्नांकित चार कक्षाओं में विभाजित हैं—

1. **कुतरने वाले जीव (Rodentia)—इनके दो ही प्रकार के दांत होते हैं और कृंतक दांत तेज छेनी के समान होते हैं, डाढ़ें चपटी होती हैं।**

2. दंतविहीन जीव (Edentates)—इन जीवों की विशेषता यह है कि इनके मुंह में कृंतक दांत और कीले होते ही नहीं हैं।

3. रोमन्थकर-जुगाली करने वाले (Ruminants)—इस श्रेणी के सब जीव जुगाली करते हैं। इनके चपटी डाढ़ें होती हैं और ऊंट को छोड़ किसी के कृंतक दांत नहीं होते। पंजों के स्थान पर खुर होते हैं।

4. मोटी खाल वाले (Pachydermata)—जो खुर वाले जुगाली नहीं करते वे इस श्रेणी में हैं—जैसे घोड़ा, सुअर।

'आइसोडानशिया' भाग में जल के मांसभक्षी स्तनपोषी जीव आते हैं और इसके अन्तर्गत एक ही वर्ग है —

1. सिटेशिया (Cetacea)

उपर्युक्त वर्णन को सुविधा के लिए यहां एक तालिका द्वारा भली-भांति समझा जा सकता है —

नालपालित जीव (Placentals)

(1) टाइपोडानशिया (Typcdontia)
(चार प्रकार के दांत वाले)

1. प्रधान भागीय (Primates)

चौदस्ते (Quadrumana) | चमगादड़ (Chiroptera)

2. द्वितीय भागीय

मांसभक्षी (Carnivora) | कीटभक्षी (Insectivora)

(2) डिप्लोडानशिया (Diplodontia)
(दो प्रकार के दांत वाले)

1. पंजों वाले जीव (Unguiculata)

कुतरने वाले जन्तु (Rodentia) | दंतविहीन जीव (Edentata)

2. खुरदारजीव (Ungulata)

रोमंयकर (Ruminantia) | मोटे खाल वाले (Pachydermata)

(3) आइसोडानशिया (Iscdontia)
(एक प्रकार के दांत वाले)

सिटेशिया (Cetacea)

इम्प्लेसेण्टल (Implacental)
जिनके बच्चे नाल के द्वारा नहीं पलते

थैली वाले जन्तु (Marsupialia) — एक छिद्री जन्तु (Monotremata)

उपर्युक्त वर्गीकरण से पाठकों को जीव-जंतुओं के विकास का क्रम आसानी से समझ में आ जाएगा। साधारण दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि बलवान तथा क्रूर जीव ही अपना आधिपत्य जमाते हैं। पर ऐसी बात नहीं है। वास्तविक बात यह है कि जीवन के विकास क्रम में जो अपनी निकटवर्ती स्थिति के अनुकूल नहीं चलता वह जीवन संघर्ष में लोप हो जाता है और जितना ही विकसित प्राणी घास-पात पर निर्भर रहता है वह उतना ही उन्नतिशील होता है। पुराने युग के विशालकाय उरंगम, जो अपने पास-पड़ोस के जीवों का संहार करते थे मिट गए। अब पुस्तकों और अजायबघरों में ही उनका अस्तित्व है। बढ़ती मानव आबादी तथा भोजन की सीमित राशि के कारण हाथी, गैंडा और टेपुर आदि भी लोप होने की सीमा पर पहुंच गए हैं। ऊपर लेखक ने बताया है कि अन्य जानवरों के मिट जाने का भी पूरा खतरा है, पर फिर भी घास-पात खाने वाले जानवर अपने विकासक्रम में हैं।

6—मांस भक्षी वर्ग

मांस भक्षी वर्ग बड़ा विशाल है और वैज्ञानिकों ने इस वर्ग में उन सब नालपोषित प्राणियों को रखा है, जिनका मुख्य आहार मांस है। इस वर्ग में बिल्ली वंश और उसकी जातियां, कूकुर वंश, भालू वंश, कस्तूरी वंश, और चरखा वंश रखे गए हैं। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि भालू आदि ऐसे जीव भी हैं, जो मांस भक्षी होने के साथ-साथ फल-फूल, जड़ें और शहद आदि को भी अपनी खुराक में रखते हैं।

मांस भक्षी वर्ग के अधिकतम विकसित जीव खुश्की पर ही रहते हैं, पर वैसे इस वर्ग में ऐसे जीव भी आते हैं जो खुश्की और पानी दोनों स्थानों में अपने आहार के कारण गतिशील होते हैं। उदाहरण के लिए ऊदबिलाव।

मांस भक्षी वर्ग की विशेषताएं समझने के लिए उस वर्ग की विशेष बातें जानना आवश्यक है ताकि मांस भक्षी वर्ग के अतिरिक्त अन्य मांस खाने वाले जानवरों के प्रति कोई भ्रम न हो। सांप, मगर, आदि भी मांस खाते हैं पर उनका वर्ग दूसरा है क्योंकि वे नालपोषित नहीं हैं। मांस भक्षी वर्ग के सब जीवों की कुछ विशेष समानताएं हैं। इस वर्ग के सब जीवों के अंगुलियां होती हैं और उनमें मुड़े हुए तेज नाखून होते हैं। पंजों में अंगुलियों की संख्या कम से कम चार अवश्य होती है। इस वर्ग के जीवों के दांत

मांस को पकड़ने, चीरने-फाड़ने के काम के होते हैं और कीले, दृढ़ तथा विकसित होते हैं ताकि शिकार को मजबूती से पकड़ सकें। इस वर्ग के जीवों के ऊपरी और नीचे के जबड़ों में तीन-तीन जोड़े कृंतक दांतों के होते हैं।

इस वर्ग के सभी जीवों के पैरों में गद्दियां होती हैं और इस वर्ग के बिल्ली वंश के अनेक प्राणियों के पैरों के नाखून गद्दियों में छिप जाते हैं। इस वर्ग के अनेक वंशों के विषय वर्णन में पर्याप्त भेद मिलेगा जैसे बिल्ली वंश की जीभ खुरखुरी होती है और कुत्ता वंश की जीभ मुलायम होती है, जो यह प्रकट करती है कि यह वंश जीभ से मांस या हड्डी को नहीं खरोचता वरन तोड़ कर हड़पता है।

•बिल्ली वंश (Family Felidae)

बिल्ली वंश में सिंह और शेर से लगा कर घर की बिल्ली तक आते हैं। चीते को छोड़ कर सब एक ही जाति में भी आते हैं। मांस भक्षी वर्ग में बिल्ली वंश पूर्णरूपेण मांस भक्षी की परिभाषा में आता है—अपने शिकार का पीछा करने और खाने की दृष्टि सभी से। फुर्ती, श्रवण शक्ति और दृष्टि भी उनकी गजब की होती है। घ्राण शक्ति अपेक्षाकृत तेज नहीं होती। इस वंश के जीवों के शरीर की रचना, अवयवों का गठन और उनकी चालाकी तथा अपने शरीर के अनुपात से कहीं अधिक बड़े शिकार को मारने और खींच लाने की क्षमता उनमें है।

इस वंश के जीवों के साधारणतया 30 दांत होते हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है—

3/3 कृंतक दांत, 1/1 कीले, 3/2 दूध की डाढ़ें, 1/1 डाढ़ें। पर कभी-कभी ऊपरी जबड़े में दो ही दूध की डाढ़ें होती हैं और तब कुल दांतों की संख्या 28 ही रह जाती है। इस वंश के सभी जीवों के कुकुरदंत (कीले) बड़े ही दृढ़ और नुकीले होते हैं और चाहे वह घर की बिल्ली हो, चाहे विशालकाय शेर––सबका मांस खाने का ढंग एक-सा ही होता है। बिल्ली वंश और मांसभक्षी वर्ग के अन्य वंशों के जीवों में मुख्य भेद दांतों का यह है कि बिल्ली वंश के जीवों के नीचे के जबड़े के कृंतक दांत सीधे पर अनुप्रस्थ पंक्ति में होते हैं, जबकि अन्य मांसभक्षियों में इन दांतों का दूसरा जोड़ा ऊपर को उठा होता है।

बिल्ली वंश के जीवों के पुट्ठों में सिकुड़ने की अद्भुत क्षमता होती है और स्प्रिंग की भांति उछल कर वे जानवर को पकड़ते हैं और उनके मुड़े तेज नख एकदम शिकार में गड़ जाते हैं। इन जीवों के पंजों में हर नाखून के नीचे एक गद्दी होती है तथा इन छोटी-छोटी मखमल की भांति मुलायम गद्दियों के पीछे एक बड़ी गद्दी होती है। प्रत्येक नाखून इन छोटी गद्दियों में भीतर चला जाता है और इस प्रकार टूटने-घिसने और खराब होने से बचा रहता है। इन्हीं गद्दियों के कारण इस वंश के जीव बिना आहट के बड़ी आसानी से चलकर अपना शिकार पकड़ लेते हैं।

बिल्ली वंश के प्राणियों की जीभ खुरदरी और कांटेदार होती है। कांटों का रुख भीतर को होता है. जिससे हड्डियों से मांस खरोचने में बड़ी सहायता मिलती है, जबकि कुत्ता वंश हड्डी को तोड़ कर सटकता है।

बिल्ली वंश के जीवों की पुतलियां प्रकाश के अनुसार घटती-बढ़ती रहती हैं, जिससे वह अन्धेरे में भी देख लेते हैं; धूप में पुतलियां छोटी हो जाती है और अन्धेरे में बढ़ जाती हैं। इस वंश के मुंह पर जो बाल होते हैं, जिन्हें मूछें कहते हैं; वे इस वंश के लिए बड़े उपयोगी होते हैं। इन मूछों के बालों में विशेष चेतनायुक्त नाड़ी संस्थान होता है, जिनसे बिल्ली वंश को मार्ग-प्रदर्शन में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त जिस तंग स्थान से मूछें निष्कंटक जाती हैं, उस स्थान से इस वंश के जीव भी निकल जाते हैं। घर की बिल्ली अपनी मूछों से तंग छिद्रों में होकर अपना रास्ता निश्चित करती है।

इस वंश के जीवों का रंग पीलापन लिए हुए लाल, बादामी, भूरा होता है। खाल पर धारियां या चित्ते होते हैं। बिल्ली वंश के जीवों का रंग काला नहीं होता, बस काला बघेरा ही अपवाद स्वरूप है, पर चित्ते उस पर भी होते हैं।

बिल्ली वंश यों तो सारे भूमंडल में फैला हुआ है, पर फिर भी भारत और अफ्रीका में वह अधिक पाया जाता है। इस वंश के जीव पानी में घुसना पसन्द नहीं करते और मजबूर होने पर ही पानी में घुसते हैं, पर शेर और मछुआ बिल्ली इस बात के अपवाद हैं।

1-गीर सिंह

सिंह या शेर बबर (लायन) जिसे केसरी भी कहते हैं, अब भारतवर्ष में नहीं पाया जाता। प्राचीन संस्कृत साहित्य में सिंह या केसरी का ही वर्णन आता है, व्याघ्र या शेर (टायगर) का नहीं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपमा भी केसरी से दी जाती है। आजकल भारत में जो सिंह पाया जाता है वह काठियावाड़ की गीर पहाड़ियों में ही सीमित है, इसलिए उसे गीर सिंह कहते हैं। कुछ दिनों पूर्व तक आबू की पहाड़ियों के आस-पास वह आ जाता था। अब भी कोई भूला भटका सिंह वहां मिल जाता है। गीर सिंह और अफ्रीकन सिंह में जो भेद है, वह है उसके केसर-अयाल---के सम्बन्ध में। अफ्रीकन नर सिंह के गरदन और सिर तथा कंधों पर बड़े-बड़े बाल होते हैं और गीर सिंह में उनका अभाव होता है। पर अफ्रीका में भी बिना अयाल के सिंह होते हैं और सेनीगल क्षेत्र में बिना केसर का सिंह पाया जाता है। कुछ लेखकों का मत है कि कुछ वर्ष पूर्व तक किसी-किसी गीर सिंह के गरदन पर भी अयाल होते थे, पर अब नर गीर सिंह के जो गीर की पहाड़ियों में सुरक्षित हैं, केसर नहीं होते। भारत सरकार से सिंह को सुरक्षा प्राप्त है, अन्यथा वह भी लुप्त हो गया होता। उनकी संख्या भी सीमित है और इसीलिए उनको देखने वालों तथा पर्यटकों को कुछ कठिनाई होती है।

इस शताब्दी के प्रारम्भ तक सिंह-शेर बबर को पशुओं का राजा कहा जाता था, क्योंकि अपने अयालों के कारण वह बड़ा शानदार और स्वभाव से बड़ा शरीफ़ दिखाई पड़ता है तथा आवश्यकता पड़ने पर बड़ा खूंखार भी होता है, पर बाद में सिंह को एक प्रकार से इस पद से च्युत कर दिया गया है। अफ्रीका में शिकार खेलने वाले प्रसिद्ध शिकारी श्री सेल्युअस ने लिखा है कि सिंह अपना सिर इतना ऊंचा करके नहीं चलता जितना किसी शानदार जानवर को ऊंचा रखना चाहिए। इसलिए सिंह को पशुओं का राजा नहीं कहा जा सकता। पादरी डा० लिविंग्सटन ने भी उसके स्वभाव के विषय में उचित ही वर्णन किया है कि उसका स्वभाव नीच और कायरतापूर्ण होता है।



गीर सिंह

सिंह के केसर 3 वर्ष की अवस्था में शुरू होकर 6 वर्ष की आयु तक बढ़ते रहते हैं। सिंह की आयु के विषय में यह अनुमान लगाया जाता है कि उसकी आयु 30 से 40 वर्ष तक होती है। गीर सिंह तथा अफ्रीकन सिंहों का स्वभाव और शिकार मारने के ढंग एक से ही हैं और स्थान विशेष के कारण थोड़ा अन्तर हो जाने पर भी उनका रंग रेगिस्तानी बालू का सा तनिक पीलापन लिए होता है, जिससे स्पष्ट है कि वह मरुभूमि अथवा घास के क्षेत्र का पशु है या ऐसे क्षेत्र का, जहां पहाड़ी इलाके में घने जंगल नहीं होते हैं। सन् 1830 तक अहमदाबाद के आस-पास सिंह साधारणतया पाए जाते थे। सन् 1873 में गुना (मध्य प्रदेश) में एक सिंह मारा गया था और सन् 1864 में इलाहाबाद से पच्चीस मील पश्चिम शिवराजपुर के निकट भी एक सिंह मारा गया था। जब सन् 1866 में इलाहाबाद से जबलपुर तक रेलवे लाइन बन रही थी तब एक बहुत बढ़िया अयालों वाला सिंह इलाहाबाद से अठारह मील दूर मारा गया था। 19वीं शती के प्रारम्भ में पंजाब के हरियाना क्षेत्र में उत्तर की ओर को और खानदेश में दक्षिण की ओर को तथा राजपूताना के अनेक स्थानों में सिंह पाए जाते थे। पूर्व की ओर को रीवा तथा बिहार के पलामू में भी सिंह पाए जाते थे। अनुमानतः पहले सिंह भारत के पश्चिमोत्तर भाग और मध्य भारत में फैला हुआ था।

गीर सिंह और अफ्रीकन सिंह के बारे में यह बड़ा विवाद रहा है कि वे दोनों एक ही हैं अथवा भिन्न-भिन्न हैं। विभिन्न लेखकों ने अपनी अपनी राय प्रगट की है, पर अन्त में यही निश्चय किया गया कि दोनों में कोई भेद नहीं है, पर केसर और कद की दृष्टि

से इन दोनों को अलग मानने में कोई आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए। अन्यथा वैज्ञानिक दृष्टि से अफ्रीकन और गीर सिंह में कोई भेद नहीं है। भारत से सिंह के लुप्त होने के अनेक कारण हैं। बढ़ती आबादी और घास के जंगलों के कटने तथा राजस्थान में अपेक्षाकृत पानी की कमी हो जाने से सिंह मिट गया, पर मध्य भारत और इलाहाबाद के आस-पास से उसके हट जाने का एक कारण यह भी है कि उसे शेर ने वहां टिकने नहीं दिया। महाराज ग्वालियर ने अपने जंगलों में अफ्रीका से लाकर कुछ सिंह छोड़े थे पर वे वहां पनप नहीं सके। सघन जंगलों मे तो शेरों ने उन्हें मार भगाया और बाहर जंगली जानवरों की कमी से वे मनुष्य भक्षी हो गए तो मार डाले गए। फल यह हुआ कि आश्रय मिलने पर भी सिंह भारत में पनप नहीं सके। अफ्रीका में सिंह अब भी बहुतायत मे पाए जाते हैं, जहां वे आठ-आठ दस-दस की टोली में रहते हैं। सिंह प्रतिदिन बंधे समय पर दहाड़ते हैं और जमीन पर मुंह लगाकर जब दहाड़ते हैं तो आस-पास के जानवर भय से कांप उठते हैं और उनमें भगदड़ मच जाती है। ऐसी दशा में सिंह उन्हें सरलता से ही पकड़ लेते हैं। सिंह जब आदमखोर हो जाते हैं तब इतना परेशान करते हैं कि आदमी के काम में बाधा पड़ती है। अफ्रीका के मसाई जाति के लोग घेरा बांध कर हाथों में भाले और चमड़े की ढाल लेकर उनका शिकार करते हैं। वे सिंह को घेरे में घेर लेते हैं और जब सिंह तड़प कर आक्रमण करता है तब मसाई लोगों के भाले एकदम उसके शरीर में घुस जाते हैं और सिंह तड़प कर सिकुड़ कर बिंधे भालों से गिर जाता है।

सिंहों का भूरा रंग मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इनका सिर चपटा और बड़ा होता है। अतः इनकी शक्ल बिल्ली से न मिलकर कुत्ते से मिलती है। सिंह की पूंछ पर काले बालों की झौरी, गाय बैल की पूंछ की झौरी की तरह होती है। सारा शरीर तो सिंह का पीले से रंग का होता है पर कान के बाहरी भाग की जड़ के पास कुछ कालापन होता है। बच्चों के शरीर पर धारियां सी होती हैं, जो वयस्क होने तक गायब हो जाती हैं।

गीर सिंह की लम्बाई 6 से $6\frac{1}{2}$ फुट तक होती है और ढाई तीन फुट लंबी पूंछ इससे अलग होती है। ऊंचाई में सिंह 3—$3\frac{1}{2}$ फुट तक पाए जाते हैं। नर की अपेक्षा मादा लगभग एक फुट छोटी होती है। गीर सिंह शेर की अपेक्षा ऊंचे तो होते हैं, पर शेर के बराबर भारी और मजबूत नहीं होते। हां, शेर की अपेक्षा दहाड़ में सिंह बड़े तेज होते हैं और नियमित समय पर दहाड़ते हैं। जिन इलाकों के आस-पास आबादी नहीं होती वहां तो वे प्रातःकाल 9-10 बजे तक सुने जा सकते हैं। बदली वाले मौसम में तो रात बीत जाने के बाद भी दिन तक में सिंहों का गुर्राना-भर्राना सुनाई पड़ता रहता है।

जब कोई सिंह अपने लिए मादा ढूंढ लेता है तो प्रायः जीवन पर्यन्त उसके साथ जोड़ा कायम रखता है। शिकार तो सिंह गिरोह बांध कर करते हैं। कुछ लोगों का यह भ्रम है सिंह मुर्दाखोर नहीं होते। वृद्ध हो जाने या किसी प्रकार से शिकार के अयोग्य हो जाने पर सिंह अगर गांवों के समीप रहते हैं तो आदमखोर हो जाते हैं। आदमी न मिलने पर भेड़ बकरियों को भी मारते हैं, यहां तक कि वे चूहे आदि को

भी पकड़ने लगते हैं और तो और कभी-कभी तो भूख से व्याकुल हो घास पर भी मुंह मार देते हैं। भारत जैसे देश में जब सिंह दो चार व्यक्तियों को मार कर खा जाता है तो भयंकर आतंक का वातावरण उन इलाकों में फैल जाता है, पर मातावेली जैसे युद्ध प्रिय कबीलों में ऐसी प्रथा नहीं है और पालतू पशु का हत्यारा तथा आदमखोर सिंह अगर केवल बकरी तक को मार देता है तो समझ लेना चाहिए कि उसकी मौत आ गई। पूरा कबीला सिंह को घेर कर मार डालता है।

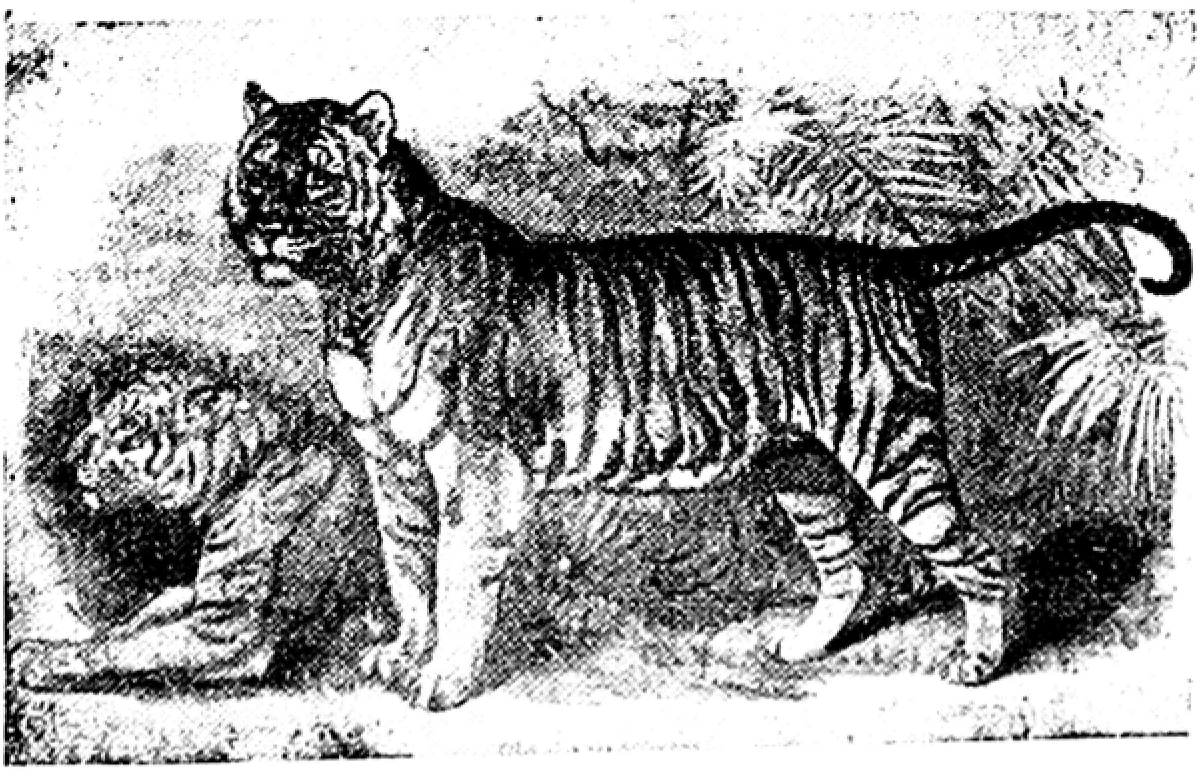
भारत में अपनी प्राकृतिक दशा में सिंहनी दो या तीन बच्चे ही देती है। दक्षिण अफ्रीका में श्री सेल्यूअस के मत से सिंहनी के प्रायः तीन बच्चे ही एक बार में होते हैं, जिनमें से बाल्यावस्था में मरने वालों की संख्या भी कम नहीं है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि सिंह के बच्चों की आंखें जन्म के समय बन्द न होकर पूरी खुली होती हैं। बच्चे पांच छै मास तक माता के संरक्षण में रहते हैं और फिर अलग होकर अपना जीवन स्वयं ही व्यतीत करते हैं।

सिंह को अगर बाल्यावस्था में ही पकड़ कर पाला जाए तो वह शेर की अपेक्षा अधिक नम्र स्वभाव का होता है और अपेक्षाकृत अधिक पालतू बनाया जा सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से गीर सिंह और अफ्रीकन सिंह एक होने पर भी इनको लेखक के मत से भिन्न ही मानना चाहिए। गीर सिंह आकार लम्बाई और ऊंचाई में अफ्रीकन सिंह से छोटे होते हैं और शक्ति में बघेरे से कुछ ही अधिक ताकतवर होते हैं।

2—शेर

शेर को अंग्रेज़ी में 'टाइगर' कहते हैं और वह एक प्रकार से एशियाई जानवर है। हिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रों में इसे कहीं 'बाघ' और कहीं 'चीता' कहते हैं। संस्कृत साहित्य में भी इसके लिए व्याघ्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत वांग्मय से स्पष्ट है कि शेर भारत में आर्यों के आगमन के बाद आया, क्योंकि वेदों और वेदों के बाद के ग्रन्थों



शेर और शेरनी

में सिंह शब्द का ही प्रयोग मिलता है, व्याघ्र तो कालान्तर में प्रयुक्त होने लगा था। अनेक लोगों की धारणा है कि सिंह शेर की अपेक्षा अधिक बलशाली होता है, पर वास्तविक बात यह है कि शेर शक्तिपुंज है और सिंह की अपेक्षा कहीं अधिक लड़ाकू, खूंखार, क्रोधी, खूबसूरत, सुड़ौल, सुगठित तथा साहसी होता है। गरदन और कंधे के लम्बे बालों के कारण सिंह बैठा हुआ तो बड़ा शानदार मालूम पड़ता है, पर मर-मिटने की प्रवृति में शेर, सिंह से कहीं आगे है। कई बार एक ही उमर और समान स्वास्थ्य वाले शेर और सिंह में कुश्ती कराई गई, उन कुश्तियों में प्राय: शेर ही जीता। भयंकर क्रोध में शेर का आक्रमण इतना विकट होता है कि सिंह को पछाड़ कर फाड़ डालता है।

एशिया में एक प्रकार से चार तरह के शेर होते हैं। मंचूरियन शेर, भारतीय शेर, ईरानी शेर और मलय का शेर। वास्तव में इन चारों का भेद वर्ग विशेष का भेद नहीं है, वरन उनके वे चार प्रकार, क्षेत्र विशेष और आकार के अनुसार मान लिए गए हैं। मंचूरियन शेर का समूर कुछ अधिक बड़ा और मुलायम होता है। ईरानी शेर और मलय के शेर कुछ छोटे होते हैं और रंग कुछ गहरा बादामी तथा धारियां अधिक काली होती हैं।

कुछ लोगों का भ्रम है कि भारत के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले शेरों में कुछ भेद है, पर यह बात ठीक नहीं है। हां, बंगाल में पाया जानेवाला शेर, जिसे 'रायल बंगाल टाइगर' कहते हैं अपेक्षाकृत बड़ा और स्वस्थ होता है। क्षेत्र विशेष और उचित मात्रा में खुराक मिलने के कारण उसके आकार में भेद हो गया है, वैसे शरीर रचना और स्वभाव में वे सब एक से होते हैं। रींवा में सफेद शेर पाया जाता है। उसका रंग बादामी न होकर सफेद होता है और धारियां अस्पष्ट सी होती हैं। प्रकृति की विचित्रता के कारण ही उसका रंग सफेद हो जाता है पर सफेद शेरों की संख्या अति ही सीमित है। रींवा के स्व० महाराज वेंकट रमन सिंह के समय में रींवा के बाहर के लोगों को इस प्रकार के रंग का पता चला था और स्व० रींवा नरेश महाराज गुलाब सिंह ने भी एक सफेद शेर मारा था। रींवा का सफेद शेर एक विचित्र आकर्षक शेर है। सामान्य शेरों में पाया जाने वाला पिलछौंह बादामी रंग इन सफेद शेरों में नहीं पाया जाता। पहले ऐसे लगभग आधे दर्जन सफेद शेरों का रींवा, और सरगूजा में शिकार हुआ है। सन् 1961 में हिज हाईनेस महाराजा रींवा द्वारा एक सफेद शेर का बच्चा पकड़ा गया था। एक साधारण शेरनी से गोविंदगढ़ में इसका संयोग कराया गया, जिससे चार बच्चे हुए, पर वे चारों ही बच्चे साधारण पिलछौंह बादामी रंग के थे। इन्हीं चार बच्चों में से एक मादा का सफेद शेर से संयोग कराया गया तो चार बिल्कुल सफेद बच्चे हुए और दूसरी बार दो सफेद तथा एक साधारण बच्चा हुआ। इस प्रकार सफेद शेर के वंश के सब ही बच्चे जीवित हैं। भारत में जहां-जहां सघन वन है, वहां-वहां शेर हैं। दक्षिण भारत में मैसूर, बम्बई के इलाके, मध्य प्रदेश, उड़ीसा का कुछ भाग, बंगाल, असम, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान के कुछ भागों और उत्तर प्रदेश की तराई में शेर पाया जाता है। तराई से लगा कर हिमालय में 6-7 हजार फुट की ऊंचाई तक शेर मिलता है।



बंगाल टाइगर

पर शेर का इतना अधिक शिकार होता है कि इस बात की आशंका हो गई है कि भारतीय जंगलों की यह शान मिट न जाए। यह ख्याल गलत है कि शेर उत्तर प्रदेश के तराई के इलाके में तथा अन्य जंगलों में भरा पड़ा है। वास्तविक स्थिति यह है कि तराई के जंगल इतनी बुरी तरह काटे गए हैं और वहां पर इतने कृषि फार्म खोले गए हैं कि शेरों का विनाश सा ही हो गया है। शेरों के इक्के-दुक्के जोड़े ईख के खेतों में रह कर अपना गुजारा करते हैं। तराई, हिमालय और मैदानी क्षेत्रों के बीच एक प्राकृतिक स्पंज के समान थी, वहां सघन बन थे। नरकल तथा अन्य ऊंची घासें और दलदल का क्षेत्र जंगली जानवरों का स्वर्ग था। अल्पकालीन योजना की दृष्टि से और मनुष्यों की बढ़ती आबादी की आशंका से अधिक खाद्यान्न उपजाने के मोह में तराई के इस प्राकृतिक स्पंज को नष्ट सा कर दिया गया है और आशंका यही है कि बहुत जल्दी तराई में होने वाली खेती में अम्लता आ जाएगी तथा प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाएगा। अस्तु, तराई शिकार के लिए अब स्वर्ग नहीं रह गया। इधर नैनीताल जिले में कौबट पार्क के निकट बिजली और पानी की खातिर जो विशाल बांध बांधा जा रहा है, उससे कौर्बेट पार्क के एक भाग के जलमग्न होने की आशंका है। वैसे भारत सरकार ने नैनीताल, देहरादून और सहारनपुर के बीच के जंगलों में कुछ स्थान सुरक्षित कर दिए हैं, जहां शिकार खेलना वर्जित है। समय पाकर वे स्थान शायद दक्षिण अफ्रीका के क्रूगर पार्क के समान विकसित हो जाएं। जब ऐसा हो जाएगा तब भारत की वनश्री को असली हालत में देखने का अवसर साधारण आदमी को भी मिल सकेगा।

शेर का रंग बादामी होता है, जिस पर आड़ी-आड़ी धारियां होती हैं। पूंछ का रंग भी बादामी होता है, जो काली गड़ारियों से भरी रहती है। कान का बाहरी भाग काला होता है, जिस पर सफेद चित्ता पड़ा होता है। शेर का रंग छाती के नीचे सफेद होता है।

स्वस्थ और जवान शेर की लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक साढ़े पांच फुट से साढ़े छै फुट तक होती है। अधिक शिकार खेले जाने के कारण अब शेर उतने बड़े

और लम्बे नहीं मिलते। पहले 12 फुट तक के शेर मिल जाते थ, पर अब साढ़े नौ, साढ़े दस फुट तक के शेर मिल जाना भी सौभाग्य की वात है। युवा शेर का वजन 350 पौंड से लगाकर 500 पौंड तक होता है। ऊंचाई के हिसाव से शेर की लम्वाई अधिक होती है—ऊंचा तो वह केवल 3 ½ फुट ही होता है।

शेरनी चार महीनों में अधिक से अधिक पांच छः बच्चे तक देती है। बच्चा देने का यों तो कोई विशेष समय नहीं है फिर भी जाड़ों और गर्मियों के प्रारम्भ में उसके बच्चे पाए जाते हैं। शेर झुंड में नहीं रहता, प्रायः जोड़े में रहता है और अकेला भी रहता है। बच्चे मां के साथ तव तक रहते हैं जब तक शेरनी फिर बच्चे न दे दे। इस बीच में शेरनी अपने बच्चों को शिकार खेलना और जंगल की अन्य बातें सिखा देती है।

शक्तिपुंज शेर यदि भारतीय जंगलों से लोप हो जाए तो भारतीय जंगलों का सवसे वड़ा आकर्षण ही मिट जाएगा। वैसे उसकी संख्या धीरे-धीरे कम हो रही है। शेर की शक्ति का अनुमान इस वात से लगाया जा सकता है कि वह बात की वात में वड़े-से-वड़े भैंसे को मार देता है। शेर की थाप अगर किसी पहलवान की खोपड़ी पर पड़ जाए तो उसका सिर उसके धड़ में घुस जाएगा। मामूली गाय को तो वह ऐसे मुंह में उठा ले जाता है, जैसे विल्ली चूहे और चिड़ियां को मुंह में दबा कर भाग जाती है। इसके अतिरिक्त शेर के पुट्ठों में भी गजब की ताकत होती है। वह पहाड़ की ऊंचाई पर भारी-से भारी भैंसे को खींच ले जाता है। मामूली गाय को वह फुटवाल की तरह 6-6 गज तक फेंक देता है। वढ़िया वैलों की जोड़ी—जो साठ मन वजन से लदी गाड़ी को खींच ले जाते हैं—को शेर बात की बात में मार देता है, पर शेर गाड़ी नहीं खींच सकता है, क्योंकि शेर के पुट्ठों में भयंकर धक्का देने की ताकत होती है—भारवाहन की ताकत शेर में नहीं होती।

शेर अपने शिकार को घात लगा कर ही मारता है। अगर कहीं कोई जानवर चर रहा हो या खड़ा हो तो शेर घात लगा कर पंजों के वल चलकर, आंख बचाकर जहां तक आड़ हो वहां तक आड़ का सहारा लेकर उसके इतने निकट पहुंच जाता है, जहां से वह छलांग भर कर उस पर टूट पड़े। यदि कोई जानवर शेर की ओर को ही आता हुआ या चरता हुआ दिखाई पड़ता है तो शेर घास में या झाड़ी की आड़ में छिप कर बैठ जाता है और जानवर के मार की पहुंच में आने पर उस पर टूट पड़ता है। घात लगाने में कभी शेर को वहुत देर लग जाती है। उछल कर या मौका पाकर वह अपने शिकार की गरदन के नीचे मुंह देता है और पिछले पंजे पीठ पर। कीले गड़ाने के साथ ही वह शिकार की गरदन विद्युत गति से घुमा देता है, जिससे शिकार की गरदन टूट जाती है और जानवर तत्काल तड़प कर मर जाता है।

घने जंगलों में, जहां पेड़ करीव-करीब होते हैं और शेर को कूद कर जानवर की गरदन तोड़ने का मौका नहीं मिलता, वहां पर शेर जानवर की पिछली टांगों और कूल्हों को अपने नखों और जबड़े से तोड़ कर बेकार कर देता है और तब जानवर असहाय हो कर गिर पड़ता है। इस क्रिया को अंग्रेजी में 'हैमस्ट्रिंगिंग' कहते हैं। शिकार पर झपट्टा मारते समय उसकी गरदन या पिछले भाग को तोड़ते समय और उसे गिराते समय शेर खूंखारी और क्रोध की साक्षात मूर्ति होता है। जानवर के गिरते ही शेर

कभी-कभी दो चार मिनट सुस्ताता है और मरे जानवर की पूंछ रक्त की क्रिया के कारण फड़फड़ाती रहती है तो भयंकर क्रोध से उन्मत्त शेर पूंछ को तोड़ कर भी फेंक देता है। कभी-कभी शेर-शेरनी मिलकर भी शिकार खेलते हैं। प्रसिद्ध शिकारी स्व० कोर्बेट ने अपनी पुस्तक में दो बड़े शेरों द्वारा एक बड़े हाथी के मारे जाने की चर्चा की है । जंगल में जंगली हाथी—बड़ा हाथी तक—शेर से बचते हैं और शेर हाथी से बचते हैं, पर हाथी के बच्चे को अकेला पाकर शेर मार डालते हैं। बात यह होती है कि कभी-कभी कोई हाथी का बच्चा चरते-चरते झुंड से कुछ दूर हो जाता है तभी शेर को मारने का मौका लग जाता है । हाथी के बच्चे ने यदि चिंघाड़ मार दी तो उसे सुन कर दंतैल हाथी या हथिनी उसकी सहायता को पहुंचते हैं और शेर उनके आगमन पर घायल बच्चे को छोड़कर भाग जाते हैं। बच्चे को असहाय और बेबस समझ कुछ देर बाद जब हाथी छोड़ कर चले जाते हैं तब शेर उसे मजे से खाते हैं ।

शेर सूअर के मांस को भी बड़े चाव से खाता है। सूअर भी बड़ा सूरमा होता है, इसलिए कभी-कभी दंतैल सूअर से शेर की मुठभेड़ हो जाती है। अपनी पिछाई पहाड़ी या झाड़ी की बगल में करके सूअर खड़ा हो जाता है । शेर सूअर पर सहज ही सामने से सीधा आक्रमण नहीं कर सकता, अन्यथा सूअर की कांपें शेर का पेट फाड़ दें। कभी-कभी तो सायंकाल से प्रातःकाल चार बजे तक सूअर और शेर का द्वन्द्व चलता रहता है, पर दिन निकलते ही सूअर को न जाने क्या जनून सवार होती है कि वह मैदान छोड़ कर अपने दिन के छिपाव के स्थान की ओर भागने लगता है, तब शेर पीछे से बिजली की सी गति से झपट्टा मार कर उसे मार डालता है । कभी-कभी शेर-सूअर-द्वन्द्व में सूअर की कांपे शेर के पेट को फाड़ देती हैं और शेर सूअर द्वारा मारा जाता है, पर ऐसी घटनाएं कम ही होती हैं ।

शेर को प्रतिदिन भरपेट भोजन नहीं मिलता और उसके लिए भी उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है—प्रति रात 10-10, 15-15 मील से चलकर जाना पड़ता है। सप्ताह में दो मोटे-ताजे बैल वह आराम से मार कर खा सकता है । पर बैल और भैंसे पर शेर तभी आक्रमण करता है, जब नीलगाय, सूअर, हिरन आदि उसे नहीं मिल पाते । बहुत भूखा होने पर तो वह बन्दर, सेही और खरगोश तथा मोर तक खा जाता है। आम धारणा है कि शेर अपना मारा शिकार ही खाते हैं, पर बात ऐसी नहीं है । मरा और सड़ा मांस तो शेर को इसलिए अप्राप्त होता है, क्योंकि दिन में गीध और रात में सियार उसे नहीं छोड़ते । अपना शिकार मारने के बाद या तो शेर उसे वहीं खाता है या किसी सुरक्षित स्थान में ले जाता है । भर पेट खा चुकने के बाद शिकार के अवशेष को वह ढंक कर रख देता है और प्रायः पास की किसी घनी झाड़ी में ही लेट कर उसकी रखवाली करता रहता है । साधारणतया शिकार खा लेने के बाद शेर पानी पीने काफी दूर भी चला जाता है, पर सायंकाल होते-होते लौट कर फिर आ जाता है। दिन में यदि चरखे या गीदड़ उसके ढंके रखे शिकार के अवशेष पर आ जाएं तो बिजली के समान तड़क कर वह झाड़ी से कूद कर उनका काम तमाम कर देता है। शिकारियों को और इन पंक्तियों के लेखक को भी इसका अनुभव है । लेखक को ऋषीकेश के एक जंगल में एक हिरन का

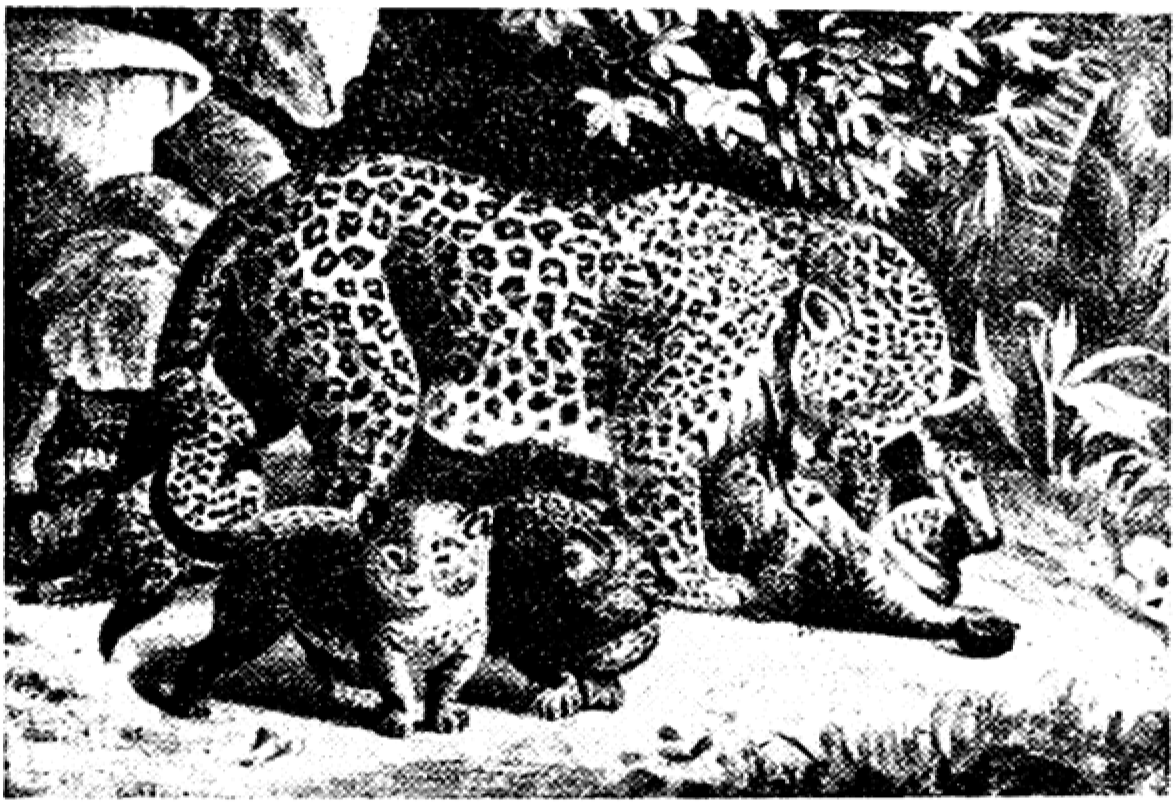
पीछा करते हुए एक नाले से कुछ ऊपर जाकर गाय या बैल की टांग 15—20 गज दूर से ऊपर उठी हुई दिखाई दी। रुक कर जो देखने की कोशिश की तो शेर की गुर्राहट सुनाई दी। जब यह देखने के लिए कि गुर्राहट किधर से आ रही है, लेखक ज़रा ठिठका तो इतने ही समय में शेर तेज गुर्राहट के साथ पूंछ को आसमान की ओर उठाए हुए लाश के पास आ खड़ा हुआ—मानो अपने भोजन के निकट आने वाले को मरने-मारने की चुनौती दे दी हो। बचने की खातिर नाले से नीचे एकदम कूद कर शेर की आंखों से ओझल होने में ही लेखक ने खैर समझी। तीन घंटों बाद हांके से उस शेर को मारा गया।

शेर की मुठभेड़ कभी-कभी जंगली कुत्तों से हो जाती है। उसकी मारी लाश पर जब कुत्ते आ जाते हैं तो शेर बिगड़ कर उन पर टूट पड़ता है। पर ऐसा करना शेर के लिए यमराज को चुनौती देना है। जंगली कुत्ते फिर शेर का पीछा नहीं छोड़ते, वे मरने से नहीं डरते और दो तीन दिन तक, जब तक शेर को मार नहीं लेते, तब तक उसके पीछे लगे रहते हैं।

शेर आदमखोर भी हो जाते हैं। उनके आदमखोर होने के दो विशेष कारण हैं। जब कोई शेर घायल हो जाता है और उसका कोई अंग कमजोर पड़ जाता है तब गाय बैल तथा अन्य बड़े जानवर वह आसानी से नहीं मार सकता। ऐसी हालत में वह आदमखोर बन जाता है। दूसरा कारण है, सेही। सेही पर जब शेर आक्रमण करता है, तो सेही के कांटे उसके पंजों या टांगों में घुस जाते हैं। सेही के कांटे गलते नहीं हैं, जैसे बबूल के या लकड़ी की फांस गल जाती है—वे वहीं बने रहते हैं और घाव में पीव पड़ जाता है। तब शेर का वह भाग निकम्मा हो जाता है और वह मजबूरी में आदमी-जैसे कमजोर शिकार को पकड़ना शुरू कर देता है। शेर के आदमखोर होने का एक अन्य कारण भी है। यदि किसी ने शेर या शेरनी को घायल कर दिया तो वह आराम की खातिर घास या झाड़ी में जा छिपता है। घास काटने वाला या कोई यात्री जब उधर से छिपे शेर के निकट से गुजरता है तो शेर अपने ऊपर आक्रमण की संभावना समझ घसियारे या यात्री पर टूट पड़ता है। बस उस दिन के बाद से मनुष्य का भय उसमें नहीं रहता। वह समझ जाता है कि जिस मनुष्य से वह इतना डरता था वह मनुष्य कितनी आसानी से मारा जा सकता है। बुढ़ापे के कारण या यों कहना चाहिए कि शक्ति की क्षीणता ही शेर के आदमखोर होने के कारण हैं। शेरनी भी इसी भांति आदमखोर हो जाती है, पर शेरनी का आदमखोर होना अधिक खतरनाक होता है, क्योंकि वह अपने छोटे बच्चों को भी आदमी का मांस खाना सिखा देती है और उस स्वाद को वे इतना पसंद करते हैं कि वे प्रारम्भ से ही आदमखोर बन जाते हैं। कोई भी समझदार शिकारी इसी कारण घायल शेर को बिना मारे नहीं छोड़ता। वैसे शेर आदमी से घबराता है और यदि शेरनी के साथ बच्चे न हों, तो वह भी आदमी से कतराती है।

लोगों में शेर के विषय में यह भी एक भ्रम है कि शेर, शेर को मार कर नहीं खाता, पर बात ऐसी नहीं है। खूंखार भेड़िए की भूख प्रसिद्ध है, पर भूखा शेर भी साक्षात यमराज ही होता है और जंगलों में कभी-कभी शेरों की लड़ाई हो जाया करती है। पराजित शेर को यदि विजयी शेर भूखा होता है तो खा जाता है। कई लेखकों

और शिकारियों ने इस बात की चर्चा अपने लेखों में की है, पर इन पंक्तियों के लेखक ने भी ऋषिकेश के जंगलों में एक ऐसा दृश्य देखा है, जो स्मृतिपटल पर सदा अंकित



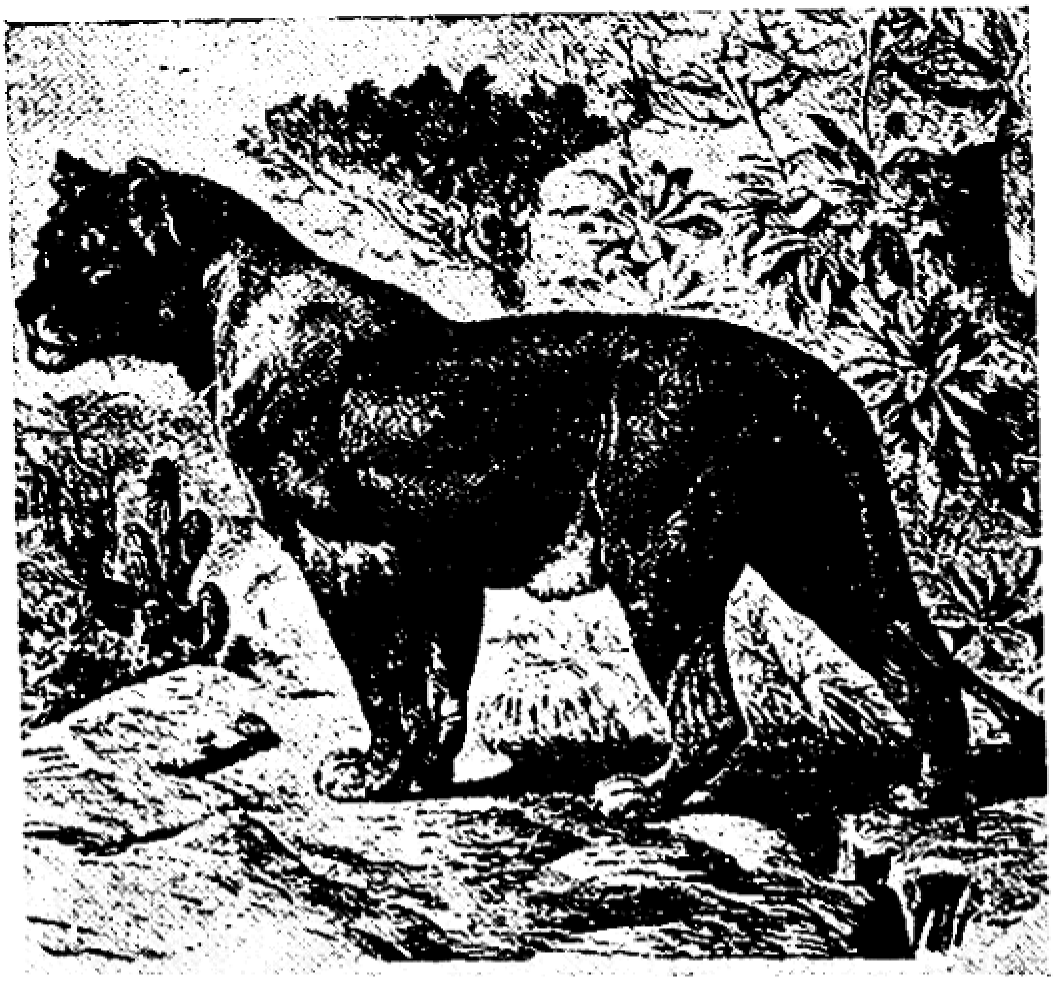
शेरनी अपने बच्चों के साथ

रहेगा। एक छोटे से जलाशय के पास एक ऊंचे पेड़ पर जानवरों के स्वभाव अध्ययन करने के हेतु लेखक बैठा था। सूर्यास्त से कुछ पहले ही शेरनी और शेर की एक जोड़ी आपस में स्नेह प्रदर्शित करती वहां आई कि एक दूसरा शेर वहां आ टपका, शायद वह शेरनी को हथियाना चाहता था। दोनों शेरों में लड़ाई छिड़ गई, शेरनी अलग खड़ी हो गई। दस मिनट के भीतर ही काटने, दांतों और नखों के प्रयोगों से दोनों शेर बुरी तरह घायल हो गए, पर आगन्तुक शेर को शेरनी के साथ वाले शेर ने मार डाला और मारने के बाद उसका काफी भाग खा भी लिया। शेरनी लाश के समीप नहीं आई। मांस खा कर पानी पीकर लोट पोट कर शेरनी के साथ लंगड़ाता हुआ शेर पास के जंगल में ही विलीन हो गया।

शेर का शिकार बड़ा ही उत्तेजक और मनोरंजक होता है। यों तो शेरों के स्वभाव एक से होते हैं पर फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक शेर की प्रतिक्रिया एक सी परिस्थिति में क्या होगी। कोई शेर ठीक प्रबंध से अपने अनुमान के अनुसार हांका जा सकता है, पर कोई शेर पीछे भी लौट सकता है। शेर के शिकार करने के अनेक तरीके हैं। साधारण आदमी खतरा उठा कर बड़ी प्रतीक्षा के बाद छिपे स्थान में बैठकर उसका शिकार कर लेते हैं और जिन लोगों के पास समय तो कम है पर साधन सम्पन्न हैं वे हांका करके शेर मार लेते हैं। गत द्वितीय महायुद्ध से पूर्व एक शेर को मारने का औसत खर्च एक हजार रुपया आता था। तीन सौ चार सौ आदमी इकट्ठे करना, उनकी मजदूरी देना, भैंसा खरीदना और यातायात आदि में काफी खर्च पड़ जाता था। शेर के शिकार करने के ढंग और शेर के शिकार की कहानियां इतनी

रोचक और इतनी अधिक हैं कि उनको एकत्र करने से कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। अंग्रेजी में तो इस विषय पर अनेक पुस्तकें हैं। शेर के शिकार के लिए पहले नाले में शेर के 'खोज' देख लिए जाते हैं, तब किसी पेड़ पर उसके निकलने के संभावित स्थान से कुछ दूरी पर मचान बना लिया जाता है। समझदार शिकारी मचान को 18—20 फुट की ऊंचाई पर बांधते हैं। शाखों में चारपाई रख दी जाती है या डंडे बांध दिए जाते हैं। चारों ओर से पत्तों से ढंक कर वह स्थान स्वाभाविक सा बना दिया जाता है। सामने शेर के मार्ग में भैंस का पड़रा या बकरा बांध लेते हैं। पड़रा बांधना अधिक अच्छा होता है। पड़रे को सींगों या गरदन में बांधना ठीक नहीं, क्योंकि शेर उस स्थिति को अप्राकृतिक समझ कर पड़रे को कभी-कभी छोड़ देता है। पड़रे की टांग में मजबूत रस्सा बांध कर पेड़ से बांध दिया जाता है। शेर आता है और शिकारी कभी-कभी तो पड़रे पर उसके आक्रमण से पूर्व ही उसे मार देता है। जो इतनी देर रात में बैठकर प्रतीक्षा नहीं करना चाहते वे एक या दो पड़रों को उचित स्थानों में बांध कर चले जाते हैं। प्रातःकाल जाकर देखते हैं कि शेर ने कोई मार की है या नहीं। यदि शेर किसी पड़रे को मार देता है और उसे वहीं खा कर अवशेष को छोड़ देता है तो मचान बनाकर वहां शेर मार लिया जाता है। कभी-कभी शेर पड़रे के एक भाग को खाकर शेष को खींच कर झाड़ी में छिपा देता है। ऐसी दशा में उसकी लाश को खुले स्थान पर रख कर या फिर जहां पड़ी है, वहां शेर को मारने की व्यवस्था की जाती है। कभी शिकारी शेष लाश की टांग आदि को रस्सी से बांध देते हैं ताकि शेर एकाएक लाश के अवशेष को झाड़ी की ओट में न खींच ले। मचान पर बड़ी सावधानी से बैठा जाता है और किसी भी प्रकार की कोई भी आहट नहीं की जाती।

शेरनी



शेर सूर्यास्त के समय ही प्रायः लाश पर आता है और तब उसका मारना आसान भी होता है, पर घने जंगलों में वह चार पांच बजे शाम को ही अपनी मारी लाश पर आ जाता है ।

शेर का शिकार पैदल भी होता है, पर पैदल शिकार खेलना बड़ी ही होशियारी का काम है, जिसे बड़े अनुभवी शिकारी ही खेलते हैं । प्रसिद्ध शिकारी स्व० मेजर कौर्वेट, जिन्होंने तराई और कुमाऊं में शिकार खेलने में बड़ी ख्याति पाई, प्रायः अकेले और पैदल शिकार खेला करते थे । पर वे जंगली जानवरों और शेर के स्वभाव और जानवरों की बोलियों के बड़े विशेषज्ञ थे । जहां पर आठ-आठ दस-दस फीट ऊंची घास होती है और आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता, वहां पर हाथियों की पंक्तियां बना कर एक तरफ से हांका किया जाता है, तब शेर शोर गुल से परेशान होकर ऊंची घास से बाहर निकलता है और हौदे पर बैठा शिकारी उसे मार लेता है । कभी-कभी ओछा निशाना पड़ने पर क्रोधित शेर भयंकर आक्रमण करता है । हाथियों की पंक्ति मेघमाला सी दिखाई पड़ती है और क्रोधित शेर उसमें बिजली की तड़प सा चमक कर किसी भी हाथी पर झपट पड़ता है और गरदन तथा बगल से मांस नोच लेता है । वातावरण कंपित हो उठता है । हाथी घबरा कर लेंडें और पेशाब करता हुआ भागता है । पीलवान अंकुश पर अंकुश मारता है और कभी-कभी हाथी बेकाबू हो जाता है । ऐसे शिकार में सधे हुए हाथियों का ही प्रयोग किया जाता है । देखा गया है कि ऐसे मौकों पर हथनियां अधिक उपयुक्त होती हैं । कभी-कभी तो हाथी की एक लात ही शेर का कचूमर भी निकाल देती है ।

गांव वाले शेर की मारी लाश पर जहर डाल देते हैं, जिसे खाकर वह बाद में मर जाता है । भारत में भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न समयों में शिकार खेला जाता है । उत्तर प्रदेश और तराई के इलाकों में जाड़ों में शेर का शिकार अच्छा होता है और मध्य प्रदेश में गर्मियों में । गर्मियों में पानी सीमित स्थानों में मिलता है, पेड़ों से पत्ते गिर जाते हैं, जिन पर शेर के चलने की आहट मालूम हो जाती है । साधन सम्पन्न लोगों का शेर मारने का अति प्रचलित तरीका हांके का ही है । जब शेर बंधे हुए पड़रे को रात में खा लेता है, तो पानी पीकर वह अपने शिकार से कभी-कभी दूर कभी करीब ही झाड़ी में जाकर सो जाता है । शिकारी मालूम कर लेते हैं कि शेर अमुक स्थान में होगा और फिर निश्चित स्थान पर या तो हाथी पर या पेड़ पर शिकारी बैठ जाते हैं और विशिष्ट अतिथि के मचान की ओर से ही शेर को निकलने को बाध्य किया जाता है । कई सौ हांका मारने वाले अर्धवृत्ताकार पंक्ति में शेर के संभावित सोने की जगह से सिग्नल मिलने पर शोरगुल करते हुए आगे बढ़ते हैं । शोर गुल तो शेर को बिल्कुल पसंद नहीं है । हांका प्रारंभ करने से पूर्व शेर के निकलने के विभिन्न मार्गों में दूर-दूर पर कुछ आदमी पहले से बैठ जाते हैं, जिनको रोक करनेवाले आदमी 'स्टाप' कहते हैं । कनस्तर बजाते हैं । कभी फायर भी किए जाते हैं । शेर शोर सुन कर बैठ जाता है, फिर शोर को अपनी ओर आता देख कर वहां से चल पड़ता है । अगर वह निर्दिष्ट मचान की ओर न चल कर किसी दूसरी ओर चलता है, तो पेड़ पर रोक के रूप में बैठा आदमी लकड़ी से पेड़ पर 'ठक' 'ठक' करता है । शेर चौकन्ना होकर उस मार्ग को छोड़ दूसरी ओर चलता है । आगे बढ़कर वह फिर मार्ग बदलना चाहता

है, तो वहां पर भी पेड़ पर बैठा आदमी 'खट खट' की आवाज से उसे निर्दिष्ट मचान की ओर जाने को प्रेरित करता है। पीछे शोरगुल को बढ़ता सुन शेर अपनी गति तेज कर देता है, अन्यथा मंद गति मे जाता है। मचान प्रायः जंगल के रास्तों में ही प्रशस्त मार्ग पर ही बनाया जाता है। खुले स्थान पर आने पर शेर प्रायः पहले ठिठकता है, ताकि वह यह देख ले कि खुले मार्ग पर कोई है तो नहीं। मचान पर बैठनेवाला शिकारी या तो शेर को खुले में आने से पूर्व ही मार लेता है या बिल्कुल खुले में आने के बाद मार पाता है।

3–बाघ

अंग्रेजी में जिसे हम 'लैपर्ड' या 'पैंथर' कहते हैं, उसे हिन्दी में बाघ, तेंदुआ या गुलदार कहते हैं। बहुतों का खयाल है कि लैपर्ड और पैंथर दो अलग-अलग जानवर हैं, पर वे असल में एक ही हैं। छोटे बाघ को लैपर्ड और बड़े बाघ को पैंथर कह देते हैं। जिस जानवर का पेट अच्छी तरह नहीं भर पाता उसका आकार छोटा रह जाता है और जंगल में मजे से रहनेवाला भरपेट खानेवाला बाघ मोटा ताजा हो जाता है। यदि सौन्दर्य-प्रतियोगिता के लिए जंगल के सम्पूर्ण जानवरों की नुमाइश की जाए, तो सुन्दरता का प्रथम पुरस्कार बाघ को मिलेगा।

बाघ के बदन का रंग हल्का बादामी या हल्का भूरा होता है, जिसमें सुर्खी मायल सफेदी होती है। छाती का रंग बिल्कुल सफेद होता है और सारे बदन पर गोल चित्तियां होती हैं। सर, पैर, पेट और पेट के निचले भाग की चित्तियां तो बिल्कुल काली होती हैं, पर पीठ और पूंछ के दोनों बगल के चित्ते छल्ले जैसे होते हैं, जिनके बीच का रंग पीला होता है। बाघ के बच्चे भूरे रंग के होते हैं, और उनके बदन के चकत्ते प्रारम्भ में हल्के रंग के और अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।

शेर जिस प्रकार घने जंगल और लम्बी घास का जानवर है, उसी तरह बाघ अपने चकत्ते और रंग के हिसाब से झाड़ियों और चट्टानों का जानवर है। यों तो वह घने जंगलों में भी रहता है, पर उसके लिए थोड़ी-सी जगह में भी अपने आपको छिपा लेना बड़ी आसान बात है। बाघ, शेर की अपेक्षा कहीं अधिक चालाक और धूर्त होता है, इसी दृष्टि से उसे जंगल का चाणक्य कहते हैं। अपने द्वारा मारे गए शिकार पर बाघ दुबारा एकदम नहीं आता—बहुत दूर से चक्कर लगाना शुरू करता है और चक्कर के घेरे को घटाता हुआ, पेड़ों के ऊपर चारों तरफ देखता हुआ आता है, जिस पर भी तनिक सा संदेह हो जाय तो फिर नहीं आता। बाघ की अत्यधिक सतर्कता का अर्थ यह नहीं है कि वह बहादुर नहीं होता, मौका पड़ने पर वह बड़ी बहादुरी दिखाता है। पहले तो वह आदमी से बचता ही है, पर घायल अवस्था में क्रोधित होकर हाथी पर भी हमला करने से नहीं चूकता। फुर्ती का तो बाघ पुतला है—लम्बी छलांगें मारना और बहुत तेज दौड़ना उसके लिए साधारण बातें हैं। बाघ पेड़ पर चढ़ने में भी बड़ा प्रवीण होता है और बात की बात में पेड़ पर जा बैठता है। दुफंकी या तिफंकी शाखाओं पर बैठकर आराम करना बाघ बहुत पसन्द करता है। चट्टानों और झाड़ीदार इलाका, जहां कहीं-कहीं पेड़ हों उस पर रहना उसे पसन्द है और चीतल

हिरन आदि जब पेड़ के नीचे चरते-चरते आ जाते हैं तब कूद कर उनका शिकार कर लेता है । अपने शिकार को जबड़ों से पकड़ कर सबसे पहले वह उसकी गरदन तोड़ने का प्रयत्न करता है । भेड़, बकरी, कुत्ता, घोड़ा, गाय, बैल, मोर, मुर्गी और खरगोश बाघ की खुराक हैं। बड़ा बाघ तो साधारण भैंस को भी मार देता है। चट्टान की गुफाओं और पेड़ों पर जहां छिपाव का स्थान हो वहां वह अपना घर बनाता है। सायंकाल के समय जब गांवों को वापस जाने वाले पशु लौट रहे होते हैं तो वह बड़ी आसानी से उन्हें दबोच लेता है ।

बाघों के आकार में बड़ा भेद होता है । साधारण बाघ की लम्बाई पांच फुट से 6 फुट तक होती है, पर किन्हीं-किन्हीं बड़े नरों की लम्बाई नाक की नोंक से लगाकर पूंछ के सिरे तक आठ फुट तक की भी पाई गई है । बाघ की पूंछ शरीर के अनुपात से बड़ी होती है। 7 फुट 11 इंच लम्बे एक बाघ की पूंछ 3 फुट 2 इंच थी। लेखक ने टिहरी गढ़वाल में सन् 1923 में एक बाघ 7 फुट 9 इंच का भिलंगना के किनारे मारा था, जो पहाड़ी गांवों के निवासियों की भैंसें तक मार कर खा जाता था। बाघ की ऊंचाई लगभग दो फुट होती है ।

क्रूरता में बाघ, सिंह और शेर से कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा होता है । शेर तो शिकार केवल भूख बुझाने की खातिर ही करता है और पेट भर जाने पर फिर किसी को नहीं मारता, पर बाघ भूखा न होने पर भी मारने की खातिर ही मारता है । कभी-कभी भेड़ों के बाड़े में घुस कर 15—15, 20—20 भेड़ें मार कर और थोड़ा सा खून पीकर ही छोड़ जाता है । अपने मारे शिकार को वह गिद्धों और सियारों से बचाने के लिए झाड़ियों और पत्तों में तो छिपा कर रखता ही है, पर कभी-कभी पेड़ों पर भी टांग लेता है। शेर को पानी में बैठना और स्नान करना पसन्द है, पर बाघ पानी से बचता है तथापि बहुत मजबूर हो जाने पर ही नदी को तैर कर पार करता है । इतना चालाक होने पर भी बाघ इतना निडर है कि यदि उसके शिकार पर लालटेन रख कर शिकारी दूर छिप कर बैठा हो तो लालटेन की रोशनी में भी अपनी मार पर आ धमकता है ।

भारत में बाघ पंजाब के मैदानी इलाकों को छोड़कर सब जंगलों में पाया जाता है । अपनी चालाकी के कारण भारत से उसके मिट जाने की भी कोई आशंका नहीं है । गांवों, छावनियों, और कैम्पों से वह मालिकों के देखते-देखते कुत्ता उठा ले जाता है। इतने वेग से आक्रमण करता है और थाप मार कर कुत्ते को इतनी दूर फेंक देता है कि कुत्ता मर जाता है, तब झपटे से मुंह में दाब कर फिर वह भाग जाता है। जब बाघ लंगूर का शिकार करता है तब तो दृश्य देखते ही बनता है । एक डाली से दूसरी डाली पर कूद कर वह लंगूर को घबरा देता है । तब लंगूर पेड़ से नीचे कूद पड़ता है और बाघ ऊपर से उसके ऊपर टूट पड़ता है । कभी-कभी पेड़ के नीचे से ही गुर्रा कर बाघ, लंगूर को इतना डरा देता है कि लंगूर पेड़ से नीचे आ गिरता है । अपने शिकार को मारने के बाघ के विचित्र तरीके हैं। गढ़वाल और कुमायूं के पहाड़ी क्षेत्र में, जहां मकानों की छतें ढलवां और स्लेट के टुकड़ों की बनी होती हैं, वहां अगर बाघ को भेड़ों की गंध मिल जाए तो वह छत की स्लेटें उखाड़ कर कमजोर तख्तों को हटा-कर छत में छेद कर लेता है । छेद में से फिर वह भेड़ों पर कूद पड़ता है और

मनमाने ढंग से पेट भर कर छेद से बाहर निकल जाता है। कुत्ते का मांस बाघ को बड़ा प्रिय है। गांव के बाहर जब कुत्ते उसे देख लेते हैं तो बाघ डरने का स्वांग रच कर भागने का नाटक करता है। कुत्ते उसका पीछा करते हैं तब कुछ दूर निकल जाने पर एक दम मुड़ कर वह उन पर आक्रमण कर देता है और किसी न किसी कुत्ते को ले भागता है। कुत्तों के पकड़ने में तो वह इतनी धृष्ठता दिखाता है कि बरामदों और मकानों के अहातों से घरवालों के सामने ही फुर्ती से कुत्ता बाहर फेंक कर उठा ले जाता है। कभी-कभी तो उसकी धूर्तता इतनी बढ़ जाती है कि मकान में बंधे मेढ़ों और बकरों को छत पर चढ़ कर भीतर से लपक कर चुरा ले जाता है। लेखक को एक बार एक अति धूर्त और धृष्ट बघेरे से पाला पड़ा। सन् 1925-26 की बात है, टिहरी गढ़वाल के दयारे नामक स्थान में तत्कालीन टिहरी राज्य के चीफ कंजरवेटर श्री जोशी के घर से एक बघेरा प्रतिदिन एक बकरा या मेढ़ा ले जाने लगा। जोशी जी बकरे और भेंड़ के मांस के शौकीन थे, इसलिए उन्हें पालते भी अवश्य थे। जब उनके कई जानवर बाघ ले गया, तब उन्होंने कई शिकारियों को बुला कर उसको मारने का प्रबन्ध किया। मेढ़ा या बकरा बंगले से बाहर पास ही नाले में बांधा जाता। शिकारी छिप कर बैठते और प्रकाश की खातिर लालटेन इस प्रकार रखते कि बकरा या मेढ़ा तो दिखाई पड़ता रहे पर शिकारियों पर रोशनी न पड़े। बघेरा आता और अंधेरे में से इतना तेज झपट्टा मारता कि रस्सा टूट जाता और बांधा गया जानवर बाघ ले उड़ता। इस प्रकार लगातार होते रहने से बाघ इतना ढीठ हो गया कि आदमियों की चिंता न कर 8—10 दिन तक बकरों को ले जाता रहा और गोली न लग पाती। अन्त में जोशी जी के आग्रह पर लेखक ने उस बघेरे को बड़ी आसानी से मारा। कोठी के बाहर अमरूद के पेड़ से कुत्ते की कमर में मजबूत रस्सी बांध कर रस्सी को पेड़ से बांध दिया और कुत्ते की गरदन में दो मजबूत जंजीरें बांध कर दो खूंटों से दोनों तरफ बांध दीं। जंजीरें और रस्सी इतनी मजबूती से बांधी गई थीं कि बघेरे के झपट्टे से कुत्ते का कोई अंग भले ही टूट या कट जाए पर रस्सी और जंजीरों वाले खूंटें न उखड़ें। लालटेन अपनी ओर को कागज लगा कर एक स्टूल पर रख दी गई। बंगले के दुछत्ते पर बैठकर बाघ की प्रतीक्षा की गई। वह अंधेरे में आता मालूम हुआ और उसने कुत्ते पर पूरी शक्ति से झपट्टा मारा। कुत्ते ने आतंक और चोट से कांय-कांय की और पेशाब पाखाना भी कर दिया। पर प्रबन्ध अटूट था। झपट्टा मारने से कुत्ता नहीं हिल सका, हां धक्के के प्रभाव से बाघ की टांगे उपर उठ गईं और कलामुंडी खाकर वह अंधेरे में छिप गया। दुबारा फिर थोड़ी देर बाद उसने अंधेरे में से ही झपट्टा मारा। अन्त में उसने लालटेन की ओर से आक्रमण करने की नई योजना बनाई और अर्ध प्रकाश में जैसे ही वह बैठा कि फायर हो गया और घायल होकर पास की झाड़ी में जाकर मर गया।

बाघ चट्टानी गुफाओं, झाड़ियों, सघन पेड़ों की डालियों में छिप कर आराम करता है, इसलिए शेर की भांति इसका हांका सुनिश्चित नहीं होता। हांके से बघेरे मारे जाते हैं, पर कभी-कभी बाघ हांकेवालों की आवाज से आगे न बढ़ कर पीछे की ओर लौटता है और हांकेवालों में किसी को घायल करके या मार करके उनकी पंक्ति को

तोड़ता हुआ भाग जाता है । दूसरी बड़ी कठिनाई यह भी है कि बाघ शेर की भांति पानी के निकटवाली झाड़ियों में ही सदा नहीं रहता । कभी-कभी तो यह भी हो जाता है कि वह बड़े वृक्षों की डालियों में छिपा बैठा रहता है और हांकेवाले आगे निकल जाते हैं । नौसिखिए शिकारियों को वह झांसा भी दे देता है, क्योंकि अपनी मार पर आते समय वह नीचे ही नहीं पेड़ों के ऊपर शाखों पर भी देखता चलता है । घंटों मचान पर बैठने के बाद शिकारी जब मचान छोड़ कर चला जाता है, तब बाघ अपनी मार को आकर खा जाता है ।

बाघ पिंजड़े में भी पकड़े जाते हैं । लोहे की सलाखों के पिंजड़े में कुत्ता बांध दिया जाता है और दरवाजा खुला रहता है । जैसे ही पिंजड़े में बाघ पूरा घुस जाता है वैसे ही बाघ के वजन से ऊपर का तख्ता नीचे गिर पड़ता है और दरवाजा बंद हो जाता है । विभिन्न इलाकों में विभिन्न प्रकार के पिंजड़े बनाए जाते हैं । शेर पिंजड़ों से बड़ा कतराता है, पर कभी-कभी वह भी फंस जाता है, पर शेर का पिंजड़ा लगभग 15 फुट लम्बा और 5 फुट ऊंचा बनता है । पिंजड़े में पहिए लगा दिए जाते हैं और सुविधानुसार खींचकर उचित स्थान पर पहुंचा दिया जाता है ।

बाघिन एक समय में दो से चार तक बच्चे प्राय: फरवरी और मार्च में देती है । शेर के बच्चे अपेक्षाकृत पल सकते हैं पर बाघ के बच्चों का पाला जाना बड़ा कठिन होता है । विश्वासघात और धोखे का उनसे सदा खतरा रहता है । जब कभी किसी ने बाघ के बच्चे को पाला तो उसे 6-7 महीने बाद मारना ही पड़ा । घर के पालतू किसी भी जानवर को देखकर छुप कर आक्रमण करने की प्रवृत्ति उसकी बढ़ती ही जाती है, अत: उसे मारना ही पड़ता है ।

बाघ की चालाकी और धूर्तता का एक प्रमाण यह भी है कि भारत में शेर की संख्या तो कम हो रही है, पर बाघ के लोप होने का कोई खतरा नहीं है ।

शेर की भांति बाघ भी ठीक उन्हीं कारणों से आदमखोर हो जाता है, जिन कारणों से शेर हो जाता है । पर शेर की अपेक्षा बाघ चालाक और धूर्त होता है, इसलिए आदमखोर बघेरे का मारना आदमखोर शेर की अपेक्षा अधिक कठिन है । जिस इलाके में आदमखोर बघेरा लगता है उस इलाके में आतंक का राज्य कायम हो जाता है । एक स्थान पर मार करने के बाद वह वहां से मीलों दूर जाकर दूसरी मार करता है । आदमखोर बघेरे की चालाकी को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है और सीधे सादे गांववाले इसीलिए आदमखोर बघेरे को किसी की प्रेतात्मा का रूप ही समझते हैं । सायंकाल के समय मां बेटी पानी भर कर मकान की सीढ़ियों पर चढ़ती हैं । आगे-आगे मां पीछे-पीछे बेटी । आदमखोर बघेरा दबे पांव लड़की को उठा ले जाता है । सिर से बर्त्तन गिरने की आवाज होती है तो मां लड़की पर असावधानी से बर्त्तन गिराने पर नाराज़ होती है । अपना बर्त्तन रख कर नाराजगी में मां घूम पड़ती है और समझती है कि भर्त्सना के डर से लड़की कहीं छिप गई है । गिरा बर्तन उठाते समय मां को जब वहां गिरा खून मिलता है वह चीख मारती है कि बेटी को आदमखोर बघेरा ले गया । दो आदमी मकान के भीतर दीवार के सहारे बैठे बातें करते हैं और एक दूसरे को हुक्का देते जाते हैं । एक ने जैसे ही हुक्का दूसरे को थमाया

और दूसरे ने जब गुड़गुड़ी करके पहले को लौटाया तो पहला आदमी वहां से गायब था। पता चलाया तो मालूम पड़ा कि जिस क्षण दूसरे की निगाह नीची हुई उसी क्षण आदमखोर बघेरा पहले आदमी को उठा ले गया। एक कमरे में एक रोगी लेटा है। उसकी सेवा के लिए कई आदमी कमरे में हैं। किवाड़ अच्छी तरह बंद हैं, शुद्ध हवा के लिए खिड़की खुली है। रोगी चलने फिरने योग्य नहीं है। आधी रात के लगभग कोई चीज़ मेज से गिरी तो खटका हुआ और देखा तो रोगी पलंग से गायब ही था। आदमखोर बघेरा खिड़की के मार्ग से रोगी को उठा ले गया। आदमखोर बघेरे को कभी-कभी अपने शिकार की ऐसी गंध बस जाती है कि वह उसी क्षेत्र के व्यक्तियों को पकड़ता है। तीर्थ यात्रा पर आए दस-बीस आदमी सोए हुए हैं, बीच में स्त्रियां सोई हैं। रात में आदमखोर बघेरा आया और बीच में से ही गढ़वाली महिला को उठा ले गया। महिला को ले जाते समय वापसी में बघेरे का नाखून एक सोते व्यक्ति को लग गया, जिससे वह जग गया। कारण यह था कि वह बघेरा गढ़वाल में स्त्रियों को ही पकड़ा करता था और जब कई स्त्रियां मिलती थीं तो वह गढ़वाली स्त्री को ही चुनता था, इसीलिए उसने यहां भी ऐसा किया। मकान में आदमी सो रहे हैं, प्रातःकाल के समय कोई पेशाब के लिए कमरे मे निकला पर फिर लौटा नहीं।[1] रुद्रप्रयाग (गढ़वाल) के आदमखोर बघेरे ने कई वर्षों तक बहुत ही आतंक मचाया और कई सौ मनुष्यों को मार कर वह खा गया। बड़े-बड़े नामी शिकारियों को उसने छकाया। पोटैशियम साइनाइड जैसे विष को लाश में रखा गया और उसको वह खा गया, पर उससे मरा नहीं। उत्तर प्रदेश सरकार ने उसे मारने में काफी सहायता दी। मेजर कौर्वेट जैसे शिकारी को भी उसने काफी छकाया और दो चार बार वे उसके द्वारा मारे जाने से बच भी गए। पर अंत में असफलता ही हाथ आते देख केवल दो दिन का प्रयत्न और करने का इरादा करके उसे छोड़ कर वे जाने ही वाले थे कि आखिर में एक पेड़ पर बैठ कर वे उसे मार सके।

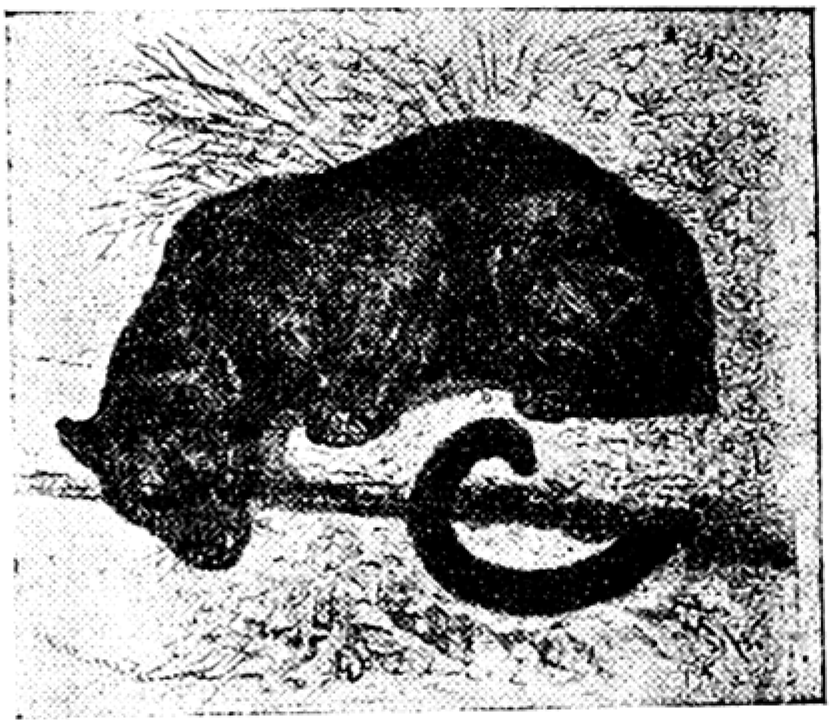
आदमखोर बघेरे को मारना पहाड़ी क्षेत्र में बड़ा कठिन है। लाश पर वह दुबारा बहुत कम आता है। इसलिए मौके से या धोखे से ही कोई उसे मार सकता है। जिस क्षेत्र में वह मार कर रहा हो, उस क्षेत्र के सब लोगों को रात में मकान से बाहर नहीं निकलना चाहिए और घास लेने वालों को भी इक्का-दुक्का जंगल में नहीं जाना चाहिए। पर जानवरों के चारे और खेती का ऐसा प्रश्न है, जिसमें बाहर जाना ही पड़ता है।

बाघ काफी अधिक चालाक होता है पर उसकी घ्राण शक्ति इतनी तीव्र नहीं होती। हां, बाघ की दृष्टि और श्रवणशक्ति विकट रूप से तेज होती है। पत्तियों और झाड़ियों में तनिक सी गति को वह अपने बैठे स्थान से ही देख लेता है। जिस आवाज को आदमी किसी भी प्रकार नहीं सुन सकता उस आवाज को बाघ बड़ी शीघ्रता से सुन लेता है।

---

1. उपर्युक्त चारों घटनाएं कौर्वेट की रोमांचकारी पुस्तक 'रुद्रप्रयाग का आदमखोर बघेरा' से ली गई हैं।—लेखक

4—काला बाघ



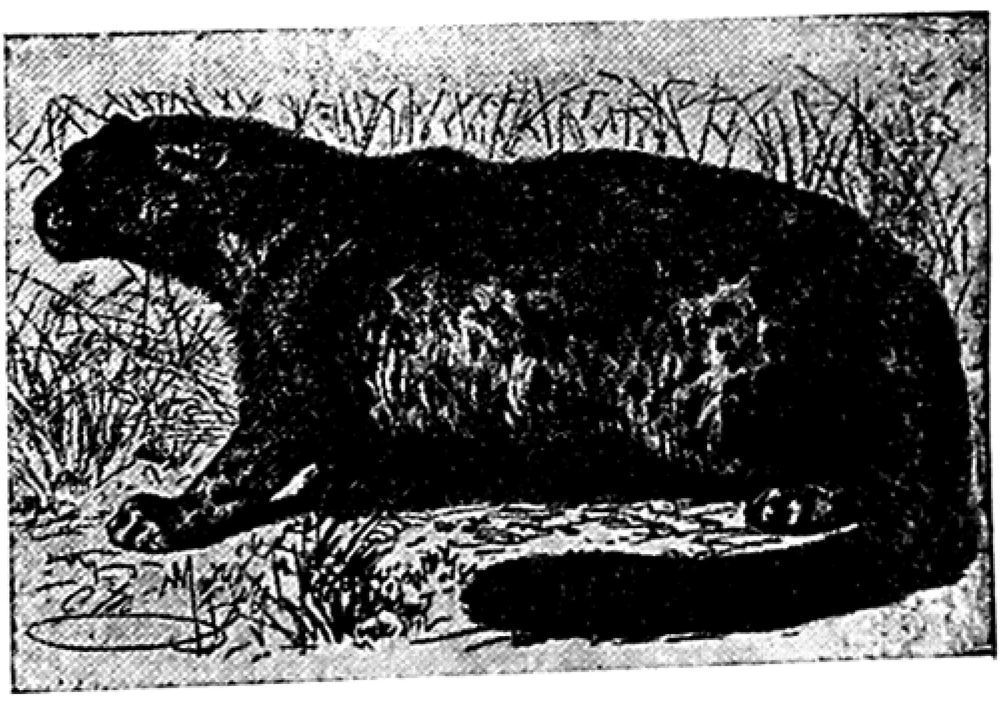
काला बाघ

अनेक लोगों का खयाल है कि काला बाघ साधारण बाघ से भिन्न होता है । चिड़ियाघरों में कभी-कभी काला बाघ देखने को मिलता है । पर काला बाघ किसी भिन्न प्रकार की नस्ल न होकर प्रकृति का एक अजूबा है, क्योंकि एक ही बाघिन कभी-कभी एक ही साथ पीला बच्चा भी देती है और काला बच्चा भी देती है। काले बच्चे पर भी चकत्ते होते हैं। काले बाघ की खाल भीगे काले रेशम-सी लगती है। दक्षिण-भारत में काले बाघ अधिक पाए जाते हैं। पीले और काले बाघों के स्वभाव में भी कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि वे कोई अलग-अलग तो हैं नहीं।

5—हिम बाघ

हिम बाघ के विषय में अभी तक पूरी जानकारी न तो शिकारियों को है और न प्राणिशास्त्र पर लिखने वालों को है । पर वैज्ञानिकों को इसका पता एक शताब्दी से अधिक से है । भारत में यह लद्दाख, हिमाचल प्रदेश के उत्तरी भाग, टिहरी गढ़वाल और कुमाऊं के बरफ से ढके क्षेत्रों में ही पाया जाता है । यों तो हिम बाघ अन्य बाघों से मिलता-जुलता है, पर मुख्य भेद अन्य बाघों और हिम बाघ में यही है कि इसकी खोपड़ी झुकी हुई मेहराबदार होती है तथा उसका समूर अन्य बाघों की अपेक्षाकृत लम्बा

हिम बाघ



होता है और रंग में भी अन्तर होता है। समूर घना और ऊन की तरह का होता है, इसका कारण यह है कि हिमबाघ शीत प्रधान क्षेत्र का जानवर है, अतः लम्बा, घना ऊन जैसा समूर भयंकर शीत में इसकी रक्षा करता है। राख-मायल पिलछोंह, सफेद समूर पश्मीने जैसा कोमल होता है, जो नीचे पेट पर बिल्कुल सफेद होता है और बैठने पर बरफ का एक भाग सा ही प्रतीत होता है।

हिम बाघ के चकत्ते अन्य बाघों के चकत्तों से अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं और शरीर पर किसी विशेष हिसाब से नहीं होते तथा जड़ के रंग की अपेक्षा उनका भीतरी भाग अधिक गहरे रंग का होता है। बाघों के चकत्तों के समान हिमबाघ के सिर, टांगों और पूंछ के निचले भागों के गुल बीच में हलके पीले रंग के नहीं होते।

हिम बाघ को बरफ से ढके क्षेत्रों में रहने के कारण 'बर्फीले क्षेत्र का बाघ' भी कहते हैं। जिस क्षेत्र में हिमबाघ रहता है वहां पेड़ कम ही होते हैं, संभवतः उस क्षेत्र में इसे पेड़ पर चढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसलिए यह अनुमान लगाया जाता है कि वह पेड़ पर चढ़ने का अभ्यस्त नहीं है। अभी तक हिम बाघ का प्राकृतिक अवस्था में अध्ययन नहीं किया गया, इसलिए यह अनुमान लगाया गया है, पर सिद्धांत रूप से पेड़ पर चढ़ने में इसे कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। स्वयं लेखक का हिमबाघ का अध्ययन टिहरी (गढ़वाल) में पिंजड़े में पले एक हिम-बाघ का है। कई वर्षों तक गरम जगह में रहने से उसका समूर गिर गया था और स्वभाव में साधारण बाघ जैसा ही हो गया था। किसी भी आदमी का पिंजड़े के पास पहुंच जाना उसके लिए बड़ी परेशानी की बात थी, तथापि पिंजड़े में वह बहुत दुखी था।

कुछ लोगों का मत है कि हिमबाघ भारत से लोप होने की सीमा पर पहुंच गया है। कारण यह है कि उसकी खाल अपेक्षाकृत बड़ी सुन्दर और कीमती होती है। भारत में उसकी संख्या भी कम है। अभी तक वह लद्दाख और हिमाचल प्रदेश के ऊपरी भाग में तो पाया जाता है और गढ़वाल तथा कुमाऊं से भी लोप नहीं हो गया है। पर इसको सुरक्षा की आवश्यकता है और बिना सरकारी संरक्षण के वह बच नहीं सकता, क्योंकि गढ़वाल, कुमाऊं और लद्दाख से लगे तिब्बती भाग में इसकी मुख्य खुराक बरड़ और थार का सफाया हो रहा है और इसकी खाल का लालच भी इतना अधिक है कि भारतीय भूभाग में भी बचे खुचे हिमबाघों को खतरा है।

शीत काल में यह हिमाच्छादित पर्वत शिखरों पर 6-7 हजार फुट की ऊंचाई तक उतर आता है पर ग्रीष्मकाल आते ही 16-17 हजार की ऊंचाई पर रहने चला जाता है। यह जंगली भेड़, बकरे, खरगोश और चूहों आदि का शिकार करता है। बर्फीली चट्टानों में जब यह चुपचाप बैठ जाता है तो अपने रंग के कारण शिकार को झांसा दिए रहता है, तथापि उसे दिखाई नहीं पड़ता। पालतू भेड़ों का तो यह बुरी तरह शिकार करता है और शीत प्रधान इलाकों में भेड़ों पर सामान लाद कर ले जाने वालों के साथ अगर भोटिए कुत्ते न हों तो शायद भेड़ों का यातायात ही बंद हो जाय। दो शिकारी भोटिए कुत्ते, जिनकी गरदनों में टीन के कांटेदार कालर पड़े रहते हैं और गरदन से पिछाई तक एक टीन की पत्तर बंधी रहती है, हिमबाघ के भेड़ों पर आक्रमण

करने पर, उसके ऊपर टूट पड़ते हैं और मार डालते हैं। इस प्रकार सुसज्जित दो भोटिए कुत्ते तो अन्य बाघों को भी मार लेते हैं। हिमबाघ आदमी पर आक्रमण नहीं करता और आदमखोर होने का अभी तक उसका कोई समाचार भी नहीं है। जहां यह रहता है वहां एक तो आदमी होते ही कम हैं, फिर प्राकृतिक अवस्था में इसको पर्याप्त भोजन मिल जाता है। वैसे खूंखारी में हिमबाघ अन्य बाघों से कम नहीं हैं।

हिमबाघ के विषय में पूरी जानकारी नहीं है पर मिस्टर ब्लैनफोर्ड ने जिस हिमबाघ के विषय में लिखा है उसकी लम्बाई 7 फुट 4 इंच थी, जिसमें से 3 फुट की तो पूंछ ही थी। हिमबाघ की ऊंचाई लगभग 2 फुट होती है और पूंछ सुन्दर लम्बे समूह से सुशोभित जड़ के पास मोटाई में थोड़ी कम होती चली जाती है।

6—वृक्ष बाघ

वृक्षबाघ को अंग्रेजी में 'क्लाउडेड लेपर्ड' कहते हैं और लम्बे चित्तों के कारण वह लमचित्ता भी कहलाता है। भारत में तो यह केवल सिक्किम, भूटान और असम में पाया जाता है। यह अपना समय अधिकतर पेड़ों पर ही बिताता है, जहां से वह छोटे छोटे जानवर पकड़ कर खाता रहता है। पक्षी, चूहे, खरगोश आदि इसकी खुराक हैं। पेड़ों पर रहने के कारण ही इसे वृक्षबाघ कहते हैं।



वृक्ष बाघ

वृक्षबाघ सब बाघों में छोटा होता है और उसकी लम्बाई 6 से 6.5 फुट तक ही होती है। वृक्ष बाघ की पूंछ लगभग 3 फुट तक लम्बी होती है अर्थात कुल लम्बाई का आधा भाग पूंछ में ही होता है, जिस पर घना समूर होता है। वृक्षबाघ की ऊंचाई केवल एक या सवा फुट होती है।

चकत्ते तो वृक्षबाघ के भी बड़े सुन्दर होते हैं और उसके शरीर के चकत्ते सिकमार (मारबल्ड कैट) से मिलते हैं। इस सुन्दर जानवर का रंग पिलछौंह भूरा या हलका बादामी होता है, जिसके ऊपर बड़े-बड़े काले चित्ते होते हैं। ये चकत्ते साधारण बाघ के गुलों के विकसित रूप से प्रतीत होते हैं। चकत्ते सबसे अधिक लम्बे कंधों और दोनों बगलों की ओर होते हैं। पीछे की ओर को इनका आकार छोटा होता जाता है। सिर तथा टांगों पर ये चित्ते पास-पास मिले से होते हैं। पीठ के बीच में ये चित्ते लम्बे-लम्बे पूंछ की ओर आते प्रतीत होते हैं। गालों पर दो गहरी काली

धारियां होती हैं। पूंछ पर ये चित्ते टूटे-टूटे छल्ले से होते हैं। गले के नीचे काली धारी स्पष्ट चमकती है । वृक्ष बाघ के शरीर पर ये चित्ते इतने सुन्दर प्रतीत होते हैं मानों पीली जमीन पर काले बादल उठ रहे हों।

वृक्षबाघ का बदन भारी गठीला और सुडौल होता है तथा समूर बड़ा नहीं होता ।

श्री ई० एच० पीकौक ने सन् 1933 में अपनी पुस्तक "बर्मा और पड़ोस के शिकार के लिए पुस्तक" (ए गेम बुक फॉर बरमा एण्ड एडजोइनिंग टैरेटरीज) में लिखा है: "मैंने एक आदमी के बारे में सुना जो जंगली मुर्गी के लिए हाका करके लौटा था और उसने साथियों को बताया कि वह दो बड़ी ही सुन्दर बहुत बड़ी बिल्लियां मार कर लाया है । उन बिल्लियों को उसने 12 नम्बर बन्दूक से मारा है । पर वे दो बिल्लियां वृक्ष बाघों का एक छोटा सा जोड़ा थीं। सन् 1933 में ही डब्लू स्ट्रैचन ने 'मोल्ड बाइ ए टाइगर' में एक वर्णन में लिखा है कि पेड़ के एक छिपे स्थान में से किस प्रकार उन्होंने एक मादा वृक्ष बाघ को मारा और उसके एक मात्र कुछ दिनों के बच्चे को लाकर पाला। बच्चा एक महीने तक अच्छी तरह पला और जब वे छुट्टी चले गए तो सम्भवतः देखरेख की कमी से वह मर गया। 1933 में ही स्ट्रैचन ने लिखा है कि वृक्ष बाघ बहुत ही कम कहीं-कहीं ही मिलता था। स्ट्रैचन ने लिखा है जब पेड़ के खोखले से वृक्ष बाघिन निकली तब उन्हें इस बात में जरा भी सन्देह नहीं रहा कि वह काफी खूंखार हो सकती है ।

यद्यपि वृक्षबाघ छोटा होता है, पर क्रोधित किए जाने पर बहुत खूंखार हो जाता है। वह बड़ा ही सक्रिय और तेज जानवर है। चुपचाप बैठे रहना उसे बिल्कुल पसन्द नहीं है।

वृक्षबाघ बड़ी आसानी से पाला जा सकता है, क्योंकि चिड़ियाघरों में यह बड़ी आसानी से अपने खिलाने वाले के साथ बाहर निकल कर फोटो खिचा लेता है। पर प्राकृतिक दशा में वृक्षबाघ का अध्ययन कठिन है, अतः इसके विषय में शिकारियों और लेखकों को अति विस्तार से अधिक कुछ नहीं मालूम है। जंगलों के कट जाने से वृक्षबाघ का भी अब लोप ही होता जा रहा है, क्योंकि इसका विशेष प्रिय स्थान बड़े पेड़ों की दुफंकी और तिफंकी शाखाओं के बीच का है, जहां वह दिन में भी रहता है और रात को भी रहता है । वह बड़े पेड़ों के खोखल में बच्चे रखता है ।

• बिल्लियां

हमारे देश में कई प्रकार की जंगली बिल्लियां होती हैं, पर इस पुस्तक में केवल उन्हीं बिल्लियों का वर्णन किया जाएगा, जिनके विषय में यथेष्ठ वैज्ञानिक जानकारी है ।



दो मछुआ बिल्लियां

7—मछुआ बिल्ली

इसको मछुआ बिल्ली (फिशिंग कैट) इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह अपनी गुजर-वसर प्राय: मछली, घोंघे और कछुए पकड़ कर करती है। मछुआ बिल्ली घर की पालतू बिल्ली से कुछ बड़ी होती है। इस बिल्ली के साधारण आकार के नर की लम्बाई नाक के सिरे के पूंछ के अंतिम सिरे तक $41\frac{1}{2}$ इंच होती है, जिसमें से पूंछ ही अकेली $11\frac{1}{2}$ इंच की होती है। इतने लंबे बिलौटे की कंधों पर ऊंचाई 15 इंच होती है। इसके वदन का रंग सिलेटी होता है और गालों का रंग सफेद, जिस पर काली धारियां होती हैं। शरीर पर चित्ते होते हैं, जिनमें बीच का रंग हलका नहीं होता। चित्ते चौड़े कम, पर लंबे अधिक होते हैं। पूंछ का सिरा काला होता है। मछुआ बिल्ली की खोपड़ी अन्य चीर-फाड़ कर खानेवाले मांसाहारी जानवरों से कम मिलती है और बन्दर से अधिक मिलती है। यह ठीक है कि भारत की कुछ अन्य छोटी बिल्लियों की खोपड़ियां भी मछुआ बिल्ली से मिलती जुलती हैं। भारतीय पालतू बिल्लियों—घर की बिल्लियों—के भी आंख के खांचों (Socket) के चारों ओर मछुआ बिल्ली की तरह हड्डी का वृत्त पूरा होता है।

ब्लैनफोर्ड के मत से मछुआ बिल्ली भारत में हर जगह नहीं पाई जाती। मलावार तट को छोड़ कर दक्षिण भारत में तो यह है ही नहीं। हिमालय की तराई में नीचे नेपाल तक और बंगाल से लेकर पंजाव तक उत्तरी भारत में पाई जाती है। बंगाल में इसे माछ विड़ाल कहते हैं। यह बिल्ली दलदल, झील और नदियों का किनारा रहने के लिए पसंद करती है, जहां उसे पर्याप्त भोजन मिल जाता है। इसकी खुराक केवल मछली, कछुआ और केंकड़ा ही नहीं है, वरन जो भी छोटा जीव इसके दांव पर चढ़ जाता है, उसे ही चट कर जाती है। मछुआ बिल्ली कभी-कभी सांप तक खा जाती है।

स्वभाव से मछुआ बिल्ली क्रूर और खूंखार होती है और बंगाल की छोटी गायों के छोटे वच्चों को जंगल में से पकड़ ले जाती है, जिसके लिए वाघ जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। कभी-कभी मछुआ बिल्ली, भेड़ों के वाड़े में घुस कर मेमनों का भी

खूब संहार कर देती है । मछुआ बिल्ली के खूंखार होने की एक घटना के विषय में ब्लिथ ने लिखा है कि एक बार एक मछुआ बिल्ले को एक ऐसे पिंजड़े में रखा गया, जिसके एक भाग में बिल्ला था और दूसरे भाग में एक पालतू बाघिन। पिंजड़े में दोनों भागों का विभाजन पतला और कमजोर था। पालतू बाघिन बिल्कुल नई कम उमर की तो थी, पर आकार में मछुआ बिल्ले से दूनी थी। मछुआ बिल्ले ने पिंजड़े के विभाजन को ही नहीं तोड़ दिया वरन पालतू बाघिन को जान से मार दिया, हां उसका मांस नहीं खाया। मछुआ बिल्ली खूंखारी और जंगलीपन के लिए कुख्यात है और भेड़, बकरी, गायों के बच्चे ही नहीं वरन अकेला पाकर आदमी के छोटे बच्चों को भी वह चुरा ले जाती है। एक स्थान पर स्टर्नडेल ने लिखा है, "मैंने मछुआ बिल्ली को फंदे से पकड़ा और जब उसको छोड़ा और उस पर कई तरह के कुत्ते छोड़े तो मछुआ बिल्ली ने कुत्तों से भयंकर लड़ाई की। कुछ वर्षों की बात है कि मछुआ बिल्ली मेरे मुर्गीघर में घुस गई और जैसे ही मैंने मुर्गीघर को खोला तो वह बड़ी जोर से मुझ पर दूसरी ओर से अपने बैठे स्थान से झपटी।

मछुआ बिल्ली की मादा दो से चार तक बच्चे देती है।

8–सिकमार बिल्ली

सिकमार बिल्ली को अंग्रेजी में 'मार्बल्ड कैट' कहते हैं। आकार में यह सुन्दर बिल्ली, घर की बिल्ली से कुछ बड़ी होती है और वृक्ष बाघ से इतनी अधिक मिलती-जुलती प्रतीत होती है कि एकाएक देखने पर लोग इसको वृक्ष बाघ का बच्चा समझ बैठते हैं। ब्लैनफोर्ड के अनुसार इस बिल्ली के सिर और बदन की लम्बाई 18½ से 23 इंच तक होती है तथा सवा फुट लंबी झबरी पूंछ अलग होती है। यह घरेलू बिल्ली की अपेक्षा अधिक मजबूत, ताकतवर तथा फुर्तीली होती है।

सिकमार बिल्ली का रंग गंदा लालछौंह होता है, जिसमें भूरे रंग की मिलावट होती है। सारे शरीर पर काले-काले धब्बे होते हैं, जो लहर-लहर से मालूम पड़ते हैं। गरदन और सिर पर की पतली-पतली धारियां पूंछ तक चली जाती हैं। पिछली टांगों के नीचे काली चित्तियां होती हैं और पूंछ पर काली गड़ारियां सी पड़ी रहती हैं। पेट का रंग पिलछौंह सफेद होता है। सिकमार का समूर विशेष रूप से घना और कोमल होता है तथा हिमालय में रहने वाली सिकमार के पेट पर तो ऊन जैसा समूर पाया जाता है।

भारत में सिकमार पूर्वी हिमालय और असम में पाई जाती है अर्थात वृक्ष बाघ का क्षेत्र ही इस बिल्ली का भी क्षेत्र है। स्वभाव से सिकमार लजीला जानवर है और खतरे को समीप आया समझ छिपकर भागने का प्रयत्न करता है, पर क्रोधित किए जाने पर खूंखारी दिखाता है। मादा सिकमार अन्य बिल्लियों की भांति ही दो से चार तक बच्चे देती है।

9–सुनहरी बिल्ली

सुनहरी बिल्ली (गोल्डन कैट) भारत की प्रसिद्ध बिल्ली है, जो दक्षिण पूर्वी हिमालय में मिलती है। वहां से उत्तर की ओर तिब्बत तक पाई जाती है।

वैसे पूर्व की ओर मलाया और बरमा तक पाई जाती है, पर वास्तविकता तो यह है कि इस बिल्ली का ठीक-ठीक यह पता नहीं कि कहां तक इसका निवास क्षेत्र है। सुनहरी बिल्ली वृक्ष बाघ से छोटी होती है और बादामी रंग के कारण बहुत जल्दी पहचान में आ जाती है। यह सुनहरापन लिए इसका बादामी रंग पीठ की लाइन में कत्थई सा हो जाता है। ठोड़ी और शरीर के नीचे का भाग तथा पूंछ के नीचे का भाग या तो बिल्कुल सफेद होना है या सफेदी मायल होता है। इसकी छाती पर कुछ काले चिह्न पड़े रहते हैं और चेहरे पर ऐसे चिह्न होते हैं, जो बदलते रहते हैं।

सुनहरी बिल्ली के स्वभाव का भी कुछ पता नहीं है, पर इसके रंग से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रेतीले और चट्टानी इलाकों का जानवर है।

10—बाघ बिल्ली

बाघ बिल्ली जिसे अंग्रेजी में "लैपर्ड कैट" कहते हैं घर की छोटी पालतू बिल्ली के आकार की होती है, पर इसकी टांगे अपेक्षाकृत लम्बी होती हैं। वैज्ञानिकों ने



बाघ बिल्ली

इसको लगभग 15 वैज्ञानिक नाम दिए हैं और उसके रंग भी भिन्न-भिन्न होते हैं। पर है यह बाघ बिल्ली ही।

साधारण प्रकाश में इसकी पुतली का आकार गोलाकार होता है और पूंछ की लम्बाई भी एक सी नहीं होती। पूंछ का नाप बिल्ली के सिर से पूंछ की जड़ तक के नाप से एक तिहाई या आधे से कुछ कम होता है। बाघ बिल्ली की लम्बाई 24 से 26 इंच तक होती है और पूंछ 11-12 इंच लम्बी होती है। बाघ बिल्ली के चित्तों का स्पष्ट वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि विभिन्न बिल्लियों में विभिन्न प्रकार के चित्ते होते हैं, तथापि अपने चित्तों के कारण इसे चित्तेदार बिल्ली ही कहना चाहिए। बाघ बिल्ली के बदन के ऊपरी भाग की खाल का रंग पीला और भूरा कलछौंह होता है, जिस पर काली, आड़ी, गाढ़ी लम्बापन लिए चित्तियां होती हैं। गरदन पर काली धारियां तथा पूंछ और पैरों पर काली चित्तियां होती हैं। माथे पर चार खड़ी लकीरें होती हैं, जो बहुत कुछ स्पष्ट रूप से पीठ की ओर चली जाती हैं।

बाघ बिल्ली शुद्ध रूप से जंगली जीव है और भारत के विभिन्न भागों में पाई जाती है। भारत में यह हिमालय के पार्श्व भाग में शिमले तक, बंगाल के अधिकांश भाग में, पश्चिमी घाट में बम्बई की तरफ, वाइनाड और ट्रावनकोर के जिलों में, पूर्वी हिमालय में और असम में पाई जाती है।

यद्यपि यह जंगली इलाकों का जानवर है, पर केवल पहाड़ों के जंगल ही इसके निवास स्थान नहीं हैं, क्योंकि बंगाल के सुन्दर वन जैसे समुद्र के किनारे के स्थान में भी यह पाई जाती है। बाघ बिल्ली की गुजर-बसर छोटे स्तनपोषी जीवों और जंगली चिड़ियों मे होती है। बसंत में बाघ बिल्ली बच्चे देती है, जो संख्या में 3-4 होते हैं।

बाघ बिल्ली आकार की तो छोटी होती है, पर होती बड़ी खूंखार है। जब इसको पिंजड़े में रखा जाता है तो दिन में यह एक कोने में गठरी सी बनी पड़ी रहती है और बिल्ली की जाति के पशुओं के समान बेचैनी से इधर-उधर चक्कर नहीं काटती। ब्लिथ साहब जंगली जानवरों के पालने में विशेषज्ञ थे, पर उन्होंने भी स्पष्ट लिख दिया है कि वे बाघ बिल्ली को पालने में असफल रहे, पर ब्लैनफोर्ड साहब का कथन है कि लंदन के चिड़ियाघर में एक बाघ बिल्ली पल गई थी और देखभाल करनेवाले की आवाज पर आ जाती थी। क्रोधी भी बाघ बिल्ली कम नहीं होती। जून सन् 1923 में टिहरी गढ़वाल के प्रताप नगर नामक स्थान से डेढ़ मील की दूरी से लेखक के पास खबर आई कि एक गुफा में बाघिन के बच्चे हैं। लेखक ने जाकर गुफा के मुंह पर आग जलाई, धुआं किया पर बच्चे नहीं निकले। सायंकाल को बाघिन तो नहीं आई, पर बाघ बिल्ली वहां आई। आग और धुआं खतम हो चुके थे—गुफा के पास उसने 'म्याऊं' 'म्याऊं' शब्द किया तो गुफा से दो मोटे बच्चे निकले। लेखक ने आड़ से निकल कर पत्थर मार कर बाघ बिल्ली को भगाने की चेष्टा की। पर भागने के बजाय वह गुर्रा कर इतनी तेजी से झपटी कि अगर बंदूक उसके पेट में न अड़ जाती और फौरन ही फायर न हो जाता, तो वह लेखक की गरदन से चिपट जाती। बच्चों को लेखक उठा लाया, पर केवल कुछ दिनों तक ही उन्हें जिन्दा रखा जा सका।

11–चितकबरी बिल्ली

अंग्रेजी में इसे 'रस्टी स्पाटेड कैट' कहते हैं। भारतवर्ष में शेर और बाघ जहां बड़े पशु हैं, वहां उसी जाति के सबसे छोटे जानवर भी होते हैं। चितकबरी बिल्ली इसी तरह की एक छोटी सी बिल्ली होती है, जो आकार में घरेलू बिल्ली से भी छोटी होती है। भारत में यह भारत के दक्षिणी भाग में ही पाई जाती है और कभी-कभी मध्य प्रदेश तक में भी मिल जाती है। मलाबार तट में कहीं नहीं होती है। 'भारत के स्तनपोषी जीव' नामक पुस्तक में जौर्डन ने लिखा है, "यह बिल्ली खुश्क तालाबों की सूखी घास, खुले मैदानों के तालों और छोटी झाड़ियों में पाई जाती है। इस बिल्ली का एक बहुत छोटा बच्चा 1846 में मेरे पास लाया गया, जो बिल्कुल पालतू हो गया। यह बच्चा बड़ा ही सक्रिय और खिलाड़ी था। जब वह आठ माह का था, तब मैंने उसे उस कमरे में रखा, जिसमें चिकारा हिरन का एक छोटा बच्चा था। जैसे ही उसने चिकारे के बच्चे को देखा तो तुरंत ही तड़प कर उसकी गरदन पर चिपट गया

और बड़ी ही कठिनाई से छुड़ाया गया। इस घटना के कुछ दिनों बाद मैंने उसे खो दिया। वह प्राय: गिलहरियों के शिकार की तलाश में आया करता था।" पर ब्लैनफोर्ड का कहना है कि चितकबरी बिल्ली गांवों आदि के निकट नालों और घासों में ही नहीं जंगलों में भी पाई जाती है।

चितकबरी बिल्ली की पीठ की खाल का रंग सुर्खी मायल भूरा होता है और निचला भाग सफेद होता चला जाता है। इसके शरीर तथा टांगों पर चित्ते होते हैं, पर पूंछ पर नहीं होते। किन्हीं-किन्हीं बिल्लियों में लालपन अपेक्षाकृत अधिक होता है। एक ही बाल कई रंग का होता है। पीठ और बगल के चित्ते चौड़े कम होते हैं, लम्बे अधिक होते हैं और प्राय: आड़ी रेखाओं में होते हैं। चितकबरी बिल्ली के माथे पर भारत की अन्य छोटी बिल्लियों के समान चार खड़ी धारियां होती हैं। आंखों के पीछे भी चेहरे पर एक-एक धारी होती है।

चित्तीदार बिल्लियों में यह विचित्र होती है, क्योंकि इसकी पूंछ पर न छल्ले से बने होते हैं न चित्ते होते हैं और नीचे का भाग अपेक्षाकृत पीला होता है। चितकबरी बिल्ली की लम्बाई नाक से लगाकर पूंछ की जड़ तक 16 से 18 इंच तक होती है और पूंछ $9\frac{1}{2}$ इंच लंबी होती है। अपनी खुराक और बच्चे देने में यह अन्य बिल्लियों के समान ही है और अपनी गुजर-बसर चूहे, पक्षी तथा अन्य छोटे स्तनपोषी जीवों से करती है।

12–रेगिस्तानी बिल्ली

रेगिस्तानी बिल्ली (इंडियन डेजर्ट कैट) भी छोटी होती है और वह भारत के मरुभूमि प्रदेश में पाई जाती है। पश्चिमी राजस्थान और पंजाब में हरियाना क्षेत्र तक यह मिलती है। आकार में यह घरेलू बिल्ली के समान ही होती है, पर इसके ममूर के स्थान में चकत्ते ही होते हैं, जो आड़ी पंक्तियों में पड़े मालूम पड़ते हैं। इसकी पूंछ भी गाउदुम होती है, जो नीचे पतली होती चली जाती है तथा सारे शरीर की लम्बाई की आधी होती है।

रेगिस्तानी बिल्ली का रंग पिलाई लिए हुए बालू का सा होता है तथा शरीर के चित्ते छोटे और गोल होते हैं। सिर तथा गरदन के चित्ते तो बहुत छोटे-छोटे होते हैं, जो पास-पास होने के कारण पंक्तियों से प्रतीत होते हैं। टांगों के बाहरी भागों पर लकीरें होती हैं तथा पूंछ की जड़ के ऊपर भाग में भी लकीरें सी होती हैं। इसकी पूंछ के सिरे पर छल्ले से होते हैं तथा छोर काला होता है।

13–वन बिल्ली

वन बिल्ली या जंगली बिल्ली या वनबिलार (जंगल कैट) मामूली घरेलू बिल्ली से बड़ी, भारी और भयानक होती है। घरेलू बिल्ली के समान ही इसके कान के छोरों पर दो चार लंबे बाल होते हैं। इसकी पूंछ अपेक्षाकृत छोटी होती है और उसकी लम्बाई बिल्ली के सिर तथा शरीर की लम्बाई से एक तिहाई से लगाकर 2/5 तक होती है।



वन बिल्ली

इसका रंग पिलछौंह सिलेटी से लगाकर पिलाई लिए हुए भूरा होता है। पीठ पर रंग गहरा होता है और नीचे के भाग सफेद होते हैं, जिसमें हलका पीलापन सा प्रतीत होता है। पीठ पर से दोनों बगल घुमैली खड़ी धारियां पड़ी रहती हैं, जो कहीं-कहीं टूट कर चित्तियों की सी मालूम पड़ती है। उमर पाकर ये चित्तियां घुमैली और अस्पष्ट हो जाती हैं। वन बिल्ली के शरीर का निचला भाग सफेद होता है। छाती पर भी किसी-किसी बिल्ली के एक काली धारी पड़ी होती है और कभी-कभी किसी-किसी वन बिल्ली के पेट पर भी हलके रंग की चित्तियां होती हैं। वन बिल्ली के पैर के तलवे लालपन लिए होते हैं और पूंछ के नीचे के भाग में छल्ले होते हैं तथा पूंछ का सिरा अन्य सब बिल्लियों के समान ही काला होता है। वन बिल्ली की लम्बाई 33 इंच से 39 इंच तक होती है और छोटे आकार की बिल्ली की पूंछ लगभग 11 इंच तक होती है।

वन बिल्ली सारे भारत में पाई जाती है और कन्याकुमारी से लगाकर हिमालय की 7-8 हजार फुट की ऊंचाई तक पाई जाती है। भारत में तो कभी-कभी काले रंग वाली वन बिल्ली भी मिलती है। यह खुले स्थानों तथा जंगलों में समान रूप से ही रहती है पर इसे विशेप रूप से लंबी घास और नरकल की झाड़ियां पसन्द हैं, पर वह गन्ने के खेत तथा अन्य फसलों में भी आ जाती है।

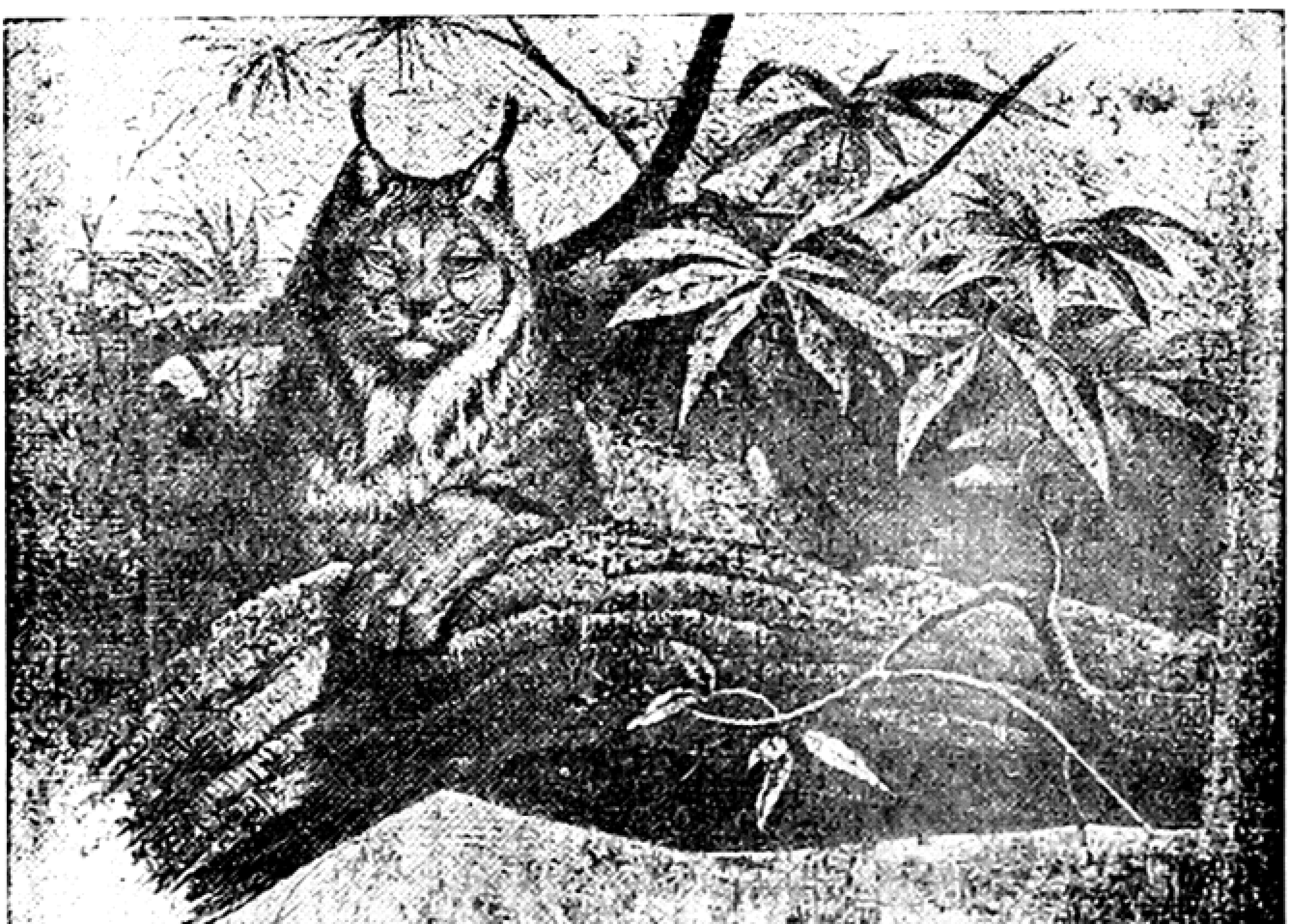
स्वभाव से वन बिल्ली भयानक और खूंखार होती है। यह है तो वन की बिल्ली, पर गांवों में चोरी की खातिर आ धमकती है तथा मुरगियों, भेड़ के बच्चों आदि को उठा ले जाती है। इस प्रकार वह बड़ा नुकसान पहुंचाती है। अपने खूंखार स्वभाव के कारण इसे भी नहीं पाला जा सकता। वन बिल्ली की ढिठाई भी प्रसिद्ध है। यहां तक कि शिकारियों द्वारा मारे गए शिकार तक को सामने से भगाते-भगाते उठा ले जाती है। पालतू पक्षी और छोटे जीवों को इससे बचाना बड़ा मुश्किल होता है। लेखक के फार्म के 20 एकड़ के क्षेत्र में बबूलों का जंगल है, जिसमें दस बारह वन बिल्लियां रहती हैं। दो चार वार ऐसा हुआ कि जंगल में जैसे ही खरगोश को छोटी वन्दूक से मारा कि वन बिल्ली उसे ले भागी। फार्म के झोंपड़े में दूध

इत्यादि के लिए तो वे बहुत परेशान करती हैं । केवल ट्रेण्ड कुत्ते ही इससे पीछा छुड़वा सकते हैं अन्यथा कुत्तों से भी वह खूब लड़ती है। केवल बुल टैरियर कुत्तों का जोड़ा अगर वन बिल्ली को पकड़ पाए तभी वह मारी जाती है ।

वह दिन भर किसी छिपे स्थान में पड़े रहने के बाद रात होते ही अपने शिकार पर चल देती है । इसकी मादा साल में दो बार 3-4 बच्चे देती है ।

14–स्याहगोश

स्याह का अर्थ है काला और गोश का अर्थ है कान । इसलिए स्याहगोश का अर्थ हुआ काले कान वाला जानवर। वैज्ञानिकों में स्याहगोश के वर्गीकरण के विषय में बड़ा मतभेद रहा है । स्याहगोश के अनेक भेद हैं, पर यहां पर भारत में पाए जानेवाले स्याहगोश की चर्चा ही करनी है । बिल्ली की शकल-सूरत का उठे से कान वाला जानवर बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है । स्याहगोश के अनेक भेद हैं, जिनमें यूरोपीय स्याहगोश प्रमुख हैं। हमारे देश में यह पंजाब, मध्य प्रदेश के जंगल और



स्याहगोश

मलाबार तट को छोड़कर दक्षिण के सभी जंगलों में पाया जाता है । तिब्बती स्याहगोश लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, टिहरी गढ़वाल और कुमाऊं के उत्तरी भाग में पाया जाता है। सन् 1923 में लेखक ने एक स्याहगोश टिहरी गढ़वाल की भैरों घाटी और तिब्बत की सीमा के बीच मारा था। हमारे देश के इतने बड़े भू-भाग में पाए जाने पर भी स्याहगोश संख्या में इतने कम हैं कि बहुत कम मिलते हैं। इनके रहने का

स्थान भी ऐसे सघन जंगलों में होता है, जहां आदमी का पहुंचना आसान नहीं होता, पर भारत में अपेक्षाकृत मध्य भारत के जंगलों में स्याहगोश अधिक मिलते हैं।

स्याहगोश की लम्बाई $2\frac{1}{2}$ फुट और ऊंचाई $1\frac{1}{2}$ फुट होती है तथा पूंछ 1 फुट से कम, छोटी सी होती है। पूंछ का सिरा काला तथा चमड़ा बढ़िया होता है। स्याहगोश का रंग हलका भूरा या बादामी होता है। पेट का रंग पिलछौंह होता है, पर किसी-किसी के पेट बिल्कुल सफेद होते हैं। पेट पर हलकी ललछौंह चित्तियां होती हैं, जो लिपी-पुती सी जान पड़ती हैं।

इसके कान बाहर भूरे होते हैं और उन पर काला हाशिया बना होता है तथा नोक पर बाल होते हैं। गले पर बड़े-बड़े बाल लटकते हैं, जिससे स्याहगोश का सौन्दर्य बढ़ जाता है।

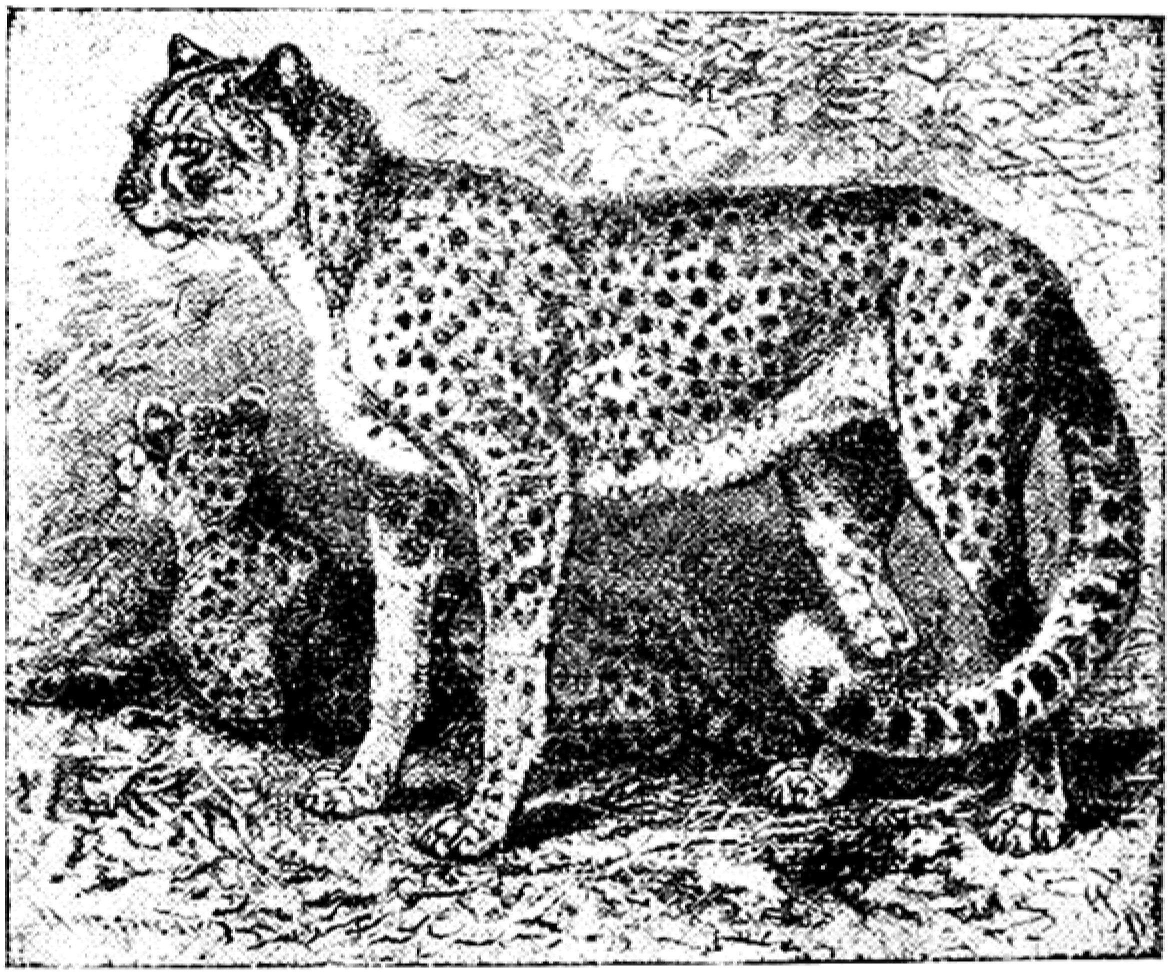
स्याहगोश का मुख्य भोजन पक्षी और छोटे-छोटे जानवर हैं। चिड़िया पकड़ने में तो यह विशेषरूप से दक्ष होता है। पेड़ों पर तो स्याहगोश चिड़ियों का शिकार करता ही है, पर जमीन पर भी बड़ी आसानी से चिड़ियों को पकड़ लेता है, क्योंकि जमीन पर 5-6 फुट तक कूद कर यह उन्हें लपक लेता है। कभी-कभी लोग स्याहगोश को उसकी फुरती के गुण के कारण लोमड़ी, खरगोश, मोर, तीतर और कबूतर के शिकार के लिए भी पाल लेते हैं।

स्याहगोश की मादा एक बार में 3-4 बच्चे दे देती है। इन का घना कोमल समूर बड़ा सुन्दर होता है।

15–चीता

चीते को अंग्रेजी में 'हंटिंग लैपर्ड' या 'चीता' कहते हैं। यह बाघ से भिन्न होता है। बाघ, शेर और सिंह से चीता इसलिए भिन्न है कि अन्य बड़ी और छोटी बिल्लियों के समान चीते के नाखून पैर की गद्दी के अन्दर पूरे नहीं छिपते वरन आधे बाहर निकले रहते हैं। चीते के दांत भी अन्य बिल्लियों के दांतों से कुछ भिन्न होते हैं। ऊपर की पहली तीन दूध की डाढ़ें (Pre-molar) काफी छोटी होती हैं। ऊपर की मांस डाढ़ भी अन्य बिल्लियों की डाढ़ों से भिन्न होती हैं। चीते की खोपड़ी बहुत कुछ हिमबाघ से मिलती है, पर चेहरा अपेक्षाकृत छोटा होता है।

चीते के शरीर का रंग कभी-कभी ललछौंह बादामी और कभी-कभी भूरापन लिए पिलछौंह होता है, जो नीचे के भाग में पीला होता जाता है। चीते का सारा शरीर बड़ी-बड़ी काली चित्तियों से भरा होता है, बस गले और ठोड़ी पर ये चित्तियां नहीं होतीं। ये चित्तियां बाघ की चित्तियों के समान छल्लेदार न होकर बड़ी बिन्दियां जैसी होती हैं तथापि इनका कोई क्रमबद्ध सिलसिला भी नहीं होता, बस यों ही भरी होती हैं। चीते के मुंह पर आंख के सामने के कोने से ऊपरी होंठ तक काली धारी होती है और कभी-कभी आंख के बाहरी भाग से एक धारी कान तक चली जाती है। पूंछ पर चित्तियां आधे छल्ले जैसी हो जाती हैं और पूंछ का सिरा सफेद होता है। चीते के कान जड़ में कलछौंह और बाहर काले होते हैं। बस यों समझना चाहिए कि ताजी कुत्ते को बघेरे का सा जामा पहना दिया गया हो।



चीता

पर चीते के छोटे बच्चों का समूर लम्बा होता है—विशेष कर पीठ का। यदि बच्चों के समूर को काट दिया जाए तो नीचे के समूर में स्पष्ट रूप से चित्तियों के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं।

चीते की लम्बाई नाक से पूंछ तक 7 फुट होती है, जिसमें से अकेली पूंछ ढाई फुट लम्बी होती है। इसकी ऊंचाई $2\frac{1}{2}$ से $2\frac{3}{4}$ फुट तक होती है। टांगें अपेक्षाकृत इसकी ऊंची होती हैं। यह अफ्रीका, स्याम, ईराक, ईरान, बलूचिस्तान और भारत में पाया जाता है। भारत में भी वह बंगाल, मलावार तक और गंगा के उत्तर में नहीं पाया जाता। चीता के रहने के प्राकृतिक स्थान न तो घने जंगल हैं और न ऊंची घास। वह तो झाड़ियों के इलाके का ही पशु है। बड़े दुख की बात है कि झाड़ियों के कटने और चीते के शिकार के कारण सन् 1952 के बाद वह जंगली हालत में नहीं पाया जा रहा है। उसको जंगली हालत में देखने के काफी प्रयास हुए, पर वह सन् 1952 के बाद मिला ही नहीं। अभी वह पालतू हालत में तो मिलता है और आवश्यकता इस बात की है कि चीते के लिए राजस्थान और दक्षिणी भारत में स्थान सुरक्षित कर दिए जाएं। मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ रही हैं, अतः झाड़ियां तो कट ही रही हैं, साथ ही नासमझ शिकारियों की संख्या भी काफी बढ़ रही है। इसको मनुष्य की खातिर भी संरक्षण मिलना चाहिए, क्योंकि खेती को नुकसान पहुंचाने वाले जानवरों का यह संतुलन बनाए रखता है और बाघ और शेर की भांति आदमखोर भी नहीं होता।

अपनी प्राकृतिक दशा में यह काले हिरन और नील गाय तक का शिकार खेलता है। झाड़ियों तथा अन्य आड़ के सहारे पेट के बल लुक-छिप कर यह जाता है और जब

शिकार केवल 150–200 गज रह जाता है, तब बिजली की गति से आक्रमण करता है और काले हिरन जैसे तेज दौड़नेवाले जानवर को भी वह 400 गज में ही पकड़ लेता है। 300–400 गज की दूरी के लिए इससे अधिक तेज दौड़नेवाला कोई जानवर नहीं है। काला हिरन बहुत तेज दौड़ने वाला होता है और सूखे इलाके में कोई घुड़सवार या ताजी कुत्ता उसको नहीं पकड़ सकता, पर चीता काले हिरन को पकड़ लेता है। कारण यह है कि चीता, बाघ, सिंह और शेर पहली ही छलांग में बिजली से चलने वाली रेल के समान अपनी पूरी गति पर आ जाते हैं, जबकि हिरन आदि जानवरों को तेजी पकड़ने में कुछ समय लगता है। चीते के विषय में काफी जानकारी इसलिए है कि भारतीय अमीर विशेष-कर राजे महाराजे शिकार की खातिर इसे पालते हैं। बड़े मजे की बात यह है कि चीते के छोटे बच्चे लाकर पाले जाएं तो वे शिकार का काम नहीं कर पाते, इसलिए वयस्क चीतों को ही लाकर पाला जाता है।

चीते जोड़ों में अपने कुटुम्ब के छोटे से झुंड के साथ शिकार खेलते हैं। अच्छी तरह पेट भरने के बाद अपनी मांदों में आराम करने चले जाते हैं। मांद में कई दिनों तक पड़े रहते हैं। वहां से निकल कर पेड़ों पर चढ़ कर अन्य चीतों के साथ किसी नए शिकार की टोह में बैठ जाते हैं। बस इन्हीं पेड़ों को लोग घेर लेते हैं और कच्ची खाल के फंदों में फांस कर पकड़ लेते हैं।

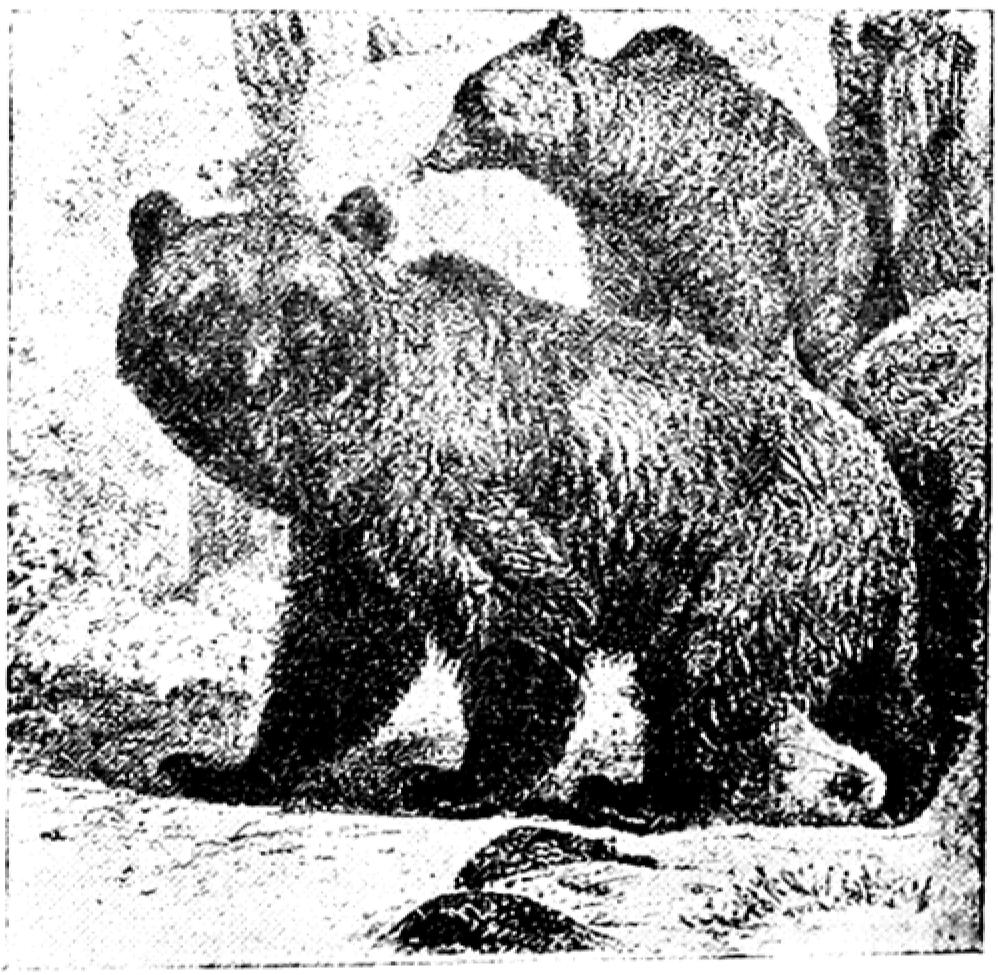
भारत के राजे महाराजे काले हिरन के शिकार की खातिर चीता पालते थे। जिस पिंजड़े में चीता रखा जाता है उसी पिंजड़े को बैलगाड़ी के आकार का बनाया जाता है, जिसे दो बैल खींचते हैं। जब शिकार दिखाई पड़ता है तब चीते को पिंजड़े से निकाल लिया जाता है और पिंजड़े की छत पर रखवाले के साथ बिठा दिया जाता है। बाज की आंखें ढकने की जैसी बद्धी होती है, वैसी ही बद्धी चीते की आंखों पर चढ़ी रहती है। चीता कूल्हे के बल कुत्ते की तरह बैठ जाता है और चीते का मालिक उसके गले में अपनी बांह डाले रहता है। चीता इस स्थिति में आंखों से बद्धी हटाये जाने की प्रतीक्षा में बैठा होता है, क्योंकि जब वह पिंजड़े से बाहर निकाला जाता है तभी समझ जाता है कि शिकार देखा जा चुका है। जब हिरन 150–200 गज की दूरी पर होते हैं और जाती गाड़ी को देख इधर-उधर दुलकी चाल से चलते हैं तथा काला हिरन स्पष्ट दिखाई पड़ता है तब चीते की बद्धी खोलकर उसे हिरन दिखा दिया जाता है। चीता तुरंत गाड़ी से कूदता है और विद्युत-गति से हिरन को पकड़ लेता है। यदि दूरी अधिक होती है तो आगे झाड़ियों में छिप कर तब आक्रमण करता है। हिरन की गरदन दाब कर तब तक चीता प्रतीक्षा करता है जब तक उसका मालिक आकर फिर उसकी चमकती आंखों पर बद्धी नहीं चढ़ा देता। पर चीता हिरन की गरदन में गड़े अपने दांत नहीं निकालता। हिरन की गरदन के चारों ओर कड़ी रस्सी बांधी जाती है, जब खून भरररा कर निकलने लगता है तो एक बड़ा हैंडिल वाला कटोरा खून से भर लिया जाता है। चीते की आंखों से फिर नकाब हटा लिया जाता है, तब खून से भरे पात्र को देख चीता हिरन की गरदन से दांत हटा कर 'लप लप' करके खून पीने लगता है। खून पीकर जब वह शान्त होता है तब फिर उसकी आंखों पर नकाब चढ़ा दिया जाता है तथा पिंजड़े में बंद कर दिया जाता है और उस दिन कोई दूसरा शिकार उससे नहीं खेलवाया जाता।

पालतू चीते इतने हिल जाते हैं कि दर्शकों के पास आने पर अपने शरीर को उनसे रगड़ कर प्यार से घुरघुर करते हैं। हिरनों के झुंड में से चीता प्रायः बड़े-से-बड़े हिरन को ही पकड़ता है और यदि पहली ही दौड़ में वह उस हिरन को नहीं पकड़ पाता तो फिर दूसरे के पीछे नहीं जाता, अतः चीता फिर बन्द कर दिया जाता है। पर जंगली चीता तो अब भारत में पाया ही नहीं जाता और बदलती दुनिया में पालतू चीतों का रिवाज भी खतम सा ही है। अब न हिरनों के झुंड हैं न झाड़ियां हैं, न पालनेवाले हैं। जब बहुत तलाश करने पर भी चीता जंगली हालत में नहीं मिल रहा तो जहां भी पालतू मिले वहां से लेकर सुरक्षित स्थान में उन्हें पहुंचा देना चाहिए।

भालू वंश

भालू-समूह के सब वंशों के जीवों के पैरों में पांच-पांच नाखून होते हैं।

भालू वंश के सब जीव मांस भक्षी होते हैं और साथ ही जड़ें, फल, फूल तथा शहद भी बड़े मजे से खाते हैं। इस वंश में सब प्रकार के भालू आते हैं। भालू वंश के जीवों का शरीर भारी और बड़ा, पैर तगड़े, नख बड़े और मजबूत तथा आंखें छोटी होती हैं।



भालू

भालू वंश के जीवों के पद-चिह्न मनुष्य के पद-चिह्नों से मिलते हैं क्योंकि इनके तलवे पर बाल नहीं होते और ये जीव अपना पूरा तलवा जमीन पर रख कर चलते हैं। इनकी चाल भौंड़ी होती है, क्योंकि भालू वंश के जीव ऊंटों की तरह अपने एक ओर के दोनों पैर

एक साथ उठा कर चलते हैं। कान भी इस वंश के जीवों के छोटे होते हैं और श्रवण शक्ति भी कम होती है। पूंछ छोटी होती है।

अन्य मांसाहारी चीर फाड़ कर खाने वाले जीवों की अपेक्षा भालू वंश के दांत भिन्न होते हैं। उनके दांत ऊपरी जबड़े में कुत्तों की दो जोड़ा डाढ़ों से समता रखते हैं और नीचे के जबड़े में भी कुत्तों की तरह ही तीन जोड़े डाढ़ों के होते हैं। पर दांतों का आकार भिन्न होता है। दोनों जबड़ों में मांस दांत भी मांसाहारी जीवों के दांतों से बिल्कुल भिन्न होते हैं और जब भालू वयस्क हो जाता है तब वे गिर जाते हैं। भालू वंश के दांत इस बात के द्योतक हैं कि वह अन्य मांसाहारियों से भिन्न है इसलिए इस वंश के जीव मांस की अपेक्षा घास-पात, जड़ें और कीड़ों मकोड़ों पर अधिक अवलंबित रहते हैं। विकास क्रम में भालुओं के दांत अधिक विकसित जीवों के समान हैं। पूंछ का न होना भी इसी प्रकार अधिक विकसित जीवन का द्योतक है।

भालू वंश के जीव इस प्रकार एक दूसरे से बहुत समता रखते हैं और उनमें जो कुछ भी भेद है वह नगण्य है। यूरोप, एशिया और उत्तरी अमेरिका में भालू एक विशाल क्षेत्र में पाए जाते हैं।

● भालू

भारतीय रुक्ष भालू को छोड़ कर इस जाति में सब प्रकार के भालू सम्मिलित हैं और उनके 42 दांत होते हैं, जिनमें कृंतक दंत $\frac{3}{3}$, कीले $\frac{1}{1}$, दूध की डाढ़ें $\frac{4}{4}$, डाढ़ें $\frac{2}{3}$ होती हैं। भीतर की दूध की डाढ़ें वयस्क होने पर गिर जाती हैं। पैरों के तलुवे बिना बालों के होते हैं, नाखून मझोले और मुड़े होते हैं। कान छोटे खड़े और बालों से घनीभूत होते हैं। ध्रुवी भालू, जिसे उत्तर का शेर कहते हैं, उत्तरी अमेरिका का कोडियक भालू, उत्तरी अमेरिका का भयंकर खूंखार ग्रिजले भालू तथा अन्य भालू इस पुस्तक के विषय नहीं हैं, इसलिए यहां केवल भारतीय भालुओं का ही वर्णन दिया जाता है। हमारे देश में केवल तीन प्रकार के भालू होते हैं :

(1) भूरा भालू (2) हिमालय का काला भालू, (3) रुक्ष भालू। अंग्रेजी में क्रमशः तीनों के नाम हैं—ब्राउन बेयर ; हिमालयन ब्लैक बेयर, और स्लोथ बेयर।

भारत में भालुओं के विषय में बड़ा भ्रम है। पहला तो यह कि भालू पेड़ पर उल्टा चढ़ता है और उतरता भी वैसे ही है। यह बात बिल्कुल गलत है। भालू सीधा ऊपर को मुंह किए ही पेड़ पर चढ़ता है और उतरता भी वैसे ही है, पर तने पर आकर ऊपर की ओर मुंह करके नीचे सरक पड़ता है। दूसरा भ्रम है कि वे शाकाहारी ही होते हैं और मांस नहीं खाते, पर बात ऐसी भी नहीं है। यह ठीक है कि हिमालय का काला भालू और रुक्ष भालू मांस खाने की खातिर पशु नहीं मारते, पर यदि उन्हें किसी पशु का शव पड़ा मिल जाए तो वे बड़े चाव से खाते हैं। एक-दो बार इस पुस्तक के लेखक को ऐसा अवसर देखने को मिला। गाय की लाश पर बाघ की प्रतीक्षा करते समय उसने भालू को लाश पर आते देखा। भालू आकर बुरी तरह गाय को खाने में लग पड़ा। एक दूसरी बार जब भालू बाघ की मारी गाय खा रहा था तब बाघ आ गया और दोनों में खूब लड़ाई हुई। अन्त में दोनों ही मारे गए।

16–भूरा भालू

भूरा भालू भारत के हिमवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है। कश्मीर से लगा कर हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल और कुमाऊं के क्षेत्र इसके निवास स्थान हैं, पर कश्मीर में अब यह बहुत कम हो गया है।

भूरे भालू का रंग पीलेपन की झलक लिए होता है, पर मौसम के अनुसार इसके रंग में परिवर्तन होता रहता है। कभी-कभी इसका रंग कत्थई भी होता है और इस कारण लोग इसे 'लाल भालू' की संज्ञा दे देते हैं। 'लाल भालू' कभी-कभी मदारियों के पास देखने को मिल जाता है। साधारणतया भूरे भालू की लम्बाई नाक से पूंछ के सिरे तक साढ़े पांच फुट होती है, बड़े भालू की ऊंचाई सवा तीन फुट होती है और छोटी सी पूंछ केवल तीन चार इंच लम्बी ही होती है। अन्य सब भालुओं की भांति भूरे भालू की छाती पर अंग्रेजी के 'वी' (V) अक्षर का-सा चिह्न बना होता है और अगर खड़े भालू पर निशाना लेने का मौका हो तो शिकारी इसी पर निशाना लेते हैं। इसका भूरा रंग इसलिए होता है, क्योंकि हिमालय में वह खुले वातावरण में रहता है। हिमालय का भूरा भालू भोजपत्र पेड़ों में पाया जाता है। शायद इसलिए भी उसका रंग हलका होता है ताकि वहां के वातावरण में उसका रंग तालमेल खा जाए। साथ ही जहां भूरा भालू रहता है वहां जमीन पर बरफ भी अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक रहती है।

भूरा भालू शीत निद्रा में सोता है और ग्रीष्म काल के आगमन पर जब वह शीत निद्रा से जागता है तब वह वजन में हलका हो जाता है। उस समय वह भूखा भी होता है, क्योंकि शीतनिद्रा के महीनों में उसकी चर्बी ही भोजन का काम देती है। गरमी से दुबारा शीतनिद्रा में जाने के पूर्व वह खूब मोटा हो जाता है और खाल भी गहरे रंग की हो जाती है। उन्हीं दिनों शिकारी उसका शिकार खेलते हैं।



दो भूरे भालू

भूरा भालू प्रायः अकेला ही रहना पसन्द करता है और मादा के साथ बच्चे देखे जाते हैं। वह भोजपत्र के पेड़ों के जंगल में और देवदार के जंगलों में मिलता है। गरमी के दिनों में हिमालय की अधिक ऊंचाई पर वह घासवाली चट्टानों और मैदानों पर चला जाता है। हिमालय के भूरे भालू की शीत निद्रा अप्रैल और मई तक चलती है, पर इस निद्रा से उसका जागरण बरफ के गलने के समय के अनुसार विभिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न होता है। शीत निद्रा के अन्तिम दिनों में ही मादा मांद के भीतर ही बच्चे देती है और जब बाहर निकलती है तो बच्चे उसके साथ होते हैं। मादा के दो बच्चे होते हैं, जिनके बदन पर बाल नहीं होते और आंखें बन्द होती हैं। लगभग एक मास तक उनकी यही दशा रहती है।

भूरा भालू जड़ें, सागपात और कीड़े-मकोड़े खाता है, पर जब इसे कोई लाश मिल जाती है तब उसे भी बड़े शौक से खाता है। पहाड़ी बाग-बगीचों को वह बहुत नुकसान पहुंचाता है, क्योंकि वह जंगली फल और घास ही नहीं खाता वरन सेब और खुमानी भी खाता है। कभी-कभी भेड़ बकरी भी खा जाता है। कीड़ों-मकोड़ों की तलाश में वह पत्थर उलटा-पलटा करता है। लेखक ने सन् 1923 के जुलाई मास में गंगोत्री और गोमुख के बीच भुजवासे में एक चट्टान के किनारे एक बड़े भालू को पत्थर पलटते देखा था।

उस भालू का रंग पेड़ों और चट्टानों से ऐसा मिला हुआ था कि भालू के लगभग 25–30 गज पास पहुंचने पर भी लेखक को पता न चला। भालू को सुनाई कम देता है अन्यथा वह आहट सुन लेता है। लेखक ने देखा कि थूथन उठा कर उसने 'हुफ' की आवाज की तथा लड़खड़ाता हुआ चट्टानों की ओर भाग गया।

रक्ष भालू की भांति भूरा भालू भी आसानी से पाला जा सकता है और मदारी उसे नचा-नचा कर रोजी कमाते हैं।

17–हिमालय का काला भालू

हिमालय का काला भालू नितान्त रूप से बन का रहने वाला जानवर है। रंग इसका नितान्त काला होता है और छाती पर उल्टा हुआ द्वितीया के चन्द्रमा के आकार का सफेद चिह्न होता है। लद्दाख में तो यह होता नहीं है, पर कश्मीर, हिमांचल प्रदेश,



हिमालय का काला भालू

गढ़वाल, कुमाऊं, सिक्किम, भूटान और असम तक वह पाया जाता है। काले भालू के नाखून रुक्ष भालू की अपेक्षा छोटे होते हैं। इसका समूर भी छोटा और चिकना होता है, जो गर्मियों में और भी बेगरा हो जाता है। समूर के नीचे छोटा समूर नहीं होता। जाड़ों में कंधों के बाल बढ़ कर फैले से हो जाते हैं मानों इसके कुहान हों। कान अपेक्षाकृत बड़े और उन पर बाल होते हैं। छाती पर सफेद चिह्न के अतिरिक्त इसकी ठोड़ी भी सफेद होती है और ऊपर का होंठ सफेदी मायल होता है। नाक लाली मायल भरी होती है।

कश्मीर, गढ़वाल और कुमाऊं के काले भालू की लम्बाई नाक से पूंछ तक साढ़े पांच फुट से साढ़े छः फुट तक होती है। काले भालू का वजन ढाई मन से तीन मन तक होता है। पर अक्तूबर के करीब यह वजन बहुत बढ़ जाता है। उन दिनों इन पर कई-कई इंच चर्बी चढ़ जाती है। थूथन इसकी अपेक्षाकृत लम्बी होती है और आंखों के पीछे माथा चपटा होता है।

गर्मियों में काला भालू हिमालय की तलहटी से 10–12 हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है। बांझ के जगलों में काला भालू बहुत होता है। वहां से वह रात में किसानों की फसल खाने के लिए निकल पड़ता है और किसानों को बहुत नुकसान पहुंचाता है। मक्का, मड़ुआ और अन्य खेती को वह उजाड़ देता है। सेव और खुमानी के बागों का तो वह बड़ा दुश्मन है। उससे बड़ी रखवाली करनी पड़ती है। शहद तोड़ने में भी वह बड़ा प्रवीण होता है। शहद खाने का भी वह बड़ा शौकीन होता है—एक हाथ से मक्खियां उड़ा कर छत्ते को तोड़ मुंह में रख लेता है। दिमौर को तोड़ कर उसमें अपना मुंह देकर उल्टी सांस खींच कर वह दीमक को अपने मुंह में खींच कर खा जाता है। वह चींटी भी खूब खाता है। शिकारियों को कभी-कभी वह इस क्रिया में मग्न मिल जाता है। यद्यपि काला भालू फल-फूल खाने वाला जानवर है फिर भी किसी की लाश मिल जाने पर टूट पड़ता है। यदि बाघ की मारी लाश मिल गई तो फिर वह बाघ के हटाने पर भी नहीं हटता और लड़ाई होती है। शेर के मारे शव पर भी वह आ जाता है, पर शेर उसे मार देता है। प्रसिद्ध शिकारी जिम कौर्बेट ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि एक बार जब वे एक भैंसे की लाश पर शेर के लिए बैठे थे तब शेर के आने के बाद एक विशालकाय हिमालय का काला भालू आया और ऊपर ही से शेर को देख कर खड्ड में कूद कर उसने शेर को भगा दिया। इतना ही नहीं, वरन वह शेर के भागने पर उसके पीछे भी भागा।

काला भालू एकाकी नहीं होता। वह कई की संख्या में भी मिलता है। कई भालू एक साथ मिल कर बागों को उजाड़ करते हैं। पेड़ पर छिपने में भी वह बड़ी चालाकी दिखाता है। कभी-कभी सेव के पेड़ के नीचे शिकारी या रखवाला खड़ा रहता है और भालू ऊपर पेड़ पर छिपा रहता है और मौका पाते ही भाग खड़ा होता है। घने जंगलों में जड़ें खोदते हुए अथवा चरते हुए काले भालू मिल जाते हैं। कभी-कभी तो बड़ी विचित्र घटनाएं घट जाती हैं। अपेक्षाकृत भालू का शिकार उत्तेजनाजनक नहीं होता, क्योंकि उसके निकट बड़ी आसानी से पहुंचा जा सकता है।

काला भालू बड़ा लड़ाका होता है और जंगल में अकारण ही कदाचित घबराहट में

वह आक्रमण कर देता है। पिछले पैरों पर खड़ा होकर मुंह में से झाग गिराते हुए वह थाप मारता है। पहाड़ों पर बूचे और नकटे आदमी दिखाई पड़ें तो वे उनमें से अधिकतर भालू द्वारा ही घायल किए गए होते हैं। काले भालू की दृष्टि भी तेज नहीं होती, सुनाई भी उसे कम पड़ता है, पर घ्राण शक्ति उसकी बड़ी तीव्र होती है। भालू के शिकार और उसके देखने के लिए ऊपर चढ़ाई की ओट से उसकी तरफ आना चाहिए, क्योंकि भालू नीचे भागने में गुड़ीमुड़ी होकर अपने को गट्ठर सा बना कर गहरे खड्डों में गिरा देता है। एक दिन लेखक सायंकाल से कुछ पूर्व कौड़िया (टिहरी गढ़वाल) के जंगल के किनारे एक ढलवां चट्टान पर इसलिए खड़ा था कि कहीं कोई भालू दिखाई दे कि थोड़ी ही देर में एक भूकम्प सा आता प्रतीत हुआ, चट्टान हिली और नीचे से 'भो भो' करता एक भालू निकल पड़ा। एक बार गर्मियों के प्रारम्भ में काफल फल खाने को पेड़ पर लेखक चढ़ा, तो ऊपर भालू भी फल खाता दिखाई पड़ा। खैर थी कि राइफल साथ थी। 'भो भो' करके उसने हमला किया, पर गोली उसके मुंह में पड़ी।

काले भालू मिल कर अपनी खुराक की तलाश में जाते हैं, चार-चार पांच-पांच, छः छः एक साथ। जंगल का हांका किया जाए तो कभी-कभी सारा झुंड एक साथ एक पंक्ति में निकलता है। पहले नर, फिर मादा, उसके पीछे उमर के हिसाब से बड़े छोटे बच्चे। जाड़ों में काले भालू पेड़ों पर लकड़ी और पत्तों की एक झोंपड़ी सी बना लेते हैं। गुफाओं और बड़ी चट्टानों में भालू घर बना लेता है। इनको शीत निद्रा तो नहीं पर शीत निष्क्रियता सताती है और जाड़ों में प्रातःकाल भालू बेर पर अथवा किसी और पेड़ पर अपने शयन स्थान के बाहर ऊंघते दिखाई देते हैं।

गढ़वाल में उसके पित्त की बड़ी मांग होती है और भालू मारा जाता है तो उसके पित्त को निकाल कर उसमें तांबा या सोना डाल देते हैं। लोगों का ख्याल है कि तांबा या सोना पित्त में गल जाता है और पित्त सूखने पर वह निमोनिया की बढ़िया दवा बन जाती है। पित्त में तांबा डालते तो लेखक ने देखा है, पर वह निमोनिया की भी दवा है या नहीं यह लेखक को पता नहीं।

घायल होने पर भालू बड़ा शोरगुल करता है और कभी-कभी तो घाव में कूड़ा करकट भर कर उसे और भी बढ़ा लेता है। मादा भालू बसन्त में दो बच्चे देती है। बच्चे मां के साथ कई वर्षों तक रहते हैं और छोटी उमर में मां की पीठ पर लद कर चलते हैं।

18—रुक्ष भालू

रुक्ष भालू भारत के स्तनपोषी जीवों में एक प्रसिद्ध जीव है और अन्य भालुओं की अपेक्षा इसमें कुछ विशेषताएं भी हैं क्योंकि इसके ऊपरी जबड़े में कृंतक दांतों के दो जोड़े होते हैं इसलिए रुक्ष भालू के कुल दांतों की संख्या 40 होती है, जबकि अन्य सब भालुओं के 42 दांत होते हैं। साथ ही कपोलों के दांतों का आकार खोपड़ी के हिसाब से अपेक्षाकृत कम होता है। खोपड़ी में तलुआ चपटे के स्थान में झुका हुआ होता है। रुक्ष भालू के नाखून काफी बड़े और मजबूत होते हैं। थूथन और नीचे के होठ काफी लम्बे और गतिशील होते हैं।

हिमालय के काले भालू की अपेक्षा रुक्ष भालू छोटा, हलका और भौंडा होता है। इसका समूर बहुत रुक्ष होता है और कन्धों पर अपेक्षाकृत बहुत बड़ा हो जाता है। थूथन का अन्तिम सिरा तो रुक्ष भालू का गन्दा भूरा-सा होता है, छाती पर सफेद निशान होता है और लम्बे-लम्बे नाखून भी सफेद होते हैं, पर शरीर के अन्य सब भाग बिल्कुल काले रंग के होते हैं। इसके आकार के जो नमूने दिए गए हैं उसके अनुसार रुक्ष भालू के सिर और बदन की लम्बाई 4 फुट से 5 फुट 8 इंच तक होती है और पूंछ की लम्बाई प्राय: 4 इंच से 5 इंच तक होती है। कन्धों पर इसकी ऊंचाई 2 फुट 2 इंच से लगा कर 2 फुट 9 इंच तक होती है। .औ, आकार के नरों का वजन लगभग 3 मन होता है। वैसे 4 मन वजन तक के नर का भी लेखा पाया जाता है।



भूरा भालू

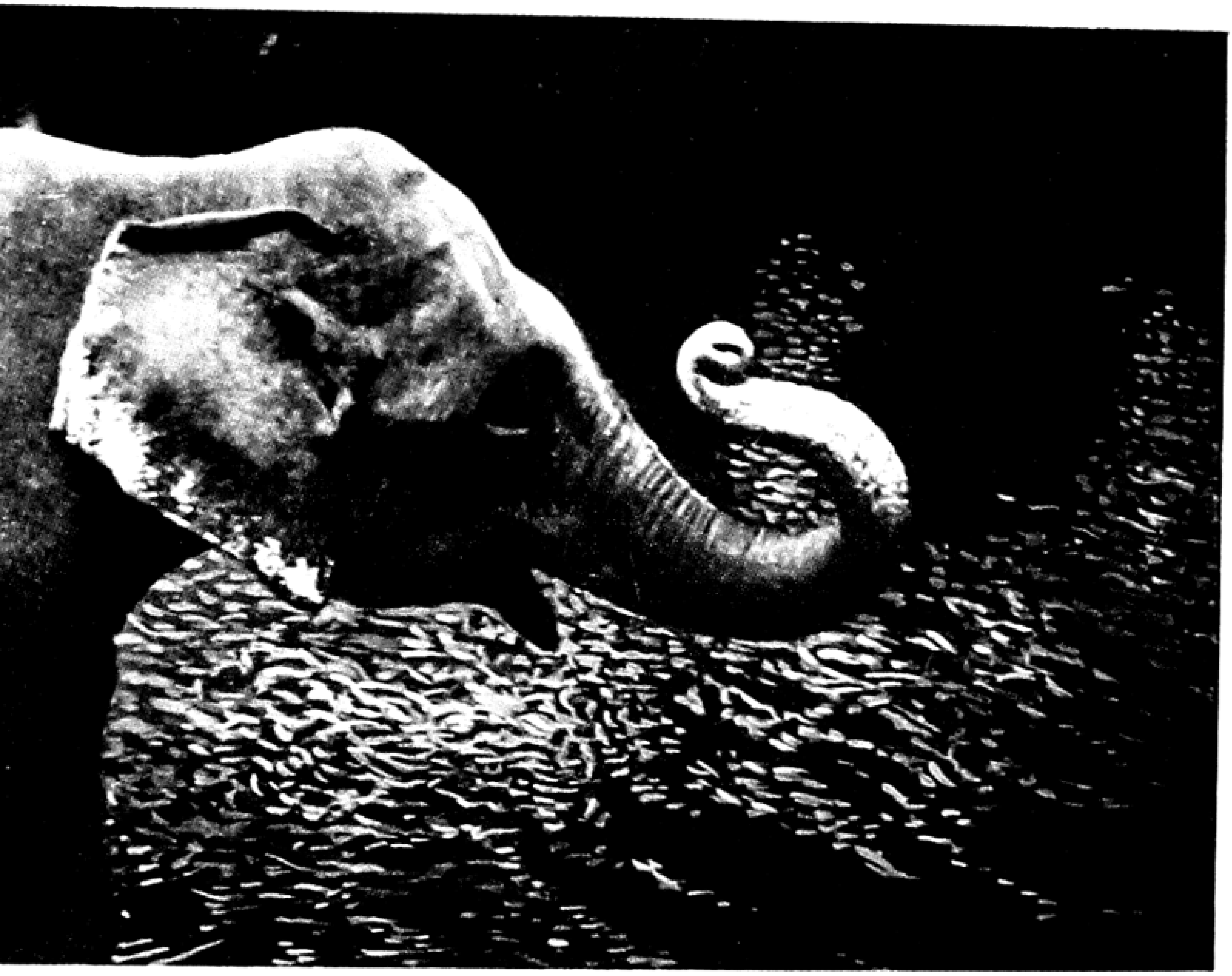
रुक्ष भालू भारत में हिमालय की तलहटी से कन्याकुमारी तक और बंगाल से कच्छ तक पाया जाता है। पर बंगाल और दक्षिण भारत में अब इसकी संख्या नहीं के बराबर है। रुक्ष भालू एकाकी भी पाया जाता है पर इसको तीन की संख्या में भी देखा गया है। तीन की संख्या में जब यह होता है तब मादा के साथ दो बच्चे होते हैं। कभी-कभी तो 4–5 की टोली में भी वह पाया जाता है। रुक्ष भालू सघन जंगलों, पथरीली गुफाओं में रहता है और मानसून के दिनों में तो चट्टानी गुफाएं ही उसे पसन्द हैं। वर्षा ऋतु को छोड़ कर वह नालों से सटी गुफाओं और घास में रहता है। भोजन की तलाश में यह रात में घूमता है, पर ऐसे स्थानों में जहां आबादी नहीं होती वहां प्रातःकाल आठ बजे तक और मध्याह्न के बाद सूर्यास्त से एक दो घण्टे पहले भी घूमता मिल जाता है। वर्षा ऋतु में तो कभी-कभी दिन भर बाहर ही घूमा करता है। रुक्ष भालू अन्य भारतीय जीवों के समान दोपहर की धूप से बचता है, पर जैसा कि लम्बे काले बालों से प्रतीत होता है वैसा वह नहीं है और शेर की अपेक्षा धूप से कम घबराता है। ब्लैनफोर्ड ने मई की एक दोपहरी में 3–4 भालुओं को चट्टान पर धूप में सोते देखा था। रुक्ष भालू को शीत निष्क्रियता भी नहीं होती। अपनी पिछली छोटी टांगों, लम्बी थूथन और निकले हुए निचले होंठ के कारण यह एक विचित्र ही जानवर प्रतीत होता है। साधारण तौर पर इसकी गति धीमी होती है मानो टहल रहा हो, पर आतंकित होने पर एक भद्दे भोंडे ढंग से भागता है मानों गोल-गोल कूदता जाता हो। चट्टानों पर भी वह बहुत अच्छी तरह चढ़ता है। पेड़ों



शेर

बाघ या तेंदअ





हाथी

गैंडा



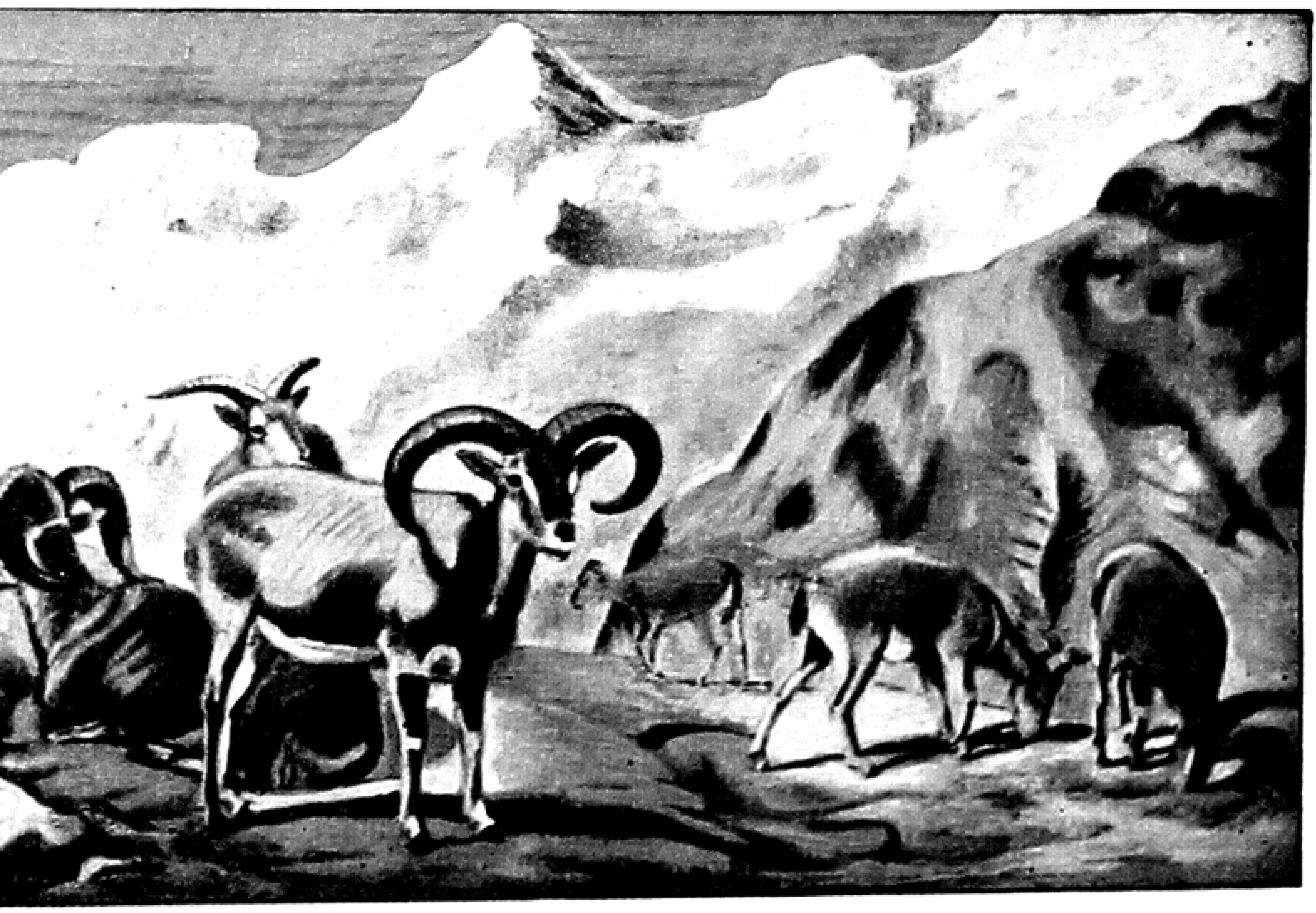


काला हिरन



चीतल

सांभर



पर भी रुक्ष भाल चढ़ जाता है, पर धीरे-धीरे। इसकी छोटी डाढ़ों से स्पष्ट है कि इसके भोजन में फल, फूल, जड़ें, कीड़े-मकोड़े और शहद विशेष रूप से हैं। फरवरी से मार्च तक महुआ के सुन्दर फूल रात में झड़ते हैं और जंगल के अन्य जीवों के समान रुक्ष भालू भी इन फूलों को बड़े शौक से खाता है। गुबरीले, शहद और छोटी शहद की मक्खियां, तथा दीमक तो रुक्ष भालू को अति प्रिय हैं। किसी दिमौर को पाकर वह उसके ऊपरी हिस्से को तोड़ता है और दीमक के छत्ते तक पहुंच जाता है। दिमौर में कभी-कभी आधा घुस जाता है और शिकारी कभी-कभी इस स्थिति में उसे देख लेते हैं। छत्ते के छेद में फिर मुंह लगा कर वह इतनी जोर से सांस लेता है कि दो सौ गज तक वह आवाज सुनाई पड़ती है। इस प्रकार काफी गहराई तक के दीमक के अंडे-बच्चे मुंह में खिच आते हैं। गर्मियों के दिनों में रुक्ष भालू चट्टानों के नीचे घुरर घुरर करता सुनाई देता है।

गादुर (उड़न लोखरी) और ताड़-बिल्ली के समान खजूर और ताड़ के पेड़ों में बंधे घल्लों में से पेड़ पर चढ़ कर रुक्ष भालू ताड़ी खब पी लेता है और नशे में आकर झूमा करता है। रुक्ष भालू ईख का भी बड़ा शौकीन है और खेत को बहुत नुकसान पहुंचाता है। असली खुराक तो इसकी निरामिष ही है, पर अगर कोई लाश पड़ी मिल जाय, तब यह उसे खा जाता है। रुक्ष भालू के बारे में सैंडर्सन ने लिखा है कि उन्होंने जंगल में मरे जानवरों की हड्डियों से सांस खुरच कर खाते हुए उसे देखा है।

अन्य भालुओं के समान रुक्ष भालू की भी श्रवण शक्ति कमजोर होती है। हवा खींचने और गुरगुराने की आवाज के अतिरिक्त आतंकित होने पर वह विचित्र आवाज करता है। पेड़ों के नीचे फल खाते समय वह आपस में लड़ता भी है अन्यथा स्वभावतः रुक्ष भालू सीधा और शान्त जानवर है। रुक्ष भालू की श्रवण शक्ति की तरह दृष्टि भी तेज नहीं होती और आंखें चींद-चींद कर देखता है। पर घ्राण शक्ति इसकी बड़ी तेज होती है। इसके बच्चों को अगर कोई उठा ले जाय तो उनकी गन्ध पर वह मीलों चला जाता है। मादा एक समय में दो बच्चे देती है, पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उसके तीन बच्चे भी हो जाते हैं। मादा बच्चों को पीठ पर बिठा कर चलती है और जहां वह बेर आदि खाना शुरू करती है वहीं वे नीचे उतर पड़ते हैं। आतंकित होने पर वे भाग कर पीठ पर चढ़ जाते हैं। जब मां की पीठ पर एक ही बच्चे के लायक जगह रह जाती है तब दूसरा बाध्य होकर पैदल चलने लगता है।

रुक्ष भालू आपस में बड़े स्नेह से रहते हैं। यदि कोई बच्चा पकड़ा जाए तो खूब मजे से पल जाता है। जब कोई भालू घायल हो जाता है तो अपने साथी को यह समझकर पकड़ लेता है कि कहीं इसी ने तो नहीं मारा। घायल अवस्था में वह खूब चीखता चिल्लाता है। कभी-कभी घायल रुक्ष भालू आपस में लड़ने भी लगते हैं। यों तो रुक्ष भालू स्वभाव से डरपोक होता है, पर जब वह आक्रमण कर बैठता है तब नाखूनों और दांतों से भयंकर हमला करता है। खड़े होकर चोट करने के कारण आदमी के मुंह पर चोट आती है और चोट से कभी-कभी आदमी मर भी जाता है। यात्री या शिकारी की अकस्मात भेंट ही ऐसा करवाती है। भालू को सुनाई तो कम पड़ता ही है, दिखाई भी कम पड़ता है, अतः आतंकित होने पर वह आक्रमण कर बैठता है। लेखक का एक शिकारी मित्र जाड़ों में विन्ध्य पर्वत के एक मार्ग पर जा निकला। भाल एक ऊंची कतार पर बैठा धूप ले रहा था।

आशंका थी कि आगे बढ़ने पर भालू आक्रमण कर देता, पीछे हटने में भी डर था। वन्दूक में मुर्गियों के लिए नम्बर चार के छर्रे भी थे। हवा भालू की ओर से वह रही थी। शिकारी ने चुपचाप पीछे जाकर वैठ कर अपने दोनों पैरों का धक्का इतनी जोर से भालू में मारा कि 'भो भो' करता भालू नीचे सौ फीट खड्ड में गिर पड़ा और शिकारी आगे चला गया। बच्चों वाली मादा और एकाकी भालू अकारण ही आक्रमण कर वैठते हैं। कदाचित इसका कारण यह है कि भालू में समझ कम होती है और आगन्तुक को आक्रमणकारी समझ वैठते हैं। धारणा बिल्कुल गलत है कि रुक्ष भालू आदमी को पकड़ कर अपनी छाती से दाब कर मार देता है, बात यह है कि वह अपने पिछले पैरों पर खड़े होकर आक्रमण करता है और बड़े-बड़े नाखूनों के प्रहार करता है तब भालू के एक ही तमाचे या थाप से आदमी गिर पड़ता है।

रुक्ष भालू का शिकार या तो हांके से होता है या सबसे आसान तरीके से कि उसकी गुफा का पता लगा कर सूर्योदय से पहले वहां पहुंच कर गुफा पर आते हुए भालू को मार दिया जाता है।

• कूकुर-वंश (Family Canidae)

इस वंश में सब भेड़िये, सियार, लोमड़ी और कुत्ते हैं। इस वंश के जीवों में से कुत्ता एक ऐसा प्राणी है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य से घनिष्ठ है। कुत्ते की स्वामिभक्ति, लोमड़ी की मक्कारी, भेड़िए की खूंखारी और सियार का सयानापन सर्व विदित हैं। इस वंश के जीवों की थूथन लम्बी होती है तथा नख बाहर निकले होते हैं, जो बिल्ली के नखों के समान गद्दियों में नहीं छिप सकते।

चरखे और विल्लियों से कुत्ता वंश के जीवों के दांतों की वनावट भिन्न होती है। कुछ अपवादों को छोड़ कर इस वंश के दांतों की संख्या 42 होती है, जिनको इस प्रकार लिख सकते हैं :—

$\frac{3}{3}$ कृंतक दांत, $\frac{1}{1}$ कीले, $\frac{4}{4}$ दूध की डाढ़ें। दोनों जवड़ों के प्रत्येक ओर चार दूध की डाढ़ें होती हैं, पर भारतीय जंगली कुत्ते के नीचे के जवड़े में दो जोड़े डाढ़ों के होते हैं। लोमड़ी और भेड़िए की वाह्य रचना में काफी भेद होता है, पर इस वाह्य भेद के होने पर भी वे एक ही जाति के जीव हैं।

कुत्ता और विल्ली वंश के जीवों में एक वड़ा भेद यह है कि कुत्ता वंश के जीव टोली में मिल कर शिकार खेलते हैं। इस वंश के जीवों की घ्राण शक्ति वड़ी तीव्र होती है, नखों की वनावट से कुत्ता वंश पेड़ पर नहीं चढ़ सकता। जीभ भी इस वंश के जीवों की खुरखुरी न होकर मुलायम होती है। पैरों के तलवे मुलायम होते हैं।

कुत्ता वंश के जीवों की खुराक में मांस के अतिरिक्त अन्य अनेक चीजें भी हैं। इस वंश के वच्चों की आंखें जन्म के समय वन्द होती हैं और वे सब नालों में भिटों में अपने लिए जगह बना कर रहते हैं।

19--भेड़िया

भेड़िया कुत्ते के वंश का सबसे बड़ा जानवर है। उसकी भूख और खूंखारी विश्व-विदित है। पर वह बड़े ही जीवट का प्राणी है और थकावट तो वह जानता ही नहीं। भूखा-प्यासा वह मीलों दौड़ता चला जाता है और भूख तो कभी उसकी बुझती ही नहीं। भारतीय भेड़िया शीत प्रधान देशों के भेड़िए से छोटा होता है, पर खूंखारी में दुनिया भर के भेड़िए एक से हैं। हमारे देश में उसकी संख्या पहले से बहुत कम भी हो गई है। स्वभाव से



भेड़िया

वह झुंड में रहनेवाला जानवर है। लेखक ने इनकी एक बार बड़ी से बड़ी ग्यारह की टोली देखी है। हमारे देश में भेड़िया हिमालय की तलहटी से लगाकर सम्पूर्ण भाग में पाया जाता है। केवल बंगाल के दक्षिणी भाग में कम होता है और मलावार तट पर वह बिल्कुल नहीं पाया जाता।

भेड़िए की मादा किसी गुफा या भिटे में अक्तूबर, नवम्बर या दिसम्बर के महीने में 3 से 8 तक बच्चे देती है। भेड़िए का समूर बहुत छोटा होता है और उसमें ऊन नहीं होती। समूर का रंग बादामी झलक लिए सिलेटी होता है, जो कभी-कभी पीठ पर अपेक्षाकृत अधिक काला हो जाता है। भारतीय भेड़िए का रंग अन्य देशों के भेड़िए की अपेक्षा अधिक मटमैला सिलेटी होता है। पूंछ को छोड़ कर नाक से पूंछ की जड़ तक भेड़िए की लम्बाई 3 फुट होती है। पूंछ भूरी, डेढ़ फुट लम्बी झबरी, कुत्ते जैसी होती है, सियार की सी नहीं होती। पेट मटमैला सफेद होता है। बच्चे कलछौंह भरे होते हैं, जिनकी छाती पर सफेद दाग़ होता है। अगर बच्चों को बहुत छोटा पकड़ लिया जाए तो वे पाले जा सकते हैं।

इसकी मांद किसी चट्टान की गुफा में या भिटा किसी नाले के किसी अकेले स्थान में मार्ग से हट कर होती है। घनी झाड़ियों में भी यह अपने रहने के लिए छिपाव का स्थान बना लेता है और अपना भिटा अपने आप खोद लेता है। बड़े पालतू कुत्ते से भेड़िए का जोड़ा मिल जाता है, जिससे पैदा हुए बच्चे काफी मजबूत तथा खूंखार होते हैं। अल्सेशियन कुत्तों की नस्ल भेड़िए से ही निकाली गई है।

भेड़िए शिकार की खातिर दिन और रात दोनों में घूमते हैं, पर रात में अधिक खूंखार हो जाते हैं। हिरन, गाय के बच्चे, वकरी और भेड़, भेड़िए की खास खुराक है, पर अधिक भूखे होने पर वे चूहे, मेंढक आदि सब कुछ खा जाते हैं तथा आदमी पर भी हमला करने से नहीं चूकते। भारतवर्ष में 8–10 भेड़िए मिल कर नीलगाय तक पर आक्रमण कर देते हैं और कैनाडा में तो एक भेड़िया बड़े रेनडियर तक को मार डालता है। भेड़िया चिड़ियों तक को खा जाता है।

भेड़िया कुत्ते की तरह भोंकता नहीं है और न गीदड़ की तरह वह आवाज करता है। कई भेड़िए मिलकर रात में 'ऊहू' 'ऊहू' की पतली आवाज करते हैं। डा० मेरियर ने लिखा है कि अकेला भेड़िया भी ऐसी आवाज करता है मानो बहुत से भेड़िए वोल रहे हों। कभी-कभी इसीलिए अकेले यात्री भेड़िए की आवाज सुन कर पेड़ पर चढ़ कर रात बिता देते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि भूखे भेड़ियों का झुंड पीछा कर रहा है, पर वास्तविकता यह होती है कि एक ही भेड़िया मील भर दूर विभिन्न आवाजें करता रहता है।

मि० इलियर ने एक स्थल पर भारतीय भेड़िए के वारे में लिखा है, "मैंने कई भेड़ियों को हिरनों के एक झुंड को चारों ओर से घेरते पाया। भेड़ियों में से कई एक विभिन्न स्थानों में छिप गए। हिरनों को उनके छिपने का पता नहीं था और चरते-चरते जब हिरन छिपे हुए आक्रमणकारियों के निकट आए तो उनमें से एक को उन्होंने पकड़ लिया। एक अवसर पर तीन भेड़ियों ने चिकारे हिरनों का पीछा किया और नाले के पार दो अन्य भेड़िए छिपे बैठे थे, जैसे ही चिकारे वहां से निकले तो उनमें से एक मादा को उन्होंने पकड़ लिया।" स्वयं लेखक ने एक वार अपने गांव से दो मील की दूरी पर दो भेड़ियों को काले हिरन का शिकार खेलते देखा है। लेखक काले हिरन की तलाश में था। दूरबीन से काला हिरन दिखाई पड़ा और साथ में दो सौ गज की दूरी पर दो भेड़ियों को हिरन की ताक लगाते पाया तो छिपकर फिर सारा दृश्य देखा। एक भेड़िए ने—शायद मादा ने—धूल में छोटा गड्ढा वनाया, जिसमें वह छिपकर बैठ गई। उसका सिर बाहर था, जिसका रंग आसपास की मिट्टी में बिल्कुल मिल गया, तब नर भेड़िया लेखक की ओर को चक्कर काट कर हिरन के दूसरी ओर जाकर उसकी तरफ बढ़ा। बचाव की खातिर हिरन छिपी। मादा भेड़िया की ओर ही दुलकी चाल से चला और जैसे ही हिरन उसकी मार की पहुंच में आ गया, मादा भेड़िया ने एकदम झपट्टा मार कर हिरन की गरदन में दांत गड़ा दिए और उसे गिरा दिया। बात की बात में दोनों ने हिरन को फाड़ डाला और लगभग आधा मांस वे दोनों खा गए। खरगोश तथा गीदड़ को भेड़िए, दौड़ा-दौड़ा कर, थका कर पकड़ लेते हैं।

भेड़िया थकना तो जानता ही नहीं है और न उसकी भूख ही कभी बुझती है। भूख में 20–20 मील पैदल चले जाना उसके लिए आसान काम है। सबसे दक्ष तो वह भेड़ पकड़ने में होता है। वकरी को जब भेड़िया पकड़ता है तब वकरी की सिट्टी गुम हो

जाती है और वह बोल भी नहीं पाती। गडरिए इसीलिए भेड़ बकरियों में एक गाय रखते हैं ताकि जब भेड़िया आक्रमण करे तो गाय उनकी रक्षा कर सके। फर्रुखाबाद जिले में एक ढाक के जंगल के किनारे लेखक हिरन के शिकार के लिए बैठा था। दो सौ गज पर एक गडरिए की बकरियां, एक भैंस और एक गाय चर रहे थे। जंगल से निकल एक भेड़िए ने लपक कर भैंस के करीबवाली एक बकरी की गरदन को पकड़ लिया। भैंस ने सिर उठाया, देखा और कुछ नहीं कहा, लेकिन जैसे ही गाय की नजर भेड़िए पर पड़ी, उसने पूंछ उठाकर भेड़िए पर हमला किया और सींगों से उठाकर भेड़िए को दूर फेंक दिया। कंपकंपाता भेड़िया भाग खड़ा हुआ।

कभी-कभी भेड़िया आदमी के बच्चों को उठा ले जाता है और अपने बच्चों के साथ पालता है, पर ऐसे पाले हुए बच्चे जब पकड़ लिए जाते हैं तो जानवरों जैसा ही व्यवहार करते हैं। ये बच्चे बहुत दिनों बाद कपड़ा पहनना सीखते हैं और उनका मानसिक विकास तो होता ही नहीं है।

भेड़िया जितना खूंखार होता है, उतना ही चालाक, शक्की और धूर्त भी होता है। इक्के-दुक्के आदमी के पीछे जब भेड़िए पड़ जाते हैं तो कभी-कभी रस्सी घसीट कर चलने या छाता घसीट कर चलने से आदमी बच जाता है, क्योंकि संदिग्ध चीज को पूरी तरह समझे बिना भेड़िया आक्रमण नहीं करता।

गांव में लोग बहुत ऊंचे घने कांटों का अभेद्य बाड़ा बनाते हैं, पर भेड़िया कभी कांटों के ऊपर भी चढ़ कर बाड़े में घुसकर भेड़ों को मार जाता है। कच्ची दीवार के घेरे में अगर भेड़ें बंद होती हैं और भीतर से बाहर जाने के लिए तंग मोरी होती है तो भेड़िया पंजों से मोरी को खोद कर चौड़ी कर लेता है और भीतर घुस जाता है। भेड़िए की घ्राण शक्ति भी बड़ी प्रबल होती है, इसलिए जिस खेत में होकर भेड़ निकल जाती है उसी खेत से भेड़िया गंध लेता हुआ भेड़ों के बाड़े तक आ जाता है। कुत्तों से तो भेड़िया डरता ही नहीं है, सदा उनको झांसा देकर गांव की भेड़ों और बकरियों की चोरी करता रहता है।

लेखक ने बीसियों भेड़ियों को मार कर उनका पेट चिरवा कर देखा, पर किसी भी भेड़िए के पेट में उसे कभी कुछ नहीं मिला। पेट सदा खाली ही मिले। न जाने उनको कितनी भूख होती है, जो कभी नहीं बुझती। हां, दिल और हड्डियों की बनावट से उसकी सहन-शक्ति और दौड़ने की ताकत का पता चलता है। पांडवों में भीम की खुराक अधिक थी, भूख भी उन्हें बहुत लगती थी और पहलवान भी बड़े अच्छे थे, इसलिए उन्हें वृकोदर—भेड़िए के से पेट वाला—कहते थे।

रूस में तो वहां की महा क्रांति तक भेड़ियों की दो-दो तीन-तीन सौ की टोलियां घूमती थीं और जिस गांव पर वे आक्रमण करती थीं, उस गांव में बंदूकें, आदि काम में लाने पर भी वे समूचे गांव को नष्ट कर देती थीं। सोवियत रूस ने हवाई जहाजों से भेड़ियों को मार कर उन्हें बहुत कम कर दिया है और वैसा कोई खतरा अब वहां नहीं है। भेड़िए की खूंखारी की अनेक सच्ची घटनाएं हैं। सबसे विचित्र बात तो यह है कि भेड़िया भेड़िए को भी खा जाता है।

एक बार शिवाजी का एक जनरल अपने तीन-चार आदमियों के साथ युद्ध क्षेत्र से

लौट रहा था। रात होने पर एक नाले के किनारे अपने आदमियों समेत सो गया। थोड़ी देर बाद 10-12 भेड़ियों की बोली कुछ दूर पर सुनाई पड़ी। लकड़ियां तो उन लोगों ने पहले ही बटोर कर रख ही ली थीं, अतः भेड़ियों की बोली सुनकर उन्होंने फौरन आग जला दी। इतने ही में भेड़ियों ने आ घेरा। आदमियों ने जलती लकड़ियों का वृत्त अपने चारों ओर बनाया और आग के घेरे के बाहर भेड़िए गुर्राने और भर्राने लगे। लकड़ियां तो घंटे दो घंटे ही जल सकती थीं, फिर क्या होता। सौ गज की दूरी पर आम के पेड़ थे। जलती लकड़ियों के घेरे को पेड़ों की ओर आदमी बढ़ाते गए और भेड़िए गुर्राते हुए घूम-घूम कर दांव लगाते रहे। इतने भेड़ियों से भुगतना आसान काम न था। बड़े परिश्रम से जलते वृत्त को पेड़ के पास तक बढ़ाया गया और बड़ी चालाकी तथा कठिनाई से रात के समय वे लोग पेड़ पर चढ़ सके। भेड़िए भी नीचे धरना देकर बैठ गए। प्रातःकाल हो गया पर भेड़िए घात लगाए बैठे ही रहे। तब जनरल ने अपने साफे का फंदा बनाया और जमीन से 8–10 फुट ऊंची शाख पर उतर कर फंदा नीचे लटकाया। एक भूखे तथा क्रोधित भेड़िए ने ज्यों ही साफे पर मुंह मारने की चेष्टा की कि गले में फंदा डाल कर जनरल ने भेड़िए को शाख से लटका कर फांसी दे दी। जब भेड़िया मर गया, तब उसे ऊपर खींच कर शाखा पर रख लिया। इसी प्रकार फंदों में फंसा-फंसा कर शाखा पर लटका-लटका कर जनरल ने बड़ी चतुराई और शक्ति से कई भेड़िए मार कर इकट्ठे कर लिए। फिर उन सबको एकदम नीचे गिरा दिया। भूखे भेड़िए उन मरे भेड़िए को खाने में जुट गए। तब जनरल और उनके साथी पेड़ की दूसरी ओर से आंख बचाकर उतरे और भाग गए।

गांवों के समीपवर्ती जंगलों, नालों, गुफाओं में जब भेड़िए बढ़ जाते हैं तो आदमी के छोटे बच्चों को भी उनसे बड़ा खतरा रहता है।

20--सियार

सियार या गीदड़ भारतवर्ष का ही नहीं वरन विश्व के सभी देशों का चिर-परिचित जानवर है। लोगों की आम धारणा है कि सियार बड़ा कायर होता है और



सियार

इसीलिए लोग दब्बू तथा कमजोर व्यक्ति को आवेश में आकर गीदड़ कह देते हैं। पर वास्तविक बात यह है कि सियार बड़ा ही चालाक होता है और खामख्वाह का झगड़ा मोल न लेकर बचने का प्रयत्न करता है। पर चालाकी और समझदारी में वह किसी अन्य जानवर से कम नहीं है। लुक-छिपकर सड़ी चीजों के प्राप्त करने और मांस की गंध लेने में वह अद्वितीय है। घायल जानवर का पीछा करते हुए हमने उसे देखा है। हिरन को गोली लगी, उसकी आतें बाहर निकलीं, या हिरन को कमजोरी आई, तो फिर मौसम चाहे कैसा ही हो, गीदड़ हिरन पर आक्रमण करके उसे गिरा लेता है। दो चार बार लेखक ने देखा कि बड़े घायल नर नीलगाय को चार गीदड़ों ने मिल कर गिरा लिया। भागते नील-गाय के हृदय के बजाय पेट में गोली लग गई और काफी चोट आई। दमदार नर ने दुलकी गति से दौड़ना शुरू किया। दो सौ गज आगे बाग के सहारे आराम की खातिर नर नील-गाय रुका कि पास की झाड़ी से चार सियार आ गए। दो उसके आगे हो गए और दो घाव की ओर हो गए। आगे वाले एक सियार ने नीलगाय के मुंह पर आक्रमण करने का झांसा दिया और नीलगाय ने जैसे ही सर आगे को किया वैसे ही बगल के एक सियार ने पेट के घाव में कस कर मुंह मारा। मांस नोच कर सियार हट गया और नीलगाय ने जैसे ही बगल की ओर को मुंह किया इतने में ही आगे वाले सियार ने नीलगाय के कान पर मुंह मारा। तमतमा कर नीलगाय ने जब फिर आगे मुंह किया तो बगल वाले सियार ने फिर घाव पर मुंह मारा। थोड़ी देर तक ये दावपेंच चलते रहे और फिर एक सियार नीलगाय की उस बगल की ओर हो गया जिधर कोई घाव न था। खाली बगल में भी एक सियार ने मुंह मारना शुरू किया। तेजी से भाग जाने का दम नीलगाय में न था। परेशानी में नीलगाय ने लातें फेंकना शुरू किया। दोनों बगलों के घाव बड़े होने लगे और पौन घंटे की इस प्रकार की लड़ाई में नीलगाय गिर गया तब सियारों ने डट कर मांस खाया। जंगल में मरणासन्न एक बैल को भी लेखक ने सियारों द्वारा इसी प्रकार खाते देखा है।

सियार देशव्यापी जानवर है। मैदान, जंगल सब जगह यह पाया जाता है। पहाड़ी स्थान और खुले मैदानों में तो यह रहता ही है, देहातों के आस-पास इसको देख लेना एक साधारण सी बात है। हिमालय पर वे 3–4 हजार फुट से अधिक ऊंचाई पर नहीं मिलते। सियार की लम्बाई पूंछ को छोड़कर ढाई फुट होती है। झबरी सी पूंछ की लम्बाई अलग है। सियार का रंग भूरापन लिए ललछौंह या कत्थई सा होता है, जो पीठ पर कुछ काला सा हो जाता है। इसके नीचे का भाग कुछ सफेदपन पर हल्का-सा होता है। सिर के बाल काले और पूंछ के बाल खैरे होते हैं।

गांव के आसपास जंगलों और पठारों में सियार जोड़े में प्राय: देखे जाते हैं, रात में वे छोटी टोली में भी हो जाते हैं। दिन में सियार झाड़ियों, घास तथा खेतों में छिपे रहना पसन्द करते हैं, पर जब मौका लग जाता है तो दिन में भी शिकार करते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते दिखाई देते हैं। दोपहर को जंगल की घनी झाड़ियों में मोर तथा अन्य चिड़ियों का शिकार करते हैं। फिर भी भोजन की तलाश सियार रात में ही अधिक करते हैं। सबसे विकट बात यह है कि सियार सर्वभक्षी है। मुर्दार सड़ी गली चीजें तो वह खाता ही है, चिड़ियां, बतखें, गोह और धामिन सांप तक नहीं छोड़ता। इसके अतिरिक्त सियार किसान के लिए भी एक बवालेजान है। मक्का, खरबूजा, आम

और पके कटहल भी वह नहीं छोड़ता। ईख भी वह बड़े स्वाद से खाता है। कभी-कभी कड़े गन्ने को पकड़ने में जीभ फंस जाती है, तो सियार भूखों मर जाता है। जो कुछ भी हो, फसल का नुकसान करने में वह कभी नहीं चूकता। गन्ना खाने का तरीका सियार का यह है कि वह गन्ने को दांतों में दबा कर रस चूसता है पर दांतों में दबाकर जितना रस मुंह में आ जाता है उतना पीकर वाकी गन्ने को छोड़ देता है। दक्षिण भारत में तो वाइनाड जिले में कहवे के पके बीजों को भी वह खा जाता है। जंगली बेरों पर तो सियार जान देता है, इसलिए सियार के लिए कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता। नदी किनारे वह मछलियां भी पकड़ता है और अपना शिकार पकड़ने में बड़े दुस्साहस तथा चालाकी से काम लेता है। दुस्साहसी तो सियार इतना होता है कि जब कभी वह 8–10 की टोली में मक्का के खेत में घुसा हो और खेत का रखवाला उनको मारने के लिए टांड से नीचे उतरे तो कभी-कभी रखवाले पर आक्रमण कर देता है।

जंगल में सियार, शेर और बाघ से दूर पीछे-पीछे चलते हैं, इस आशा में कि शेर या बाघ द्वारा मारे शिकार में से उन्हें अवशेष भाग मिलेगा। जब किसी बड़े पशु को मार कर शेर खाने लगता है तब सियार दूर बैठकर बड़ी शांति से प्रतीक्षा करते हैं और शेर के चले जाने पर उसकी जूठन पर दावत उड़ाते हैं। गांव के आसपास आकर सियार मुर्दार और सड़ी-गली चीजें तो खाते ही हैं—मुरगी आदि भी चुरा ले जाते हैं। झाड़ी में कहीं शहद की मक्खियों का छत्ता हो तो सियार उसे भी नहीं छोड़ता। नदी के किनारे केंकडा पकड़ने का ढंग भी सियार का बड़ा मनोरंजक होता है। केंकड़ा नदी-किनारे अपना बिल गोलाकार तनिक उठा हुआ बनाता है। केंकड़े की अगली टांगों के अगले हिस्से पकड़ने के लिए बड़े पैंने होते हैं। अगर गीदड़ उसमें नाक डाले तो खतरा यह होता है कि केंकड़ा अपने टेंगरे (mandible) से सियार की नाक न पकड़ ले। चिमटे जैसे तेज टेंगरे से नाक कतरी भी जा सकती है। सियार अपनी पूंछ को ब्रुश की भांति केंकड़े के बिल पर चलाता है। दो चार बाल केंकड़े के बिल में चले जाते हैं। केंकड़ा पूंछ को पकड़ता है तो गीदड़ एकदम पूंछ खींच कर केंकड़ा बिल से निकाल लेता है और मार कर खा जाता है। लेखक ने सियार को कई बार धामिन सांप मारते देखा है, पर काला सांप मारते हुए देखने का अवसर उसे नहीं मिला। एक बार तो सियार ने भागती धामिन का आगे से मुंह पकड़ लिया। धामिन ने उसकी टांगें जकड़ने की कोशिश की पर सियार ने इतना मौका धामिन को नहीं दिया। फन कुचल दिया और बीच से उसे खाना शुरू कर दिया। पीछा करके सियार गोह को भी पकड़ता है और केवल कुछ अंश खाकर ही उसे छोड़ देता है। नदी किनारे बालू पर सियार कछुए और मगर के अंडों को खाता है। यह बात ठीक नहीं है कि सियार उन अंडों को सूंघ कर निकालता है। एक मास के लगातार निरीक्षण और परीक्षण के बाद लेखक इस नतीजे पर आया कि सियार उन अंडों को यों ही अललटप्पू ढंग से तलाश करता है। सियार द्वारा नदी की रेतिया पर कछुओं के अंडे तलाश करने की विधि से कछुओं के अंडे तलाश करने का एक निश्चित ढंग ही लेखक ने निकाल लिया। सियार जहां तहां अनुमान से खोद कर अंडे निकालता है तो कहीं निकल आते हैं, कहीं नहीं। कछुआ गीली बालू में अंडे देता है और वह जगह कुछ नीची तथा गोलाकार हो जाती है। चार पांच इंच नीचे हाथ डालने पर पोली जमीन आ जाती है और गीले गरम बालू में

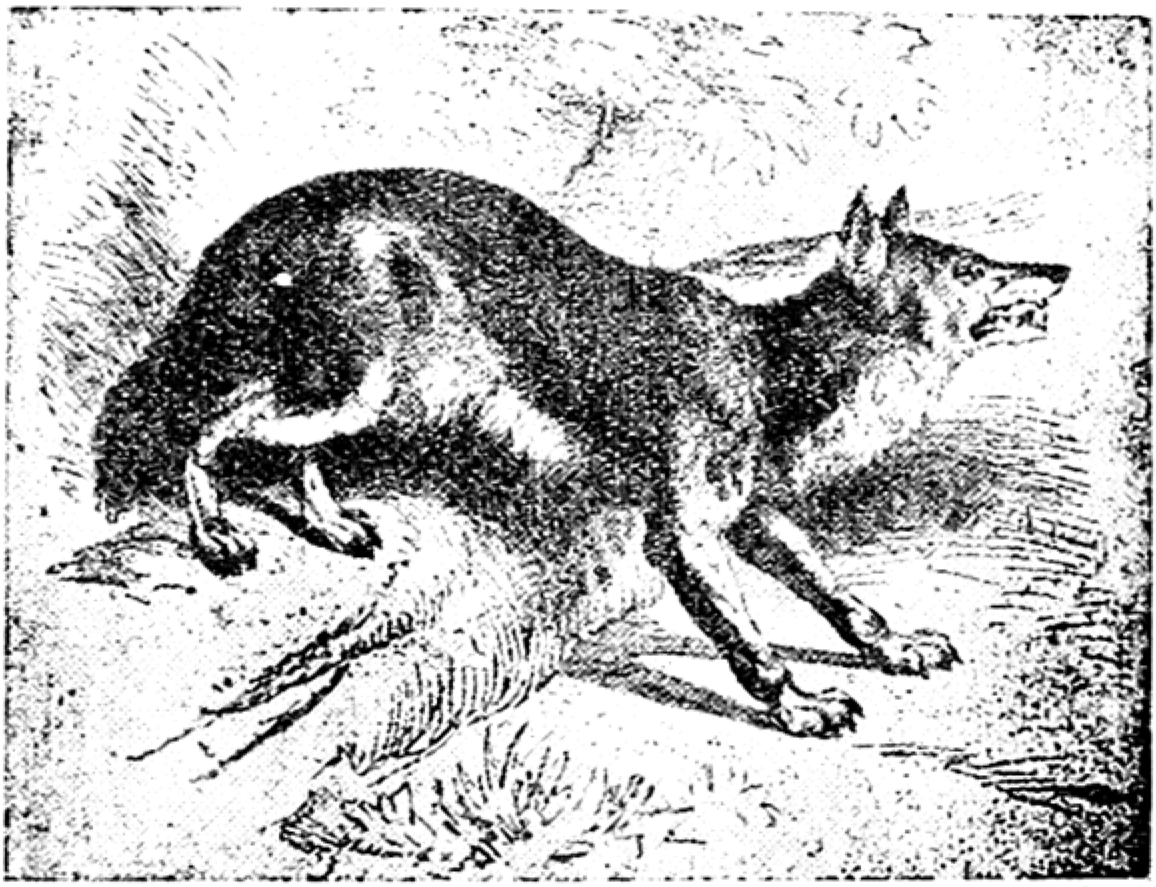
अंडे मिल जाते हैं। यदि घ्राणशक्ति से सियार अंडे खोज लिया करता तो कछुओं का तो अंत ही हो गया होता। वैसे सियार की घ्राण शक्ति काफी तीव्र होती है और मुर्दा पशु को काफी गहरा गाड़ने पर भी उसकी सड़ांध से सियार आ जाता है और खोदने का प्रयत्न करता है।

सियार की ढिठाई भी प्रसिद्ध है। गांवों के अति निकट आकर सड़ी गली चीजें देखते-देखते खा जाता है। भगाते-भगाते भी खेत से कूद-कूद मक्का के भुट्टे तोड़ कर ले भागता है। वह रखवाले की निगाह चूकते ही आ धमकता है।

सियार के बोलने का एक खास समय होता है और वह विशेष परिस्थितियों में भी बोलता है। शाम पड़ते ही एक सियार आकाश की ओर अपनी थूथन तुरही के समान ऊपर उठा कर 'हूए' की आवाज लगाता है। बस जितने भी सियार आसपास उसकी आवाज सुनते हैं सब मुंह उठा कर जल्दी जल्दी 'हुएऽ' 'हूएऽ' की आवाज करने लगते हैं। मक्के के भुट्टे के खेत में या तो उल्लास में या उपहास में सियार खूब बोलते हैं। अकेला सियार भी एक आतंक सूचक आवाज देता है जो 'हूएऽऽ' की आवाज से भिन्न होती है और 'हाउ' की सी होती है। सियार की आवाज किस दिशा में हुई है और किस प्रहर में हुई है—से अब भी लोग शकुन और अपशकुन का अनुमान लगाते हैं। ठग लोग तो सियार के मार्ग काटने और उसके बोलने के शकुन को बेहद बुरा मानते थे। ठगों में यह बात प्रचलित थी कि 'रात को बोले तीतुरा, दिन कूं बोले स्यार; तजि चलिये का देसरा, नहि परै अचानक धार'। सियार जितना भेड़िए से डरता है उतना शेर बाघ से भी नहीं। शेर-बाघ की मार से तो वह दूर रह कर पीछे-पीछे चला जाता है, पर भेड़िया सियार को मार कर खा जाता है। भेड़िया द्वारा पीछा किए जाने पर चालाक सियार आदमियों की ओर भागता है, क्योंकि वह जानता है कि भेड़िया आदमियों की ओर नहीं आएगा। एक बार भेड़िया एक नाले में जा रहा था, सियार ने उसे दूर से देख लिया तो झट टांगें ऊंची करके वह लेट गया और भेड़िए को अपनी टांगों से लकड़ी होने का धोखा दे दिया। पर सियार लड़ता भी खूब है। अगर एक सियार कई कुत्तों में फंस गया हो तो उसकी आवाज पर कई अन्य सियार आकर उसकी मदद करते हैं और कुत्तों से लड़ते हैं।

जब सियार पागल हो जाता है तब वह बवालेजान ही बन जाता है। कभी-कभी पागलपन में वह एक ओर से काटना शुरू करता है और एक रात में 50–50 आदमी या जानवरों को काट लेता है। पागल सियार पानी से बहुत डरता है और पागलपन की हालत में भूखा प्यासा दांत किटकिटाता हुआ भागता फिरता है, तथापि जो भी चीज सामने आती है उसे काटता भंभोड़ता चला जाता है। पागल सियार से कुत्ते भी डरते हैं। अगर पागल सियार के काटने पर इंजेक्शन लगवा कर फौरन इलाज न किया जाए तो काटे हुए व्यक्ति की बहुत बुरी तरह मृत्यु हो जाती है। पागलपन का असर हो जाने पर कोई भी दवा काम नहीं करती।

21–जंगली कुत्ता



भारतीय जंगली कुत्ता भेड़िये और गीदड़ से इन अर्थों में विशेषता रखता है कि इसकी डाढ़ें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। इसकी बनावट भी भेड़ियों की अपेक्षा गीदड़ से अधिक मिलती है। यह बात इसकी अपेक्षाकृत छोटी टांगों से स्पष्ट है। हिमालय के पास पाए जाने वाले जंगली कुत्ते के तो ऊनी समूर भी अधिक होता है। जंगली कुत्ते के ऊपरी भाग का रंग लाली मायल बादामी होता है, जिसमें कभी-कभी सिलेटी झलक रहती है। पूंछ का सिरा काले रंग का होता है, पर कभी-कभी अंतिम छोर सफेद भी होता है। जंगली कुत्ते के छोटे बच्चों का रंग भूरा सा होता है।

इसकी लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक 37½ इंच होती है और बिना बालों की पूंछ 8 इंच तथा बालों सहित पूंछ की लम्बाई 14½ इंच होती है। जंगली कुत्ता आसानी से हर एक को जंगलों में दिखाई नहीं देता, पर चिड़ियाघरों में इसे देख कर उसकी चालाकी, मक्कारी और शिकार करने के ढंग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

भारतीय जंगली कुत्ता हिमालय के वनों में कश्मीर से लेकर असम तक सब जगह पाया जाता है। हिमालय के दक्षिण में, भारत के सब बड़े जंगलों में वह रहता है। जंगली कुत्ते की मादा प्रायः शीतकाल में दो या चार या छः तक बच्चे देती है। यह आबादी से दूर रहता है और आदमियों पर आक्रमण नहीं करता। भेड़िया और गीदड़ तो पल जाते हैं, पर जंगली कुत्ता नहीं पलता, इससे यह स्पष्ट है कि पालतू कुत्ते और जंगली कुत्तों के पूर्वज एक ही नहीं थे।

ये कुत्ते टोली में रहना पसंद करते हैं। इनकी बड़ी भारी शक्ति गिरोह बंदी ही है।

दस-दस, बारह-बारह, पंद्रह-बीस तक की इनकी टोली होती है। यह टोली जिस जानवर के पीछे पड़ जाती है उसे बिना मारे नहीं छोड़ती। आगे पीछे से जानवर को घेर कर ये कुत्ते उसे भगाना शुरू कर देते हैं। थक कर जानवर पानी पीने को भागता है और जैसे ही पानी पीना शुरू करता है, ये चिपट पड़ते हैं। उस जानवर को न खाने देते हैं न आराम करने देते हैं, थका कर बेदम कर देते हैं। इतना सा प्राणी जंगली जानवरों के लिए पूरा शैतान है। शैतान से भी एक बार हिरन, चीतल और सांभर भले ही बच जाएं, पर जंगली कुत्तों के समूह से वे नहीं बच सकते। नील गाय और सांभर कभी-कभी अपने बचाव के लिए पानी में घुस जाते हैं, पर इस शैतानी समूह से वहां भी उन बेचारों का बचाव नहीं होता। लात या सींगों से दो चार कुत्ते मर भी जाएं, तब भी उनको चिन्ता कोई नहीं होती। और तो और जंगली कुत्तों से शेर और बाघ तक डरते हैं तथा जिस जंगल में ये कुत्ते पहुंच जाते हैं, वहां से वे कूच कर जाते हैं।

साधारणतया जंगली कुत्ते पालतू जानवरों पर आक्रमण नहीं करते, पर कभी-कभी भैंस जैसे बड़े जानवरों को घेर कर वे मार लेते हैं। आगे से आक्रमण करते हैं, पीछे से घेरते हैं। गले में कीलें चुभा देते हैं और नाक से चिपट रहते हैं। तब बाकी कुत्ते पीछे से उसे फाड़ डालते हैं।

शेर एक तो स्वयं ही इनसे बचता है, दूसरे जंगली कुत्ते भी शेर को तरह देते हैं, पर अगर कभी शेर के मारे शिकार पर ये कुत्ते पहुंच गए और शेर ने झपट्टा मार कर दो एक कुत्ते मार दिए तो शेर की मौत का वारंट ही कट जाता है। ये शेर को घेर लेते हैं और उसे सोने तथा खाने तक नहीं देते। जंगली कुत्ते जानते हैं कि शेर की एक थाप से एक कुत्ते का कचूमर निकल सकता है, अतः वे उस पर एकदम हमला नहीं करते। बस घेरे रहते हैं और जब शेर खाने लगता है, तब पीछे से मुंह मारते हैं। जो-कुछ भी हो, ये शेर को खाना नहीं खाने देते। क्रोधित शेर चल पड़ता है, पर कुत्ते उसका पीछा नहीं छोड़ते— आगे-पीछे, अगल-बगल चलते रहते हैं। शेर चिढ़ कर भागता है, तब ये भी चाल बढ़ा देते हैं। शेर जब पानी में घुसने लगता है, तब ये पीछे से पूंछ और बगल में मुंह मारते हैं। क्रोधित शेर गुर्रा कर पीछे को लपकता है, तो ये उसकी मार से दूर भाग खड़े होते हैं। फिर शेर जब पानी में मुंह लगाता है तब जंगली कुत्ते पीछे से मुंह मारते हैं। घबरा कर शेर दुलकी चाल से जाकर साया में बैठना चाहता है, तब भी कुत्ते उसे चैन नहीं लेने देते। शेर को जरा झपकी लगी नहीं कि कुत्तों ने फौरन पूंछ पर झपट्टा मारना शुरू किया। बिल्ली की जाति वालों का सबसे बड़ा अपमान है उनकी पूंछ खींचना। ये कुत्ते मिलकर शेर का अपमान करते हैं। मजा यह है कि खुद तो कुत्ते बारी-बारी से पानी पी आते हैं, आराम कर लेते हैं, खा-पी लेते हैं, पर शेर पर धरना जारी ही रखते हैं। परेशान, घबराया हुआ शेर भाग खड़ा होता है, बस भागते-भागते उसके पैरों की चर्बी पिघल जाती है। तब शेर बेचैन होकर बैठ जाता है, पर जंगली कुत्ते रूपी यमदूत अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। इस तरह कोई भी प्राणी कैसे जीवित रह सकता है, शेर भी पागल सा हो जाता है। जब शेर भूख प्यास और थकावट से अधमरा हो जाता है, तब कुत्ते इस पर चिपट पड़ते हैं। कोई पेट फाड़ता है, कोई कहीं काटता है तो कोई कहीं। दो चार कुत्ते मारे भी जाते हैं, पर इस बात की तो जंगली कुत्तों को चिन्ता ही नहीं है।

वे सब तो मिल कर शेर को मार ही लेते हैं। इसी से समझ लेना चाहिए कि नीलगाय, सांभर, और चीतल की क्या बिसात, जो इन जंगली कुत्तों के शैतानी समूह से बच सके। जिस जंगल में ये घुस जाते हैं वह जंगल अन्य जंगली जानवरों से सुनसान-सा हो जाता है।

जंगली कुत्ता मारने के लिए सरकार की ओर से काफी इनाम है। जंगली जानवरों के दुश्मन नम्बर एक इस जंगली कुत्ते के मिट जाने से लाभ ही है, हानि नहीं।

लोगों का भ्रम है कि भारतीय जंगली कुत्ता तेज दौड़ने और उछलने में कुशल नहीं है, पर ऐसी बात नहीं है, उसकी गति ही धीमी प्रतीत होती है, क्योंकि भारतीय जंगली कुत्ते की चाल की गति एक सी ही रहती है तथापि वह बहुत कम थकता है। वह लम्बी दुलकी चाल और पोहया तथा सरपट दौड़ने में कुशल नहीं है। वह एक बंधी गति से दौड़ता है और सब बातें मिला कर सियार की अपेक्षा कम फुर्तीला होता है।

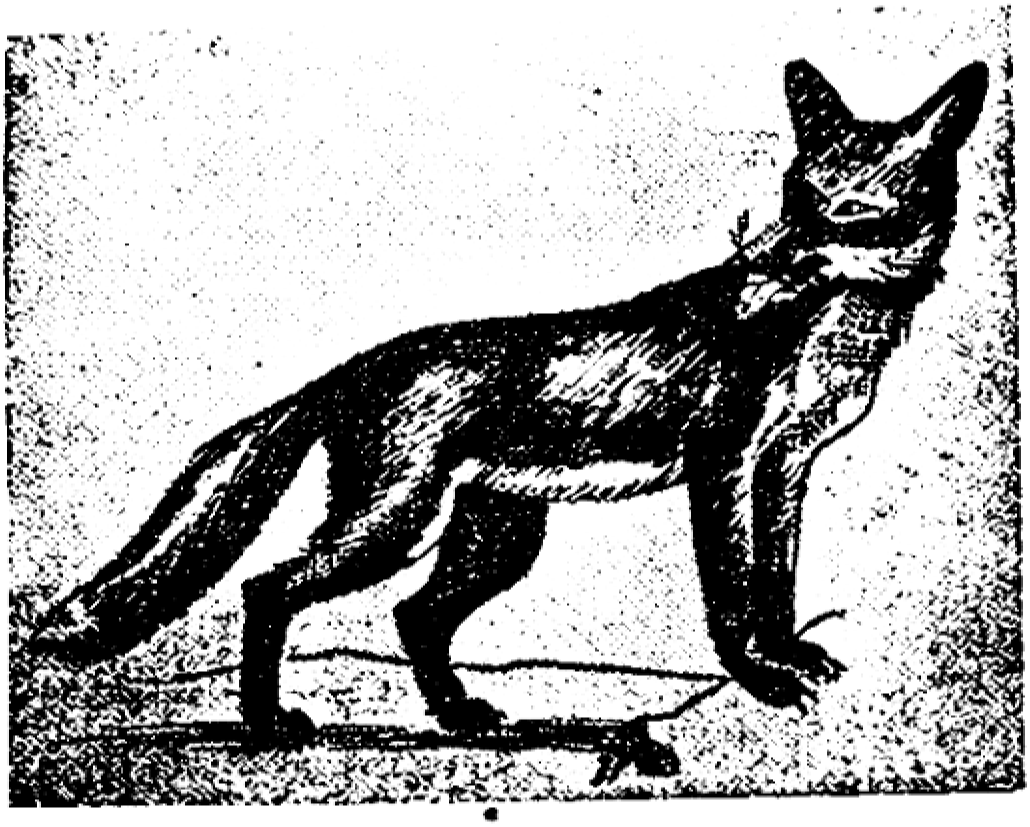
भारतीय जंगली कुत्तों के बारे में एक भ्रम यह है कि ये जिसका शिकार खेलते हैं, उसकी आंखों पर पेशाब कर देते हैं। यह बात बिल्कुल गलत है। इसी तरह की हरकत एक अमरीकी जानवर स्कंक अपने बचाव की खातिर करता है, यानी वह एक तरल बदबूदार पदार्थ फेंकता है। जंगली कुत्तों का तो समूह होता है और वे बार-बार टांगें उठाकर झाड़ियों पर पेशाब करते हैं। संभवत: इनसे बचने वाला जानवर झाड़ी से टकराता है तब पेशाब की बूंदें उसकी आंखों में पड़ जाती होंगी।

मार्च सन् 1925 में लेखक ने मध्याह्न के दो बजे के लगभग ऋषीकेश और डोईवाला के बीच एक विचित्र दृश्य देखा। हरिद्वार देहरादून सड़क के उत्तर की ओर घने जंगल में खड़बड़ाहट और दौड़ने की आहट हुई। लेखक पेड़ की आड़ में सट कर खड़ा हो गया और थोड़ी ही देर में एक बड़ा झांक (नर चीतल) हांफता हुआ वन से निकला और उसके 15–20 गज पीछे सात आठ जंगली कुत्ते जीभें निकाले हुए झांक का पीछा कर रहे थे। झांक की गति से प्रतीत होता था कि वह काफी थका हुआ था और शायद कई घंटों से वह जंगली कुत्तों से बचने का प्रयास कर रहा था। सामने पानी का छोटा सा गड्ढा था। झांक उस गड्ढे में ही कूद पड़ा, पर गड्ढे में इतना पानी न था कि वह तैर कर बाहर जाता। यदि तालाब लंबा चौड़ा होता तो झांक बचने का शायद कुछ और भी प्रयत्न करता, क्योंकि चीतल तैरने में बड़े दक्ष होते हैं। गड्ढे का पानी झांक की छाती तक था और कुत्तों ने आव देखा न ताव, फौरन पानी में कूद पड़े तथा थोड़ी ही देर में तैर कर झांक की बगलों तथा पिछाई से जा लगे और उसे फाड़ डाला। झांक के गिरते ही लेखक ने तीन कुत्तों को मार दिया, बाकी कुत्ते जंगल में भाग गए।

भारतीय जंगली कुत्ते दिन में भी शिकार खेलते हैं और रात में भी।

22—लोमड़ी

लोमड़ी विश्व के प्राय: सब देशों में पाई जाती है, पर बरफीले क्षेत्रों में पाई जाने-वाली लोमड़ी की खाल अपने समूर के कारण बड़ी कीमती बिकती है। सम्भ्रान्त पुरुष और महिलाएं बड़े चाव से इसे अपने गरम कपड़ों पर लगवाते हैं। उत्तरी ध्रुवी क्षेत्र साइबेरिया तथा अन्य ठंडे इलाकों में इसे फंदे से पकड़ते हैं और इसकी खाल का काफी



लोमड़ी

व्यापार होता है। हमारे देश की लोमड़ी भी बड़ी होती है, पर उसकी खाल इतनी अच्छी नहीं होती। लोमड़ी की मक्कारी जगत-प्रसिद्ध है और उसके विषय में अनेक कहानियां प्रचलित हैं। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में विशेषकर ब्रज में 'लुखरपेच' शब्द का प्रयोग लोमड़ी द्वारा की गई धूर्तता और चालाकी के लिए प्रयुक्त होता है। हमारे देश में लोमड़ी हिमालय की तराई से धुर दक्षिण तक पाई जाती है। घने जंगलों में रहना लोमड़ी पसंद नहीं करती, इसलिए खुले मैदान, तितरे बितरे जंगल और खेत ही लोमड़ी के रहने के स्थान हैं।

भारत की लोमड़ी एक छोटा सा जानवर है, जिसकी लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक बीस इंच होती है। पूंछ की लम्बाई 13–14 इंच होती है। झबरी पूंछ फूली-सी होती है, जिसका अंतिम सिरा काला होता है। कान भूरे और शरीर का रंग लालपन लिए भूरा होता है। जब खुशी से लोमड़ी चलती है, तब पूंछ जमीन से छूती रहती है, पर जब भागती है तब पूंछ ऊपर उठ जाती है। बचाव के समय जब वह दिशा बदलती है तब उसकी पूंछ ऊपर खड़ी हो जाती है।

लोमड़ी रास्ते से हटकर ऊंचे से स्थान में रहने के लिए भींटा बनाती है, जिसमें कई एक मुंह होते हैं, जिनमें से कुछ मुंह अंधे होते हैं। कभी-कभी तो वह अपने आप बिल खोदने का कष्ट नहीं करती और बिज्जू आदि जानवरों के खुदे खुदाए भींटों पर जबरदस्ती कब्जा कर लेती है। मादा लोमड़ी फरवरी, मार्च या अप्रैल में चार तक बच्चे देती है। जब बच्चों की आंखें खुल जाती हैं तब प्रातःकाल सूर्य निकलने पर लोमड़ी मांद के ऊपर बच्चों को लेकर धूप में बैठ जाती है और बच्चे खूब खेलते हैं। किसी को भी उधर से आता जाता देख बच्चे एकदम बिल में घुस जाते हैं और लोमड़ी दूर भाग जाने का सा बहाना करती है।

चूहे, चिड़ियां, छिपकली, कीड़े, अंडे तथा फल आदि लोमड़ी की खुराक हैं। मुर्गी-

पालकों के लिए लोमड़ी मुर्गी-चोर होने के नाते बड़ी कष्टदायक है। मुर्गीखाने की जाली के नीचे जमीन खोद कर वह मुर्गियों और अंडों की चोरी करती है।

कुत्तों को चकमा देने और उल्लू बनाने में लोमड़ी बड़ी सिद्धहस्त होती है। चकमा देकर वह कुत्तों को थका देती है और वे उसे छोड़ कर भाग जाते हैं। कुत्तों से पीछा किए जाने पर अगर लोमड़ी को टीला मिल जाता है, तो टीले का चक्कर काटती है और तेजी से ऊपर चढ़ जाती है। कुत्ते उल्लू बन कर चक्कर काटते हैं और इधर-उधर देखते हैं। यदि ऊपर टीले पर कुत्तों ने इसे देख लिया तो फिर वह आगे चलकर 'बिलुकइयां' काटती है। लेखक ने कई बार देखा है कि कुत्ते से पीछा किए जाने पर वह एक बड़े आक के पेड़ के पास खड़ी हो जाती है और कुत्ता दूसरी ओर से आक्रमण के लिए खड़ा हो जाता है। लोमड़ी इधर उधर हिलती है, कुत्ता झपट्टा मारता है और लोमड़ी आक के ऊपर से छलांग मार कर तेजी से भागी चली जाती है। जैसे ही कुत्ता पास आता है कि लोमड़ी एकदम समकोण बनाकर दाएं-बाएं हो जाती है। कुत्ता दौड़ की तेजी में पांच-छः गज आगे चला जाता है और लोमड़ी खड़ी होकर ऐसे देखती है, मानो कुत्ते पर हँस रही हो। आखिर कुत्ता झख मार कर उसे छोड़ देता है। कभी-कभी तो इस प्रकार चक्कर काटने में जैसे ही लोमड़ी की पूंछ ऊपर उठती है, कुत्ते का मुंह लोमड़ी की पूंछ में लगता है और पूंछ के बाल उसके मुंह में भर जाते हैं। कुत्ता बाल थकता रह जाता है कि लोमड़ी बच भागती है।

अंग्रेजी में लोमड़ी के शिकार (फौक्स हंटिंग) पर बड़ी रोचक पुस्तकें है। कुत्तों को लोमड़ी के शिकार के लिए विशेष ट्रेनिंग दी जाती है। कुत्तों को छोड़ दिया जाता है और वे उसकी गंध का पीछा करते हैं। लोमड़ी की चालाकी और कुत्तों को झांसा देने की एक कहानी इस प्रकार है कि जब शिकारी के कुत्ते लोमड़ी का पीछा करते तो घास के मैदान के किनारे लोमड़ी नीचे को छलांग भरती। नीचे खड़ी चट्टानी पहाड़ी थी। लोमड़ी जैसे ही नीचे छलांग भरती वैसे ही कुत्ते भी कूद पड़ते और नीचे गिर कर मर जाते । कई बार लोमड़ी ने जब झांसा दिया तब शिकारियों ने खोज की कि चट्टान के सहारे ही लोमड़ी ने अपने बचाव का स्थान बना लिया था और स्वयं तो घास के मैदान से कूद कर चट्टान में अपने स्थान पर जा बैठती थी तथा कुत्ते नीचे गिर कर मर जाया करते थे।

हमारे देश में दिसम्बर जनवरी और कभी-कभी फरवरी के प्रारम्भ तक लोमड़ी के नर की आवाज रात में 'खो' 'खो' 'खो' सुनाई पड़ती है। सूर्योदय के बाद तक भी नर उसी आवाज में मादा का आह्वान करता है। अज्ञानवश गांववाले कहते हैं कि लोमड़ी जाड़े के मारे रात में चिल्लाती है कि 'अब घर करूं कि अब घर करूं' पर जब सूर्योदय के बाद भी लोमड़ी की आवाज सुनाई पड़ती है तो कहते हैं कि अब धूप खाकर कहती है, "बलाय घर करैं, बलाय घर करैं" पर 'खो खो' आवाज को नर लोमड़ी जोड़े के मौसम में ही करती है और अर्धवयस्क लोमड़ी को अपने साथियों को बुलाने के लिए लेखक ने 'आ उ उ, आ उ उ' की आवाज करते सुना है।

लोमड़ी की चतुराई के विषय में कहा जाता है कि वह अपने बिल के मुंह पर किसी के पैर के निशान भी अगर देख लेती है तो फिर वह वहां नहीं रहती और दूसरा बिल बदल लेती है। शत्रु को अपने अति समीप आया जान और यह समझ कर कि वह उससे भाग

कर पीछा नहीं छुड़ा सकती तो इस प्रकार दम साध कर जमीन पर पड़ जाती है मानो मर गई हो। ठोकर मारने, इधर-उधर घसीटने पर भी कभी-कभी वह टस से मस नहीं होती पर जैसे ही वह जान पाती है कि शत्रु चला गया वैसे ही नौ दो ग्यारह हो जाती है।

चरख-वंश (The Hyena Family)

चरख-वंश में केवल चरख ही एक जीव है। अन्य और कोई जीव इस वंश में नहीं आता। अपने शरीर रचना की दृष्टि से वह न तो बिल्ली वंश में आता है और न कुत्ता वंश में।

चरख भारी भरकम जीव है और अगली अपेक्षाकृत लंबी टांगों के कारण विचित्र प्राणी है। इस युग में चरख केवल ग्रीष्म प्रधान देशों तक ही सीमित रह गया है, पर पहले ठंडे देशों में भी मिलता था। इसके अगले और पिछले दोनों ही पंजों में केवल चार चार नाखून होते हैं। समूर कड़ा और भद्दा होता है।

चरख के दांतों की संख्या 34 होती है, जो इस प्रकार होते हैं : $^2/_3$ कृंतक दांत, $^1/_1$ कीले, $^3/_4$ दूध की डाढ़ें, $^1/_1$ डाढ़ें। बिल्ली वंश और चरख के दांतों की समता केवल मांस के दांतों तक ही है। दूध की डाढ़ों का ऊपरी भाग नुकीला होता है इसलिए दांत और कीलों की सहायता से चरख किसी भी बड़े बैल की टांग ऐसी आसानी से तोड़ डालता है जैसे कुत्ता मुर्ग की टांग को। चरख के जबड़े की शक्ति इतनी अधिक है कि अन्य किसी भी मांसाहारी जीव की नहीं है।

चरख के नाखून छोटे और भोथरे होते हैं, पर उनकी मजबूती में कोई अंतर नहीं आता और मिट्टी खोदने के काम में खूब आते हैं।

चरख वंश की जीभ भी बिल्लियों की तरह खुरदुरी होती है, पर उसके विपरीत ये प्राणी मुर्दाखोर होते हैं।

23–चरख या लकड़बग्घा

चरख या लकड़बग्घा या हड़हा भारतवर्ष का एक विचित्र जानवर है। उसे अंग्रेजी में 'हाइना' कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है :—

1. चित्तेदार या हंसोड़ चरख (स्पौटेड हाइना)
2. भूरा चरख (ब्राउन हाइना)
3. धारीदार चरख (स्ट्राइप्ड हाइना)

चित्तेदार चरख और भूरे चरख अफ्रीका में होते हैं। हमारे देश में तो केवल धारीदार चरख होता है। तीनों प्रकारों में सबसे बड़ा और खतरनाक चित्तेदार चरख है। प्रकृति की म्युनिसिपैलिटी में जो स्थान पक्षियों में गीध को प्राप्त है, लगभग वही स्थान मुर्दार और गंदगी खाने वाले जानवरों में चरख का है।

चरख देखने में बड़ा ही बदसूरत और घिनौना पशु है। अपनी साधारण चाल पर जाता हुआ चरख ऐसा प्रतीत होता है मानो वह लंगड़ा हो और अपने शरीर को घसीट-घसीट कर ले जा रहा हो। ऐसी चाल का यह कारण है कि चरख का अगला भाग भारी

होता है, अगली टांगें भी बड़ी होती हैं, जिनसे वह बड़ी आसानी से भींटे खोद लेता है। पीछे की टांगें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं और पिछला भाग हलका होता है, अतः चलने में चरख पिछला भाग घसीट कर ले जाता हुआ मालूम होता है।

नाक से पूंछ के सिरे तक चरख की लम्बाई साढ़े चार फुट होती है, जिसमें अकेली पूंछ का नाप $1\frac{1}{2}$ फुट है। चरख का रंग पिलछौंह सिलेटी होता है, जिस पर खड़ी और आड़ी कालापन लिए धारियां पड़ी होती हैं। इसका मुंह काला, कान खड़े, जबड़े बहुत मजबूत, गरदन मोटी और बहुत मजबूत होती है। रीढ़ की हड्डी, जो सिर और कंधों को जोड़ती है इतनी मजबूत होती है कि जुड़ी सी प्रतीत होती है। आगे की टांगें बड़ी, पिछली छोटी होती हैं। पंजों में अन्य मांसाहारी जीवों की तरह पांच उंगलियां न होकर केवल चार ही उंगलियां होती हैं। गरदन और पीठ पर काफी बड़े बाल होते हैं और पूंछ भी काफी बड़ी होती है।



धारीदार चरखों का एक झुण्ड

भारतवर्ष म चरख प्रायः सब जंगलों में पाया जाता है। जंगलों के अतिरिक्त चरख नालों, कछारों, ऊबड़-खाबड़ भीटों, छोटी चट्टानों और बड़े छिपने के स्थानों में भी मजे से रहता है, क्योंकि वह सूखे हाड़ तक खा लेता है, जिसके चबाने के कारण इसका नाम हड़हा भी है। चरख की मादा एक बार में 4–5 बच्चे देती है, जिन पर बड़ी स्पष्ट और चौड़ी धारियां पड़ी होती हैं, जो बड़ी उमर में पतली हो जाती हैं।

चरख की खुराक सब प्रकार के मुर्दार हैं। गंदगी और मुर्दार खाने वाला जानवर प्रकृति की चुंगी का एक बड़ा सदस्य है, पर जंगलों के कम हो जाने से इसकी खुराक भी कम हो गई है। चरख का जबड़ा इतना मजबूत होता है कि वह सूखी मोटी हड्डी को भी आसानी से चबा लेता है। एक प्रकृति प्रेमी ने तो चरख के लिए लिखा है कि उसका जबड़ा शेर जैसा होता है और दिल चूहे का सा, अर्थात चरख स्वभावतः कायर होता है,

पर उसके जवड़े की पकड़ वड़ी कारगर और खतरनाक होती है। कायरों के स्वभाव की पहचान है कि वे अपने से कमजोर या दवने वाले पर भयंकर आक्रमण करते हैं। जबड़े की ताकत का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि यदि चरख बड़ी से बड़ी भैंस की टांग भी पकड़ ले तो फौरन उसे तोड़ सकता है। बैल की रान पर उसके जबड़े का पूरा प्रहार हो जाए तो उसे तत्काल उखाड़ दें।

अफ्रीका में तो चरख टोली बांध कर भी शिकार खेलता है, पर हमारे देश में इक्का दुक्का ही दिखाई पड़ता है। दिन भर तो चरख किसी मांद या झाड़ी में पड़ा सोता रहता है और वह सायंकाल होते ही निकल पड़ता है। कुत्ता खाने का शौकीन चरख रात को आसानी से कुत्ता पकड़ कर खा लेता है। मादा चरख कभी कभी झाड़ी की आड़ में बैठ जाती है और नर, गांव की ओर जाकर कुत्तों को देख कर बनावटी डर से भागता है। कुत्तों की, वैसे तो चरख को देखकर सिट्टी गुम हो जाती है, पर जब वह भागने लगता है तब कुत्ते उसका पीछा करते हैं और जैसे ही नर चरख झाड़ी के सामने होकर कुत्तों को अपने पीछे भगाता हुआ लाता है, मादा चरख किसी न किसी कुत्ते को गपक लेती है। यदि एक बार चरख के दांत किसी कुत्ते पर जम जाएं तो फिर वह बच नहीं सकता। जहां से भी पकड़ता है तोड़ देता है। वीरता और लड़ने में प्रसिद्ध बुलटेरियर कुत्ते भी चरख से घबराते हैं। हां, एक बार लेखक की एक बहुत फुर्तीली बुलटेरियर कुतिया की गरदन पर चरख ने झपट्टा मारा और इससे पहले कि वह उसकी गरदन तोड़ डाले बिजली की गति से 'बिजली' नाम की उस कुतिया ने पलटा खाया और लहूलुहान गले की फटी लटकती खाल सहित सरपट भाग आई। फौरन ही अस्पताल ले जाकर कुतिया की गरदन को डाक्टर से सिलवाया और पर्याप्त उपचार के बाद वह ठीक हो गई।

चरख कायर ही नहीं धूर्त भी होता है। उसकी धूर्तता का एक ढंग यह है कि वह चुपचाप किसी बिना बंधे बछड़े-बछिया या गधे के पास आ जाता है, विशेष कर खुले बैठे जानवर के पास। जब जानवर उसे देख कर डर कर बिदक कर भागता है तो लड़खड़ा कर गिर पड़ता है, बस चरख की बन आती है। अगर कोई जानवर मुकाबला कर बैठे, तब फिर चरख आक्रमण नहीं करता। इसलिए तन्दुरुस्त जानवर ही बिदक जाने पर चरख का शिकार बनते हैं, बीमार और कमजोर जानवर तो न जल्दी बिदक कर डर कर भागते हैं, न पकड़े जाते हैं। रात में यात्रियों को कभी कभी चरख सड़क पार करते हुए दिखाई दे जाता है और उसके मुंह में गाय या भैंस की पूरी की पूरी टांग लगी रहती है।

जंगल बुरी तरह से काट डाले गए हैं और हिरनों तथा खरगोशों को आदमियों ने भी बहुत मार कर खा लिया है। प्रकृति में चोर बाजारी और परमिट से शिकार खेलने का नियम जानवरों के लिए नहीं है अतः चरख की खुराक वहां कम हो गई है; तेज वह दौड़ नहीं सकता, इसलिए अपनी भूख बुझाने के लिए वह गांवों से कुत्ते, मुरगी, बतख, भेड़-बकरी ही नहीं, आदमी के बच्चों तक को उठा ले जाता है। बच्चे ले जाने में तो वह ढिठाई भी करता है और 6–7 फुट ऊंची दीवारों को लांघ कर मां के पास सोए बच्चे तक को उठा ले जाता है, और मां को प्रायः पता नहीं चलता कि चरख, बच्चा ले गया। उसके शैतानी जबड़े तीन चार वर्ष के बच्चों को ही नहीं 12–13 वर्ष तक के बच्चों को उठा ले जाते हैं। छोटे बच्चे के कंधे और छाती को मुंह में दाब जमीन से

ऊंचा करके वह ले जाता है। बड़े बालक को गरदन से पकड़ कर घसीटता ले जाता है। पीछा किए जाने पर वह बच्चे या लड़के को सहज नहीं गिराता, जब अपने को लोगों और लाठियों से घिरा समझ लेता है तभी बच्चे को छोड़ता है। इस प्रकार घेर-घार कर कभी-कभी आदमी चरख को मार भी लेते हैं, पर एक बार चरख के दांतों के नीचे आया लड़का या बच्चा कभी नहीं बचता।

कभी-कभी, विशेषकर गर्मियों में, गांवों में चरख का आतंक इतना फैल जाता है कि लोगों को बच्चों की रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है, पर वह तो छोटी दीवारों को आसानी से पार कर, छोटे बच्चों को मुंह में दबा कर दीवार फांद कर चला जाता है। लेखक ने हरदोई जिले में एक ऐसा चरख आसानी से मारा था, जिसने आसपास के चालीस बच्चे खा लिए थे। गांव से दो मील दूर एक छोटे जंगल के किनारे वह एक अंधे कुएं की बगल में भींटा बना कर रहता था। बड़ी मुश्किल से एक साधारण जंगल के किनारे उसके रहने की जगह मिली। बाहर हड्डियों का ढेर लगा था, जिससे स्पष्ट था कि वहीं कहीं चरख रहता है। खोज भी ताज़ा थी। सायंकाल को एक लेंडी कुत्ता हड्डियों के पास बांध दिया और आड़ में भाटे के सामने बैठकर लेखक ने चरख की प्रतीक्षा की। सूर्यास्त से पहले ही कुत्ते की आवाज और गंध से चरख ने अपना सिर भाट-मांद से जैसे ही बाहर निकाला वैसे ही वह धुन दिया गया।

प्रकृति में मुर्दार और गंदगी खाने के लिए सियार मौजूद है, अतः चरख की अब कोई आवश्यकता नहीं है। इसकी खुराक भी अब बहुत कम हो गई है। कुत्ते और गीदड़ की तरह चरख भी कभी-कभी पागल हो जाता है और उन्हीं की तरह काटने भी लगता है। पागल चरख के काटे का इलाज भी वही होता है, जो पागल गीदड़ या पागल कुत्ते के काटे का होता है।

देखने से तो यह मालूम होता है कि चरख पिछले भाग को घसीटता चलता है, पर ऊबड़ खाबड़ जमीन में वह काफी तेज चला जाता है और कभी-कभी घोड़े पर पीछा किए जाने से ही पकड़ा जा सकता है। इस घिनौने और क्रूर पशु के बच्चे छोटी अवस्था में पकड़ कर लाने पर पाले जा सकते हैं; पर उन्हें कोई पालता नहीं है।

सियार की भांति चरख की घ्राण शक्ति बड़ी तीव्र होती है। जहां मादा चरख बच्चा देती है वहां से भूल से कोई अगर निकल जाए तो कभी कभी मादा आदमी पर भी हमला कर बैठती है। चरख की आवाज बड़ी मनहूस और विचित्र होती है।

चरख का मारना कोई कठिन काम नहीं है। जहां होकर यह निकलता हो या जिस गांव में यह लगता हो वहां किसी गली में कुत्ते को बांध देना चाहिए और जलती लालटेन को इस प्रकार रखना चाहिए कि रोशनी कुत्ते पर तो पड़े पर बंदूक वाले शिकारी पर न पड़े। जब चरख निकले तब मार लिया जाए। चरख भारी भी काफी होता है। एक दो चरख जब किसी लाश को खाते होते हैं और बाघ आ जाए तो वे उससे डरते नहीं हैं। भारत के अनेक स्थानों में चरख को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं और जब वह मारा जाता है तो बड़ी नफरत से उसका अपमान किया जाता है। गांवों में रहनेवाली जनता को उसके पालतू पशु, पक्षी, और अपने बच्चे तक को खा डालने वाला घृणा का पात्र तो होता ही है।

•कस्तूरी वंश (Family Viverridae)

इस वंश में अधिक जीव नहीं हैं और उनकी विशेषताएं हैं उनका मझौला आकार। उनमें कुछ छोटे भी होते हैं। मुंह की बनावट लंबोतरी-कुत्तों के मुंह जैसी तथा पैर छोटे होते हैं। इस वंश के सब जीव मांसाहारी होते हैं और पेड़ों पर आसानी से चढ़ जाते हैं। इस वंश के जीवों में आपस में काफी भेद होता है, अतः उन्हें तीन उपवंशों में विभक्त करना उचित है : —

1—कस्तूरी उपवंश (Sub Family Viverrinae)
2—मुसंग उपवंश (Sub Family Paradoxurinae)
3—नेवला उपवंश (Sub Family Mungotinae)

कस्तूरी उपवंश का आकार लगभग बिल्लियों के आकार के बराबर होता है और गहरे चित्ते होते हैं तथा पूंछ के नीचे एक ग्रंथि होती है, जो एक गंधयुक्त गाढ़े पदार्थ को बाहर निकालती हैं। इन जीवों की जीभ खुरखुरी होती है तथा नख बिल्लियों की तरह मांस की गद्दियों में भीतर घुसे रहते हैं। इस उपवंश में भारत के प्रसिद्ध दो जीव हैं:— (अ) कटास **(Large Indian Civet)** (ब) कस्तूरी **(Small Indian Civet)**

मुसंग उपवंश में कस्तूरी उपवंश के समान ही जीव हैं, जो पेड़ों पर चढ़ जाते हैं और ताड़ तथा खजूर के पेड़ पर भी चढ़ जाना इनके लिए आसान काम है। इनके पैरों की अंगुलियां एक प्रकार की झिल्ली से जुड़ी रहती हैं और चीते की तरह नाखून मांस की गद्दी में आधे ही घुसते हैं। इस उपवंश में भारत के जीवों में प्रसिद्ध मुसंग या ताड़-बिल्ली है।

नेवला उपवंश में अकेला नेवला ही आता है, जो अपने वंश का सबसे छोटा जीव है, पर साहस में सबसे बढ़ चढ़कर है।

24—कटास (Large Indian Civet)

कटास हमारे देश के सब भागों में नहीं पाया जाता वरन वह केवल उड़ीसा, बंगाल से सिक्किम और उसके पूर्वी जंगलों में मिलता है। कटास रात में निकलता है और दिन में जंगल में पड़ा सोया करता है, इसलिए बहुत कम लोग इसे देख पाते हैं। अपनी खुराक की तलाश में रात में जंगल से सटे गांवों में घुसकर वह मुर्गियां तथा अन्य चिड़ियां पकड़ता है। स्वभावतः कटास प्रायः अकेला ही शिकार खेलता है। इसकी खुराक में विशेष रूप से छोटे-मोटे जीव और पक्षी हैं, पर केवल इतने से ही जब उसका काम नहीं चलता या भूख बुझाने को पर्याप्त नहीं मिलता तो वह मेढक, मछली, जड़ और फल-फूल भी मजे से खा जाता है।

कटास की पूंछ के नीचे एक गंध थैली होती है, जिसमें से एक गाढ़ा गंधयुक्त पदार्थ निकलता रहता है। कटास तैरता भी खूब है।

कटास का आकार नाक से पूंछ की जड़ तक ढाई फुट लम्बा होता है और उसके लगभग 1½ फुट की मोटी सी पूंछ होती है। कटास का रंग गहरे सिलेटी रंग का होता है

और पीठ पर बाल होते हैं। उसके शरीर पर दोनों ओर धारियां और चित्तियां पड़ी रहती हैं परन्तु आधी से अधिक पूंछ काली होती है। टांगों के पास जड़ पर रंग सिलेटी होता है, और वह भाग काली धारियों से युक्त होता है। छाती पर भी काली चौड़ी धारियां होती हैं। कटास की मादा मई जून में एक बार में 3 से 4 तक बच्चे देती है। बच्चों की आंखें जन्म के समय खुली रहती हैं।

शिकारी कुत्ते या लेंडी कुत्ते जब शिकार पर जा रहे होते हैं और कटास की गंध पा जाते हैं तो फिर वे अन्य सब जानवरों के पीछे जाना छोड़ देते हैं।

25–कस्तूरी (Small Indian Civet)

हमारे देश के लगभग प्रत्येक भाग में कस्तूरी पाई जाती है तथा विभिन्न स्थानों में इसके विभिन्न नाम हैं। बंगाल में इसे गंधगोकुल कहते हैं तो कहीं सोनहार, कहीं चौंधियारी, कहीं मुश्क-बिल्ली और कहीं कस्तूरी कहते हैं। चूंकि कस्तूरी की पूंछ के नीचे एक ग्रंथि होती है, जिसमें से तेज गंध वाला गाढ़ा पदार्थ निकला करता है। इसी-लिए इसके ये सब नाम पड़े हैं। कस्तूरी बेचने वाले प्रायः कस्तूरी जीव के इसी गाढ़े पदार्थ को असली कस्तूरी में मिला कर बेचा करते हैं।

कस्तूरी की लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक लगभग दो फुट होती है और उसके 1½ फुट लम्बी पूंछ होती है। उसके शरीर का रंग भूरापन लिए सिलेटी होता है और उस पर काली-काली चित्तियां पड़ी होती हैं। पीठ पर की चित्तियां तनिक लम्बी-लम्बी होती हैं, जो पंक्तियां सी जान पड़ती हैं, पर बाकी सब शरीर पर चित्तियों का सिलसिला नहीं होता। पूंछ पर भी काली-काली गड़ारियां होती हैं, पर पेट पर न चित्ती होती है, न लकीरें हीं। कस्तूरी के दोनों कानों के समीप से कंधों तक एक-एक काली लकीर होती है तथापि गरदन के ऊपर भी थोड़ी सी खड़ी धारियां होती हैं।

कस्तूरी भी दिन के समय बिलों और खंडहरों में पड़ी रहती है और रात को ही शिकार के लिए निकलती है। केवल रात में ही निकलने के कारण वह दिखाई तो बहुत कम पड़ती है पर पशु-पक्षी-पालक जानते हैं कि कस्तूरी के उपद्रव कम नहीं होते। लोमड़ी से भी अधिक यह पालतू चिड़ियों की चोर है। सारा दिन प्रायः किसी जलाशय के सहारे उजड़े मकानों, सुनसान स्थानों के बिलों में वह छिपी रहती है, पर रात होते ही खुराक की तलाश करती है और छोटे छोटे जीव, अंडे, चिड़ियां, सांप, मेंढक, कीड़े-मकोड़े सब खा जाती है।

इसका मुंह लोमड़ी की तरह और सारा शरीर बिल्ली की तरह होता है। कस्तूरी की मादा एक बार में चार-पांच बच्चे तक देती है और अगर बच्चे पकड़ लिए जाएं तो वे बड़ी आसानी से पालतू बना लिए जाते हैं और शिकार कराने के काम में लाए जा सकते हैं। बिल्लियों की तरह इसके नाखन भीतर गद्दियों में छिप जाते हैं तथा जीभ भी खुरदरी होती है।

26—मुसंग या ताड़ बिल्ली (Indian Palm Civet)

मुसंग या ताड़ बिल्लियों की दस जातियां हैं, जिसमें से अकेले भारत में ही पांच पाई जाती हैं। खजूर के पेड़ पर नीरा को इकट्ठा करने के लिए जो वर्तन लटकाया जाता है उसमें से वह पेड़ पर चढ़ कर नीरा पी जाती है इसी कारण इसका नाम ताड़ विल्ली पड़ गया है। भारतीय ताड़ विल्ली भारत के अधिकांश भागों में पाई जाती है।

मुसंग की लम्वाई नाक से पूंछ की जड़ तक लगभग डेढ़-दो फुट होती है और इतनी ही लम्वी उसके पूंछ होती है। उसके शरीर का रंग भूरापन लिए सिलेटी होता है, जिस पर या तो काली-काली धारियां सी होती हैं या सिलसिलेवार रंगीन सी होती हैं। अति लम्वी पूंछ पर वस गड़ारियां नहीं होतीं। आकार में मुसंग बड़ी विल्ली जितनी होती है। हां टांगें, विल्ली से अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। कान छोटे-छोटे और गोल-गोल होते हैं। आंख की पुतली आड़ी होती है, पंजों के नाखून मांस की गद्दी में घुस जाते हैं। पर इसके पैरों के तलुओं में एक विशेपता होती है कि चारों पैरों के तलुवे बालरहित नंगे होते हैं। तलुओं का यह गंजापन पैर के पीछे काफी दूर तक जारी रहता है और उसमें एक भी वाल नहीं होता। मुसंग के पैर गहरे रंग के होते हैं। सिर के ऊपरी हिस्से से नाक के वीच तक एक खूव गहरे रंग की सीधी लकीर बनी होती है। मुसंग रजनीचर है और पेड़ तथा जमीन पर समान रूप से रहती है। इसलिए इसके दांतों की वनावट आंशिक रूप से मांसाहारियों की सी होती है और आंशिक रूप से शाकाहारियों की सी।

यह सूखे नालों, खंडहरों, छतों में भी रहना पसन्द करती है। पर वैसे नारियल के पेड़ों और खजूर के पेड़ों पर विशेष प्रेम और रुचि से रहती है। मुसंग की खुराक अधिकांश मांस है, जिसमें छोटे जीव, चूहे, छिपकलियां, गिलहरियां, चिड़ियां, मुर्गियां, अंडे आदि सव हैं, पर साथ ही साथ साग-सब्जी भी वह उड़ा जाती है। पालतू दशा में तो पके चावल, रोटी, दूध, केला सव खा जाती है। तिलचट्टे खाने की तो मुसंग वड़ी शौकीन है।

दक्षिण भारत में तो इसे पाल भी लेते हैं और वह खूब हिल-मिल जाती है। कोई-कोई मुसंग तो मालिक के साथ आराम से खुली घूमती है और रात को तकिए के पास सो जाती है। एक शिकारी ने एक स्थल पर लिखा है—"वे चढ़ती उतरती वहुत हैं और मेरे मकान के एक कोने से वे बहुत चढ़ती उतरती थीं।" कस्तूरीवंश के अन्य जीवों के समान नाराज किए जाने पर, मुसंग अपने शरीर से एक बहुत बुरी गंध छोड़ती है।

नेपाल और सिक्किम में पाई जाने वाली मुसंग की मूंछें सफेद होती हैं। पर दक्षिणी भारत की सुनहले सी मुसंग की मूंछें गहरी भूरी होती हैं तथा वंगाल की खाड़ी के पूर्व की मुसंग की मूंछें काली होती हैं।

27—छुद्र दंत ताड़ बिल्ली

छुद्र दंतीय ताड़ विल्ली या मुसंग दो प्रकार की होती हैं, जिसमें से से एक, जो सफेद कान छोटे दांत वाली होती है, हमारे देश में केवल असम में पाई जाती है। इस पर

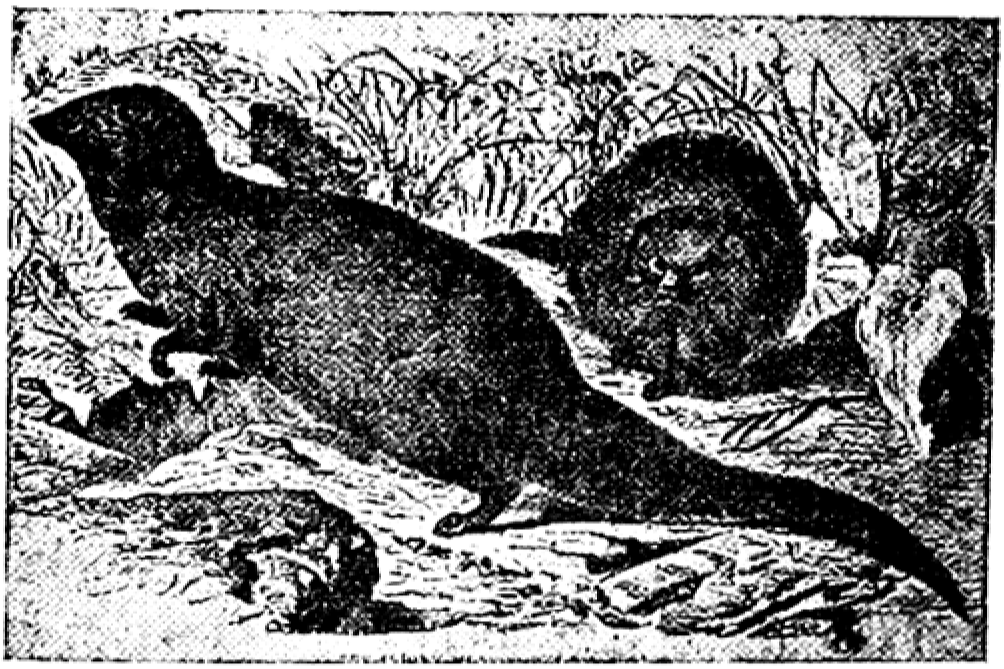
गरदन से पूंछ की जड़ तक पीठ पर तीन स्पष्ट धारियां होती हैं, जो पूंछ की जड़ पर जाकर टूट सी जाती हैं। नर की लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक 26½ इंच होती है और अति लम्बी पूंछ की लम्बाई 27 इंच होती है। पैर की गद्दियां मकुना (बाल रहित) होती हैं। अन्य सब बातों में यह ताड़ बिल्ली के समान ही है।

28–नेवला (Indian Mongoose)

हमारे देश में नेवले के चार भेद हैं और सारे भारतवर्ष में वह पाया जाता है :–

1. सुनहरा नेवला, जो हिमालय-प्रदेश के कश्मीर आदि स्थानों में होता है।
2. साधारण नेवला, जो दक्षिण भारत को छोड़ कर सारे देश में पाया जाता है।
3. मद्रास का नेवला, जिसका रंग पीलापन तथा बादामी लिए होता है।

नेवला



4. 'झौंर' यह सब नेवलों में सबसे बड़ा होता है और इसका यह नाम उत्तर प्रदेश में है। यह प्रायः सांयकाल से लगाकर प्रातः सूर्योदय तक ही शिकार खेलता है।

नेवला अपने वंश का सब से छोटा जीव है, क्योंकि मामूली नेवले की लम्बाई पूंछ को छोड़ कर सवा फुट होती है। इतनी ही लम्बी इसके पूंछ होती है। नेवले के शरीर का रंग भूरा होता है, जिसमें पीले और काले रंग की झलक होती है। शरीर पर के छोटे-छोटे बाल खुरखुरे होते हैं, जिन्हें हमला करते समय वह खड़े कर लेता है और उस समय वह दूना बड़ा मालूम होता है।

यह बिल बना कर रहता है, जो एक छोटी सी मांद की तरह होता है। वह गांव के आसपास, नालियों में, शहरों के गोदामों में भी अपना घर बना लेता है। जंगलों और मैदानों में भी नेवला रहता है। नेवले की खुराक सब प्रकार के छोटे जीव हैं। अंडों और मुर्गियों का तो यह बड़ा ही शौकीन होता है। अपने शिकार को मार कर नेवला कभी-कभी केवल उसका भेजा खाकर छोड़ देता है। मांसाहारी नेवला रोटी, घी,

मक्खन आदि खाद्य पदार्थ भी बड़े शौक से खाता है। आकार म छोटा होने पर भी नेवला सांप को भी मार कर खा जाता है।

स्वभाव में सब नेवले एक से होते हैं। तेजी और उत्सुकता उनका स्वभाव है। नेवला आसपास की भौगोलिक स्थिति की जानकारी के विषय में बड़ा उत्सुक रहता है। यदि किसी मकान में वह आता जाता है, तो पहले हर कोने और कमरे की जानकारी प्राप्त करता है। यही हाल उसका जंगल में है। बहादुरी का तो नेवले का यह हाल है कि अपने से चौगुने से भी भिड़ जाता है। अगर कभी भूल से बिल्ली नेवले पर आक्रमण कर दे तो यह पूंछ और शरीर के बाल फुलाकर शरीर को ऊंचा करके बिल्ली के पास जाते ही 'खिर्र-खिर्र .....' की आवाज़ से उसे धमका देता है। बिल्ली डर कर लौट जाती है। कुत्ता जैसे ही नेवले पर आक्रमण करता है, वैसे ही नेवला कूद कर कुत्ते की नाक में दांत गड़ा देता है और कुत्ता 'कांय-कांय' करके भाग जाता है। यदि नेवले का आकार कुत्ते के बराबर होता और उसका वजन डेढ़ मन के करीब होता, तो वह शेर को भी कुछ नहीं समझता। और गाय-बैल को भी शायद आसानी से ही मार लेता।

वैसे प्राकृतिक जीवन में संतुलन रखने के लिए नेवला बड़ा उपयोगी है। सांप, चूहे, खेती के अन्य हानिकारक जन्तुओं को वह बड़े शौक से खाता है। लोगों का भ्रम है कि सांप द्वारा काटने पर नेवला एक जहर निरोधक बूटी खा लेता है। पर असली बात यह है कि सांप को काटने का वह मौका नहीं देता। इन पंक्तियों के लेखक ने कई बार सांप और नेवले की लड़ाई देखी है। बाल फुला कर वह काले सांप का मुकाबला करता है और सांप जैसे ही आक्रमण करता है, वैसे ही नेवला सांप का फन मुंह में पकड़ कर चबा देता है। वह सदा सांप के मुंह पर भी वार करता है। सांप को मार कर एकान्त और अन्धेरी सी जगह में ले जाकर वह उसे शान से खाता है। धामिन सांप में जहर नहीं होता और वह मौका पाकर कभी कभी अपनी गुंजलक में दबा कर नेवले को मार भी देता है। एक बार एक धामिन सांप मक्के के पौधे पर चढ़ने लगा, पर नेवले ने पीछे से दौड़ कर उसकी पीठ पर चढ़कर कचकचा कर दांत मारे। सांप गिर गया, पर दुबारा आक्रमण किए जाने पर धामिन सांप ने नेवले को अपनी गुंजलकों में जकड़ लिया और उसे मार दिया। जो कुछ भी हो बहुत ही थोड़े ऐसे अवसर आते हैं जब सांपों से नेवले को हार खानी पड़ती हो।

अति समझदार और चतुर प्राणी नेवला पेड़ पर भी बड़ी आसानी से चढ़ जाता है। दिन और रात किसी भी समय इसको देख सकते हैं, अतः इसके छोटे बच्चे अगर पकड़ लिए जाएं तो वे बड़ी ही आसानी से पल जाते हैं। दूध पी-पी कर छोटा नेवले का बच्चा थोड़े दिनों में झींगुर आदि से गुजारा करना सीख जाता है और समय पाकर इतना हिल जाता है कि आदमी के पास चारपाई पर बैठा रहता है। मनुष्य के लिए नेवला बड़ा उपयोगी जीव है, क्योंकि चूहों को तो वह छोड़ता ही नहीं है।

नेवले की स्वामिभक्ति की अनेक कथाएं हमारे देश में प्रचलित हैं।

•चितराला वंश (Family Mustelidae)

चितराला वंश काफी विशाल है और साथ ही इस विशालता के साथ-साथ इस वंश के प्राणियों में वाह्य भिन्नता भी है। चितराला वंश के अधिकांश जीवों के शरीर लम्बोतरे और पैर छोटे होते हैं। इस वंश के प्राणियों के रंगों में भी भेद होता है और अनेक प्राणियों का समूर व्यापारिक दृष्टि से बड़ा मूल्यवान होता है। चितराला वंश को तीन भागों में बांटा गया है—

1. **चितराला उपवंश**
2. **बिज्जू उपवंश**
3. **ऊद उपवंश**

29–चितराला (Marten)

चितराला, चितराला उपवंश का प्रमुख प्राणी है। भारतीय चितराला तो अन्य सब चितरालाओं की अपेक्षा अधिक सुन्दर चमकदार रंगों का होता है। भारतीय चितराला की पूंछ शरीर की लम्बाई की दो तिहाई होती है। पैरों के तलवे आंशिक रूप से बाल रहित होते हैं, पर हिमालय के चितराला के पैरों के तलवों में अधिक बाल होते हैं।

भारतवर्ष में चितराला सारे हिमालय प्रान्त में पाया जाता है। वह कश्मीर से असम तक सब स्थानों में होता है और दक्षिण में नीलगिरी पर्वत से ट्रावनकोर की पहाड़ियों तक ऊंचे स्थानों में रहता है। चितराला का समूर साधारणतया छोटा होता है, पर हिमालय के चितराला का समूर अपेक्षाकृत बड़ा होता है। जाड़ों में समूर के नीचे घना पश्मीना हो जाता है। भारतीय चितराला के दो प्रकार होते हैं, जिनमें से एक का रंग अधिक चमकीला होता है। पहले यानी साधारण भारतीय चितराला का रंग सिर, गरदन, और पूंछ के ऊपर बिल्कुल काला या गहरा कत्थई होता है और पीठ के बीच का भाग पीलापन लिए भूरा होता है, ठोड़ी और गला सफेद होते हैं, गले का भाग तथा छाती पीली होती है। दूसरे प्रकार का चितराला बिल्कुल भूरा होता है। चितराले के शरीर की लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक 20 से 22 इंच तक होती है और वालों सहित पूंछ की लम्बाई 17—20 इंच तक होती है।

यह केवल घने जंगलों से आच्छादित पहाड़ी क्षेत्र में ही रहता है और रात में ही अधिक शिकार करता है, परन्तु दिन में भी निकलने में उसे कोई असुविधा नहीं होती। हालांकि यह काफी पाया जाता है, पर फिर भी दिखाई बहुत कम देता है। वह झाड़ियों और पेड़ों पर शिकार करता घूमता रहता है। कभी-कभी वह पांच और सात की टोलियों में भी पाया जाता है। इधर-उधर घूमते समय चितराला एक हलकी चख चख की आवाज करता रहता है। इसकी खुराक कीड़े-मकोड़े, छोटे जानवर, अंडे और चिड़ियां हैं। बारहसिंगों के बच्चों को भी यह खा जाता है। पहाड़ी क्षेत्र में पालतू पक्षियों का चितराला बहुत नुकसान करता है। मादा चितराला एक बार में कई बच्चे देती है।

30–कथियान्याल (Yellow Bellied Weasel)

दस इंच लम्बा कथियान्याल, जिसके 4—5 इंच की पूंछ होती है, हमारे देश में केवल हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है और वह भी नेपाल भूटान की ओर के जंगलों में तीन हजार फुट से आठ हजार फुट की ऊंचाई तक। चितराला से यह बहुत मिलता जुलता है और उसी उपवंश का जीव है।

कथियान्याल का रंग कत्थई होता है। इसकी पीठ, चेहरा और सिर का ऊपरी भाग तो गहरे कत्थई रंग का होता है, लेकिन नीचे का सारा भाग चमकदार पीले रंग का। ठोड़ी और ऊपरी होंठ सफेद जैसे प्रतीत होते हैं और पूंछ बिल्कुल कत्थई। इसके अतिरिक्त हिमालय में दो प्रकार के कथियान्याल और पाए जाते हैं, जिनके नाम हैं—हिमालय का कथियान्याल और धारीदार कथियान्याल। हिमालय के कथियान्याल के पेट का भाग कत्थई रंग का होता है, जबकि धारीदार कथियान्याल के, जो सिक्किम का कथियान्याल भी कहलाता है पीठ पर पीली धारियां होती हैं।

इसकी ग्रंथियों से पीला और गाढ़ा पदार्थ निकलता है, जिसकी दुर्गन्ध से उसके पसन्द न करने वाले प्राणी भाग जाते हैं। शौकीन नेपाली लोग इसे पाल लेते हैं तो यह पल जाता है। चूहे वह खूब खाता है।

कथियान्याल की खुराक चूहे, चिड़ियां और अंडे आदि हैं। अपने से चौगुने आकार के प्राणी पर भी झपट पड़ने और उसे अपने तेज नाखूनों से मार कर खा जाने में भी कथियान्याल नहीं हिचकता।

31--बिज्जू (Ratel)

चितराला वंश के बिज्जू उपवंश का प्रमुख जीव बिज्जू है। हमारे देश में यह उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक सब जगह पाया जाता है। पहाड़ी प्रदेशों में जहां



मिट्टी खोदने के लिए उपयुक्त स्थान होते हैं वहां बिज्जू नालों और खारों के निकट अपने रहने की जगह बना लेता है।

बिज्जू की लम्बाई 26 से 32 इंच तक होती है और बालों सहित पूंछ की लम्बाई 6 से 6½ इंच तक होती है। बिज्जू के रंग के विषय में बड़ी विचित्र बात यह है कि जैसे अन्य पशुओं का ऊपरी रंग गहरा और पेट का रंग हलका होता है वैसे इसका ऊपरी रंग तो सिलेटी होता है, पर पेट और पैरों का भीतरी भाग और बगलें काले रंग के होते हैं। बिज्जू के शरीर पर मोटे और लम्बे बाल होते हैं, जो सूअर के बालों की तरह खड़े नहीं होते वरन कंधे से पूंछ तक काढ़े गए से प्रतीत होते हैं। बिज्जू की टांगे अपेक्षाकृत छोटी होती हैं और पैरों के नख भीटा खोदने में बड़े सहायक होते हैं। भींटा बनाते समय बिज्जू अपने अगले पैरों से खुदाई करता है और खुदी हुई मिट्टी को पिछले पैरों से पीछे फेंकता जाता है। भेड़िया, सियार और लोमड़ी तथा सेही जब भींटा खोदते हैं, तब अगले पंजों से खुदाई करते हैं और उन्हीं से मिट्टी फेंकते हैं, पर बिज्जू एक साथ दोनों काम करता जाता है। इसीलिए कहते हैं कि बिज्जू के अगले पैर कुदाली और पिछले पैर फावड़े का काम करते हैं। बिज्जू के बराबर खुदाई के काम में दक्ष कोई दूसरा जीव नहीं होता। वह जो भींटा बनाता है वह 25—30 फुट लम्बा होता है। उसके शक्तिशाली जबड़े में 32 दांत होते हैं।

बिज्जू सर्वभक्षी है। वह कीड़े-मकोड़े, चिड़ियां, छोटे जानवर, फल फूल और शहद बड़े स्वाद से खाता है। खरगोश, चूहे और सांप तथा चिड़ियां तो वह लाकर अपने भीटे में एकत्रित कर लेता है। चिड़ियां पकड़ने में तो वह बड़ा ही दक्ष होता है। मुर्दा खाने वाला बिज्जू रहता बड़ा साफ सुथरा है। अपने भींटे को बड़ा साफ रखता है और एकत्रित की गई खाद्य सामग्री को बड़े करीने से सजाता है।

स्वभावतः बिज्जू रात में ही शिकार करने वाला प्राणी है। दिन में तो वह अपने भींटे में पड़ा सोता रहता है। रात में वह प्रायः जोड़े में निकलता है और अपना शिकार मारता खाता है। बच्चों और जानवरों की लाशें कितनी ही गहरी गाड़ दी जाएं, पर बिज्जू उन्हें खोद कर निकाल लेता है। बिज्जू की इसी चतुराई को आधार मानकर चतुर लड़के या आदमी को 'बिज्जू' कहकर संबोधित करते हैं, क्योंकि बिज्जू लाश को ढूंढ निकालने में बड़ी चालाकी बरतता है। कब्रें खोद कर उनमें से छोटे बच्चों की लाशों को वह निकाल ले जाता है। बड़ी लाशों से मांस नोच ले जाता है। कई अंग्रेज लेखकों का मत है कि बिज्जू के विषय में कब्र खोदने की बात निराधार है। पर लेखक ने गड्ढों में गड़ी बच्चों की लाशों को खुदा पाया देख कर निरीक्षण किया तो बिज्जू के खोज मिले। अन्धेरे में कब्रिस्तान में लेखक ने कई बार बिज्जुओं को देखा है, इससे अनुमान है कि वह गड़ी लाशों को खोदकर खाता है।

वैसे बिज्जू बहुत साधारण जानवर है, पर कभी-कभी वह पड़ोस के घरों में चढ़ कर असावधान माताओं के पास से या बच्चों के बिस्तरों से दूध पीते बच्चों को उठा ले जाता है। गांवों में स्त्रियां इसलिए बिज्जू से बहुत सतर्क रहती हैं। अपनी रक्षा बिज्जू पंजों और दांतों से करता है, क्योंकि वह तेज नहीं दौड़ सकता।

मादा बिज्जू एक बार में कई बच्चे देती है। बिज्जू आसानी से पाला जा सकता है और जिस पिंजड़े में वह बन्द करके रखा जाता है उसमें जितनी बार वह इधर से उधर चढ़ता है उतनी ही बार कलामुंडी खाता है।

32–बालू-भालू (Hog Badger या Sand Badger)

चितराला वंश के बिज्जू उपवंश का बालू-भालू एक विशेष प्राणी है। इसे भालू-सूअर या चिरिक-भालू भी कहते हैं। इन सब नामों का कारण यह है कि एक तो यह भालू और सूअर दोनों जैसा देखने में प्रतीत होता है और दूसरे यह नदी के किनारे बालू के टीलों में रहता है।

हमारे देश में यह पूर्वी हिमालय से असम तक पाया जाता है । बालू-भालू का एक छोटा प्रकार भी होता है, जो असम में पाया जाता है।

भारतीय बालू-भालू की पूंछ की लम्बाई उसके शरीर की लम्बाई से एक तिहाई होती है। उसके कान गोल और छोटे, आंखें छोटी, थूथन नंगी और लम्बी होती हैं। उसके शरीर का रंग गंदा सिलेटी, लेकिन पीठ कालेपन पर होती है। छोटे और कड़े बाल सफेदी की झलक लिए होते हैं । ऊपर के होंठ के दोनों किनारों पर एक-एक भरी या काली धारी होती है। यह काली धारी आंखों के ऊपर होकर कान तक चली जाती है। शरीर का नीचे का भाग हलका होता है, ऊपर का गहरा । भारतीय बालू-भालू की लम्बाई नाक के सिरे से पूंछ की जड़ तक ढाई फुट होती है और बालों सहित पूंछ की लम्बाई 11 इंच होती है । उसका सिर, गला, पूंछ और दोनों बगलों के बाहरी भाग सफेद से होते हैं और नीचे का सारा भाग धुमैला सा होता है।

बालू-भालू जंगल की ऊबड़-खाबड़ पथरीली जमीन में रहता है और चट्टानों की खोहों में अपने खोदे भ‌ाटे में घर बनाता है। यह पूर्णतया रजनीचर है। यह मांसाहारी है और रात होते ही भोजन की तलाश में अपने स्थानों से निकल आता है। इसकी खुराक फल-फूल, कीड़े मकोड़े, जड़ें आदि हैं। पालतू बनाए जाने पर यह मछली, मांस, फल खूब खाता है। केंचुए तो इसे बहुत भाते हैं।

भालू की तरह इसके सूंघने की शक्ति बड़ी तीव्र होती है । अपने लिए बनाए गए भोटे में यह दिन भर पड़ा रहता है और तनिक भी सन्देह होने पर सूअर की तरह घुरघुराता है। क्रोधित होने पर बड़ी भयंकरता से काट भी लेता है। दृष्टि उसकी बहुत कमजोर होती है। सूअरों की तरह थूथन ऊपर उठा कर बालू-भालू आने-जाने वाले की गन्ध लेता है।

मादा बालू-भालू एक बार में दो बच्चे देती है।

33–ऊदबिलाव

चितराला वंश का ऊद एक उपवंश है । इस उपवंश के जीव जल और थल दोनों में रह लेते हैं । इस उपवंश के पैर बतखों के पंजों की तरह जुड़े होते हैं । भारत में इस उपवंश में कई प्रकार के ऊद पाए जाते हैं। इनके छोटे और गोल पैर होते हैं। पहली नजर में ऐसा प्रतीत होता है मानो नेवले का आकार बढ़ा दिया गया हो, पर टांगें छोटी ही रहने दी गई हों । ऊदों के छोटे-छोटे मुड़े हुए भोथरे नख होते हैं। ऊदबिलावों के चौड़े चपटे सर, छोटे-छोटे कान, लम्बोतरे शरीर और मोटी गरदन होती है ।



ऊदबिलाव

ऊदविलाव के शरीर पर बालों की दो तहें होती हैं तथा इसका समूर बड़ा उपयोगी होता है। इसके बदन का ऊपरी भाग भूरा और ललछौंह मिला होता है। शरीर के नीचे का हिस्सा पूंछ, गला और टांगों का भीतरी भाग कुछ राखी मायल सफेद होता है। ऊदविलाव का वज़न 15 पौंड से 20 पौंड तक होता है। दो फुट लम्बे ऊदविलाव के $1\frac{1}{2}$ फुट लम्बी पूंछ होती है। आमतौर पर ऊद के 36 दांत होते हैं, जिसमें से दोनों जबड़ों में कृंतक दांत 3/3, कीले 1/1, दूध की डाढ़ें 4/3, और डाढ़ें 1/2 होती हैं। ऊदविलाव के शरीर पर के समूर की दुहरी तहें उसे सर्दी लगने से बचाती हैं और दांतों की विशेषता यह है कि मछली जैसा फिसलना शिकार भी वह आसानी से गपक लेता है और डाढ़ों से कड़े छिलके भी उतार देता है।

अपने पंजों की झिल्ली के कारण ऊदविलाव पानी में बड़ी आसानी से तैर लेता है। ऊद प्रायः टोली में रहते हैं और टोली में ही शिकार करते हैं। इनकी खास खुराक मछली होती है, जिसमें से वह बढ़िया भाग खाता जाता है और रद्दी को नदी के किनारे फेंकता जाता है। ऊद की टोली अर्धचन्द्राकार बनाकर नदी में शिकार खेलती है। उसकी आंखों पर मगर की-सी झिल्ली होती है, जिसके कारण उसकी आंखों में पानी नहीं जाता। नदी के किनारे ऊद अपने लिए भीटा बना लेता है। वह भीटा पानी की सतह के निकट ही होता है। आतंकित होने पर एकदम पानी में कूद जाता है। लोमड़ी के समान अपने भीटे के वह भी कई मुंह बनाता है। ऊद की टोली में माता-पिता छोटे और बड़े बच्चे होते हैं। भारत में तो ऊदविलाव सब प्रकार के तालाबों में और नदियों में रहते हैं। ऊदविलाव को शीतनिद्रा तो होती नहीं, अतः जाड़ों में इसे भोजन की बड़ी दिक्कत होती है और मछली, मेंढक, केंकड़ों के अभाव में कभी-कभी वह स्थल पर भाग खड़ा होता है और पालतू मुर्गियों आदि को बहुत हानि पहुंचाता है। यहां तक कि कभी-कभी मेमनों तक को खा जाता है। अंडों का तो वह बहुत शौकीन है। ऊदविलाव के मजबूत नुकीले दांत होते हैं और डाढ़ों पर नुकीली गांठें होती हैं। कीलों की नोकें भीतर को मुड़ी होती हैं, बस एक बार जब ऊद शिकार पकड़ ले तो फिर शिकार उसके चंगुल में से निकल नहीं सकता।

मादा ऊद प्रायः जाड़ों में दो से पांच तक बच्चे देती है जिनकी आंखें जन्म के समय बन्द रहती हैं। मादा ऊद बच्चों को बेहद प्यार करती है और उनके रक्षार्थ प्राण भी देने को तैयार रहती है।

ऊद समझदारी और चालाकी में बड़ा ही बढ़ा-चढ़ा प्राणी है और अपने फंसने के लिए लगाए गए जालों को वह बड़ी चतुराई से बचा जाता है। आतंकित होने पर

ऊद एक प्रकार की भौंक की-सी आवाज करता है और अपने साथियों को एक सीटी-सी बजा कर आतंक सिग्नल दे देता है। अपनी रक्षा के लिए वह भयंकर लड़ाई लड़ता है और अंतिम सांस तक लड़ाई जारी रखता है। हर एक कुत्ता तो ऊद से लड़ भी नहीं सकता। बस, ऊदविलाव के शिकार के लिए जो कुत्ते होते हैं और जिन्हें ऊद शिकारी कुत्ते कहते हैं, वे ही उन्हें भुगन पाते हैं। मछलियों का शत्रु और भयंकर लड़ाका ऊद अजगर को भी मार बैठता है। मेजर कौर्वेट ने लिखा है कि एक विशालकाय अजगर एक झील में रहता था और उसको चिड़ियाघर के लिए पकड़ने का प्रबन्ध था, पर एक ऊद-विलाव के जोड़े ने उस अजगर को मार डाला।

ऊद निशिचर होता है, इसलिए दिन में दिखाई कम पड़ता है, पर फिर भी प्रातः-काल 9-10 बजे तक इसे मछलियों का शिकार करते देखा जा सकता है। हमारे देश के शीतप्रधान क्षेत्रों की नदियों में पाए जानेवाले ऊद की खाल को लोग कपड़ों के अस्तर में लगवाते हैं। वहां इसका मांस भी खाया जाता है।

यदि छोटे ऊद को पकड़ लिया जाए, तो वह आसानी से पल जाता है और कुत्ते की भांति मालिक के साथ-साथ चलता है। मछली के शिकार के शौकीन लोग कई-कई ऊदों को एक साथ पालते हैं और गले में पट्टा डाल कर बड़ी शान से उन्हें रखते हैं। इसके सूंघने की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि यदि पालतू ऊद को 15—20 मील दूर छोड़ दिया जाए और छोड़नेवाला आंख बचा कर चला आवे, तो ऊद अपने मालिक के पास बड़ी आसानी से आ जाता है। पालतू ऊद अपने मालिक के लिए मछलियां पकड़-पकड़ कर लाते हैं।

भारतवर्ष में तीन विशेष प्रकार के ऊद पाए जाते हैं :—**(1) चिकना भारतीय ऊद (2) नाक पर बालों वाला ऊद, (3) बिना पंजों का ऊद।**

1. चिकने भारतीय ऊद की थूथन नंगी होती है और समूर छोटा, पर बड़ा सुन्दर और चिकना होता है। ऊपरी जबड़े की दाढ़ें बहुत मजबूत होती हैं। सारे भारतवर्ष में पाया जानेवाला ऊद यही ऊद होता है। ऊपर जिस ऊद का वर्णन किया गया है बिल्कुल उसी तरह की इसकी आदतें तथा अन्य सब बातें होती हैं।

2. नाक पर बालों वाले ऊद की थूथन पर बाल होते हैं और दांत अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। इस प्रकार का ऊद उत्तरी भारत में शिवालिक पहाड़ियों के आसपास पाया जाता है।

3. बिना पंजोंवाला भारतीय ऊद आकार में अन्य ऊदों से छोटा होता है तथापि उसके पंजे होते ही नहीं हैं। अन्य ऊदों से इसका सिर भी छोटा होता है। इस ऊद की लम्बाई नाक के सिरे से पूंछ की जड़ तक 22 इंच से 24 इंच तक होती है, तथापि पूंछ की लम्बाई $10\frac{1}{2}$ इंच से 13 इंच तक होती है। भारतवर्ष में इसका निवास हिमालय में नीचे की ओर, बंगाल में नीचे की ओर तथा नीलगिरि पहाड़ियों में है।

आकार के हिसाब से ये भेद हैं, पर वस्तुतः अन्य किसी भी बात में अर्थात भोजन, स्वभाव आदि में सभी भारतीय ऊदविलावों में कोई अन्तर नहीं होता।

7—शफ वर्ग

स्तनपोपी जीवों में शफ वर्ग—खुर और सुम वाले—के जीव सबसे अधिक हैं। यों तो शफ वर्ग के जीवों तथा अन्य स्तनपोपी जीवों में स्तनपोपी होने के नाते अनेक समताएं हैं, पर शफ वर्ग के जीवों की विशिप्ट विशेपताएं हैं। शफ वर्ग में कई उपवर्ग, वंश और उपवंश भी हैं।

जीवन के विकास-क्रम में मांस भक्षी वर्ग के जीवों से शफ वर्ग के जीव अधिक विकसित हैं और आवश्यकतानुसार उनके पंजे चिरे खुर और सुमों के रूप में आ गए। उनकी शरीर-रचना और खुराक में भी परिवर्तन आया है। शफ वर्ग के जीवों के दांत घास-पात को चवाने के लिए वनाए गए हैं। इस वर्ग के जीवों और गाय भैंस जैसे विकसित जीवों की दंतावली ऊंची होती है। इस वर्ग के कम विकसित जीवों—जैसे सूअर और टेपिर के कपोल दांतों के कालम छोटे होते हैं। इस वर्ग के अधिकांश जीवों के दांतों का ऊपरी भाग ऊंचा होता है। शफ वर्ग के जीवों के मांस भक्षी जीवों की अपेक्षा दाढ़ें बहुत होती हैं। शफ वर्ग के जीवों के कुकुर दांत या तो होते ही नहीं और होते हैं तो नाममात्र को। ऊपर और नीचे के जबड़ों में कभी-कभी कीलें और कृंतक दोनों ही नहीं होते।

शफ वर्ग के जीव खुश्की पर रहनेवाले प्राणी हैं। इनमें कुछ तो सर्वभक्षी भी हैं, पर अधिकांश घास और शाक खानेवाले ही होते हैं। इनके प्रत्येक जवड़े में दाढ़ों के तीन जोड़े होते हैं। शरीर रचना में इनकी पसलियां आगे और पीछे की गति के लिए विशेष रूप से बनाई गई हैं। इस वर्ग के जीवों की एक विशेपता है कि खुश्की के सबसे विशालकाय जीव इसी वर्ग में होते हैं।

शफ वर्ग के जीवों के सींग भी होते हैं, जो विभिन्न प्रकार के होते हैं या नहीं भी होते हैं। इस वर्ग के जीव शीत प्रधान देशों से लगा कर उप्ण प्रधान क्षेत्रों तक मिलते हैं, पर सबसे अधिक संख्या इनकी उप्ण प्रधान देशों में है। इसके अतिरिक्त समुद्र-तट से बीस हजार फुट तक की ऊंचाई तक इस वर्ग के जीव पाए जाते हैं। इस वर्ग के उपवर्ग वंश और जीवों में इतनी भिन्नता है कि साधारण व्यक्ति इनको समझने में घबरा सकता है, पर मुख्य बातें समझ लेने से फिर कोई कठिनाई नहीं होती। प्राणिशास्त्र के अनुसार भारतीय शफ वर्ग के प्राणी तीन उपवर्गों में विभाजित हैं—

1. **गज-उपवर्ग**
2. **अश्व-उपवर्ग**
3. **गो-उपवर्ग**

इन तीनों उपवर्गों के वंशों के जिन प्राणियों की चर्चा आगे की गई है वे इस प्रकार हैं—

1. **गज-वंश**
2. **गेंडा-वंश**
3. **शूकर-वंश**

4. अश्व-वंश
5. गो-वंश
6. बारहसिंगा-वंश
7. गवय-वंश
8. पिसूरी-वंश
9. अज-वंश
10. घुएड़ उपवंश

शफ वर्गों के वंश तथा उपवंशों में जो भारतीय जीव आते हैं उनका ही वर्णन पाठकों की सुविधा के अनुसार किया है और अति सूक्ष्म वैज्ञानिक बारीकियां छोड़ दी गई हैं।

●गज-वंश (Family Elephantidae)

गज-वंश अपने उपकक्ष का एक ही वंश है। इस वंश में भी दो प्रकार के हाथी होते हैं--अफ्रीकन हाथी और भारतीय हाथी। हमें यहां केवल भारतीय हाथी का ही वर्णन करना है पर उससे पहले इस वंश की विशेषता जानना परम आवश्यक है।

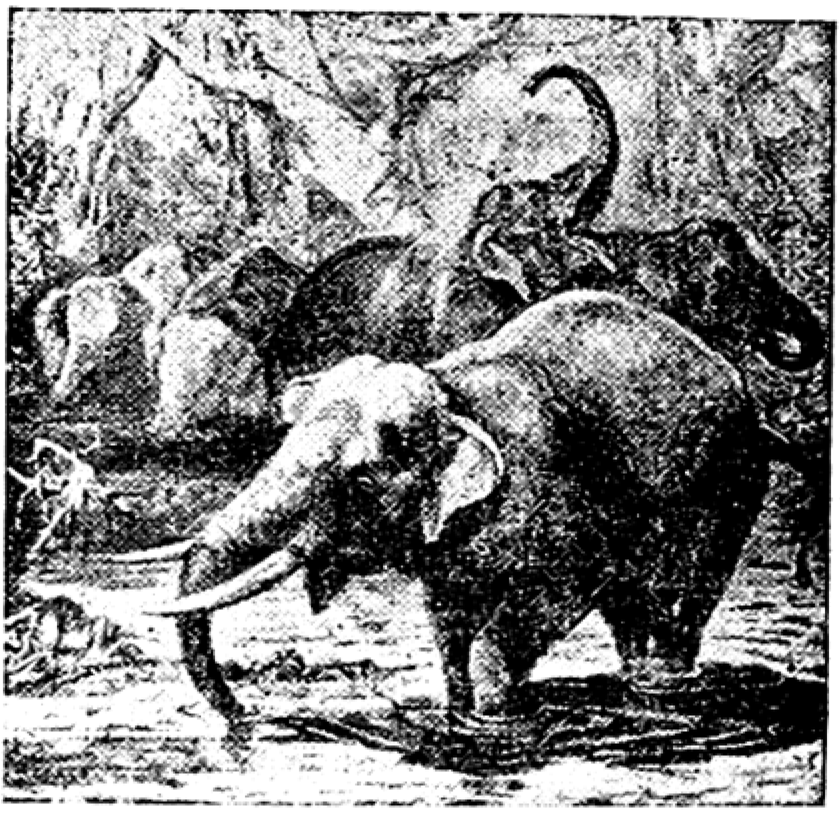
इस वंश के जीवों की एक विशेषता तो है उनकी सूंड, जो कई इंद्रियों का काम करती है। हाथी सूंड से ही सूंघता है और स्पर्श के लिए हो वह विशेष इंद्रिय है, वैसे सूंड हाथी के हाथ का भी काम देती है। शाखाओं को तोड़ना, पानी अपने ऊपर उडेलना आदि। यदि सूंड न रहे तो हाथी जीवित ही नहीं रह सकता। दूसरी विशेषता इस वंश की है दो लंबे दांत ((Tusk) की, जो मुंह के बाहर भी कई फुट निकले रहते हैं। खुश्की के स्तनपोषी जीवों में हाथी सबसे बड़ा और भारी होता है।

34—हाथी (Elephant)

भारत में हाथी उत्तर प्रदेश के देहरादून जिले से तराई के किनारे-किनारे गढ़वाल कुमाऊं तराई और असम के जंगलों तथा दक्षिण में विशेषकर मैसूर में पाया जाता है। खुश्की के जानवरों में सबसे बड़ा और सबसे समझदार हाथी होता है। स्वाभाविक शान, समझदारी, स्मरण-शक्ति और स्वामिभक्ति का दीर्घकाय बलवान प्रतीक हाथी भारत की एक शान है। हां अफ्रीकी हाथी से भारत का हाथी छोटा होता है और सिर तथा दांतों की बनावट में भी भिन्न होता है।

इस भारी शरीरवाले पशु की लंबाई उसकी ऊंचाई से तिगुनी होती है। नर हाथी की ऊंचाई 9-10 फुट तक होती है और सूंड की नोक से पूंछ के सिरे तक की लम्बाई इसकी तिगुनी होती है। हथिनी की ऊंचाई 8 फुट होती है। हमारे देश के हाथी का रंग कालिमा लिए हुए सिलेटी सा होता है और वजन अस्सी मन के लगभग होता है, पर अफ्रीकी हाथी का वजन हमारे देश के हाथी की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। हाथी की

पूंछ अगर हिलाने में भी किसी के लग जाए तो ऐसा मालूम पड़ेगा कि किसी ने लट्ठ मार दिया हो ।



आनन्द मनाते हुए हाथियों का एक झुण्ड

हाथी की सूंड उसके शरीर का एक विचित्र तथा आवश्यक अंग है । उससे वह बड़े-से-बड़े, छोटे-से-छोटे तथा कठिन-से-कठिन काम लेता है । सूंड की नोक पर अंगुली सी होती है, जिससे वह जमीन से सुई तक उठा लेता है । सूंड में ही पानी भर कर वह मुंह में उंडेल कर पीता है । सूंड में ही पानी भर कर वह अपने शरीर पर छिड़कता है । गर्मियों में वहुत गरमी लगने और पानी न मिलने पर वह सूंड को मुंह में डालकर भीतर से पानी मिला थूक निकाल कर वह पीठ पर छिड़क लेता है । अगर हाथी खड़ा हो और मक्खियां काटती हों तो वह पेड़ पर से शाखा तोड़ कर सूंड में पकड़ कर आदमी की तरह अपने शरीर पर शाखा का पंखा झलता है ।

नर हाथी के मुंह में दो दांत (Tusk) बहुत बड़े-बड़े होते हैं, यहां तक कि सात-आठ फुट लम्बे होते हैं । इन बड़े दांतों से वह खाना तो नहीं खाता पर यह कहावत गलत है कि वे दांत केवल दिखाने के ही होते हैं । वे दांत केवल दिखाने के नहीं होते । अगर नर हाथी के ये बाहरी बड़े दांत न हों तो उसकी शक्ति आधी रह जाएगी । नर हाथी को अपने झुंड के रक्षार्थ तथा अन्य मौकों पर लड़ना पड़ता है और वह इन दांतों को अपने शत्रु के शरीर में घुसा देता है । बोझा ढोने का काम आ पड़ने पर हाथी इन्हीं दांतों पर शहतीर रख लेता है । हथिनियों में ये बाहरी दांत बहुत छोटे होते हैं । खाने के दांत हाथी के मुंह के भीतर होते हैं । हाथी को अपने दांतों से प्रतिदिन कई मन हरी शाखा और बांसों का रस अपनी खुराक के लिए निकालना पड़ता है । इसलिए उसके जीवन-काल में कम से कम चार बार दांत बदले जाते हैं ।

हाथी की सूंघने की शक्ति बड़ी तीव्र होती है । अपनी ओर को बहनेवाली वायु में ऊपर को सूंड उठा-उठा कर वह एक मील दूर तक के आदमी की गंध पा जाता है । स्वभाव से हाथी आदमी और शेर इन दो की गंध से ही डरता है । दृष्टि-शक्ति और सुनने की शक्ति हाथी में अच्छी नहीं होती । इस भीमकाय मोटी खालवाले जानवर के शरीर पर बाल नहीं होते फिर भी अपनी चर्बी और मोटी खाल के कारण इसे बहुत गरमी लगती है । पानी में तैरना, लोटना, खेलना, स्नान करना और कीचड़ में सना रहना हाथी को बहुत पसन्द है । घने सायेदार जंगलों को हाथी बहुत पसन्द करते हैं । केला,

धान और ईख खाने का हाथी बहुत शौकीन होता है और उन्हें खाने के लिए रात में गांवों की तरफ आता है तथा ठंडक में चर कर दोपहर का समय बांसों के झुरमुटों की घनी छाया में विताता है।

अपनी प्राकृतिक अवस्था में हाथी झुंड में रहनेवाला जानवर है और जब हाथियों का झुंड चलता है, तब एक के पीछे एक हाथी पंक्ति बांध कर चलता है। झुंड का नेतृत्व कोई हथिनी करती है, पर जब शेर का खतरा होता है तब बच्चे बटोर कर एक जगह कर दिए जाते हैं और दंतैल विशालकाय नर सामने आ जाते हैं। खुश्की के दिनों में जब पानी का अभाव हो जाता है तब हाथियों का वह झुंड कई छोटे-छोटे झुंडों में विभाजित हो जाता है, और गर्मियों के बाद बारिश आने पर फिर पहले की तरह एक साथ मिल जाता है।

सितम्बर से नवम्बर तक हथिनी 19-20 मास में एक बच्चा देती है। पर कुछ 22 महीने भी लेती हैं। हथिनी में अन्य पशुओं की अपेक्षा यह बात होती है कि हथिनी के थन अगली टांगों के बीच में होते हैं, अन्य पशुओं की तरह पेट पर या पिछली टांगों में नहीं होते। जन्म के समय बच्चे का वजन 2½ मन के करीब होता है।

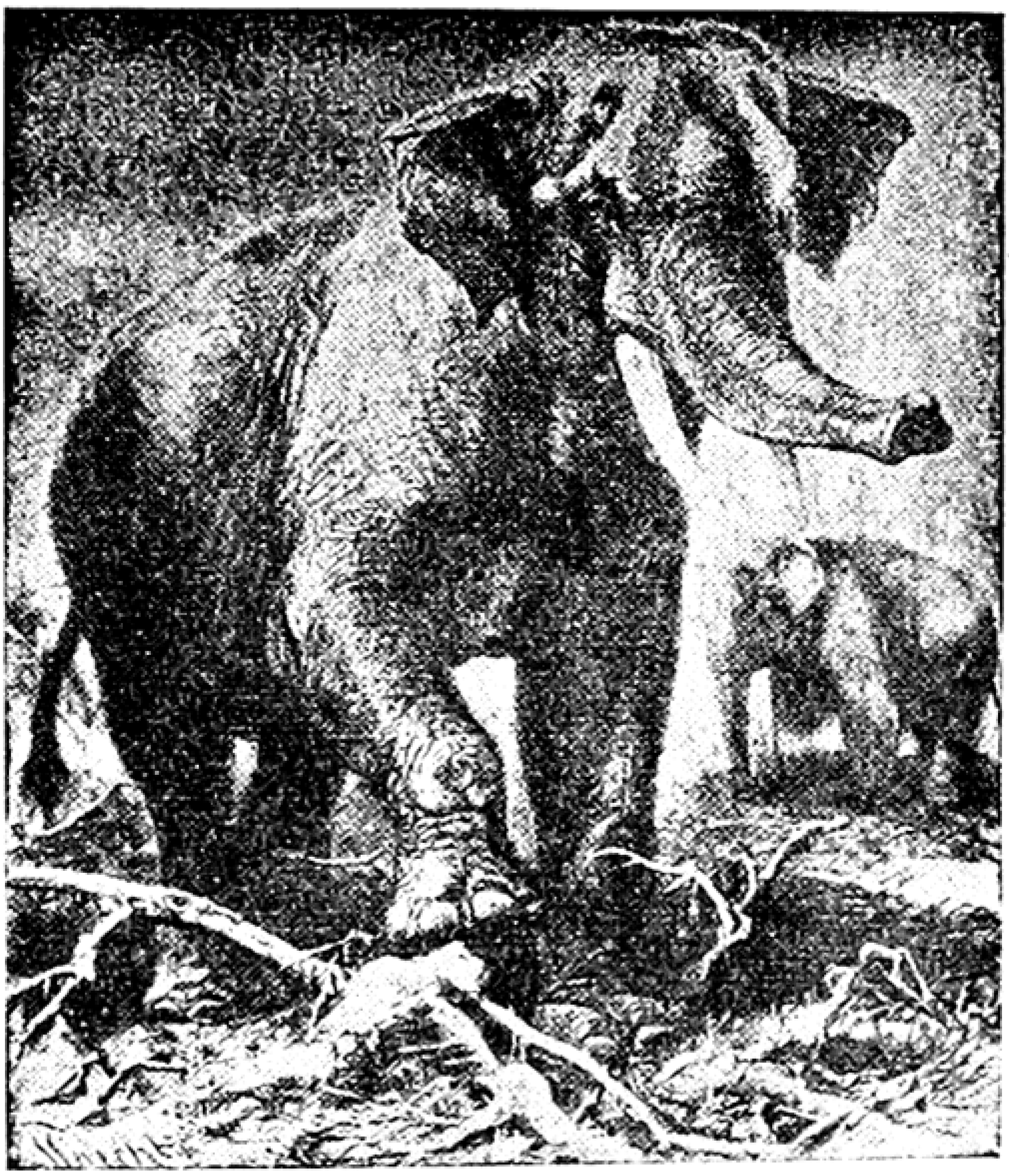
जंगली हालत में हाथी कई मास तक बैठता नहीं है, क्योंकि शेर या किसी अन्य खतरे के आने पर फिर वह अपने भारी शरीर को शीघ्रता से उठा नहीं सकता। किसी बड़े पेड़ के सहारे टिक कर खड़ा होकर वह खड़े-खड़े सो लेता है। हाथी की आयु 50 वर्ष तक की बताई गई है और चालीस वर्ष की आयु में वह पूरा जवान हाथी हो पाता है। हाथी के कानों से उसकी आयु का पता चलता है। कानों की कोर जितनी भीतर सिकुड़ी होगी उतनी ही अधिक हाथी की उम्र होगी।

बांसों के घने जंगल जितने हाथी को प्रिय हैं, उतना ही वह दलदल से घबराता है और पुलों को पार करने में तो बड़ी समझदारी से काम लेता है। जरा भी पुल कमजोर हो तो वह आगे नहीं बढ़ेगा। दलदल में फंस जाने पर फिर उसकी मौत ही हो जाती है। भारत की भयंकर गर्मी में धूप को हाथी बिल्कुल पसन्द नहीं करता है। बदली और ठंडे मौसम में बड़े आराम और प्रेम से यात्रा करता है।

हाथी को शिकार के लिए जब सिखाते हैं तब पहले मरे शेर की गंध इसे बसाई जाती है और नकली शेर से लड़ाया जाता है। काफी अधिक और अच्छे ढंग से सिखाए जाने के बाद भी हाथी की अपेक्षा हथिनी शिकार में अच्छा काम करती है और अधिक उपयुक्त होती है।

जितने भी हाथी पालतू किए जाते हैं और काम में लाए जाते हैं, वे सब के सब जंगल से पकड़ कर आते हैं। उनको पकड़ कर लाने और पालतू बनाने का तरीका बड़ा रोचक है। एक बहुत बड़ा मजबूत लट्ठों का बाड़ा बनाया जाता है, जो जंगल में स्वाभाविक सा प्रतीत होता है। इसमें एक बहुत बड़ा दरवाजा खुला छोड़ दिया जाता है और दरवाजे में बहुत दूर बाहर से ही भीतर तक हरा चारा—गन्ने इत्यादि रख दिए जाते हैं। स्वभावतः ही स्वादिष्ट वस्तुओं के चटोरे हाथियों का झुंड जब जंगल में दिखाई पड़ता है, तब उस बाड़े की ओर आने की उसे प्रेरणा दी जाती है। इस प्रकार झुंड बाड़े में घुस आता है और तब पीछे से बाड़े का दरवाजा बन्द कर

दिया जाता है। फिर जिन हाथियों को पकड़ना होता है उनके पैरों में बाहर से पालतू हाथियों पर बैठ कर फंदा डाला जाता है। फंदा पड़ जाने पर बाड़ा खोल दिया जाता है। झुंड भाग जाता है और कैद किए गए एक-एक हाथी को दो-दो पालतू हाथियों के



पालतू हाथी

बीच फंसा कर ले जाया जाता है और पर्याप्त दिनों तक पालतू हाथियों के बीच में बांधा जाता है। धीरे-धीरे स्नेह और सद्व्यवहार तथा समझदारी से वे पालतू बन जाते हैं और मनुष्य के अनेक कामों में सहयोग देते हैं। हथिनियां पालतू हालत में बहुत ही कम बच्चे देती हैं। अगर कभी ऐसा हो भी जाए तो वह भारत में बड़ा अपशकुन माना जाता है, जो हथिनी के मालिक या राजा के लिए बुरा समझा जाता है।

हाथी की समझदारी पर अगर लिखा जाए तो न जाने कितने ग्रंथ तैयार हो जाएं। जब हाथी समझ जाए कि अमुक काम के करने से अमुक लाभ होगा तो वह स्वतः ही करने लगेगा। एक बार एक हाथी की आंखें खराब हो गईं और दिखाई पड़ना बन्द हो गया। दुखी महावत ने उसे बड़ी कठिनाई से लिटा कर डाक्टर से दवा डलवाई। हाथी दर्द से चिल्लाया और उठ खड़ा हुआ, पर जब अगले दिन उसने अनुभव किया कि उस आंख से उसे दिखाई देने लगा है तब डाक्टर को देख कर वह लेट गया और दूसरी आंख डाक्टर के सामने कर दी। दूसरी आंख में दवा डलवाई और बड़े स्नेह तथा

कृतज्ञता से डाक्टर के साथ व्यवहार किया। ऊंट की तरह हाथी कीनेबाज नहीं होता। हाथी अपने मार्ग में छोटे बच्चों को कुचलता नहीं है। सूंड से उठाकर बड़ी सावधानी से अलग रख देता है। गांव के मार्गों में ऐसी घटनाएं प्रायः हो जाती हैं जहां स्त्रियां जहां-तहां बच्चों को सुला देती हैं।

महावत और महावत के कुटुम्ब से हाथी बड़ा स्नेह करता है। इसलिए महावत अपने दूध-पीते बच्चों को, आवश्यकता पड़ने पर हाथी की देख-रेख में छोड़ जाते हैं। एक बार एक महावत को सपत्नीक जंगल में जाना पड़ा। महावत के एक दुधपिया बच्चा था। हाथी की टांग में जंजीर बांध कर महावत ने पेड़ से बांध दिया और पास ही जमीन पर एक कपड़े पर अपने बच्चे को लिटा कर महावत की पत्नी नदी पर पानी भरने गई तो मार्ग भूल गई। महावत भी न लौट सका। शाम पड़ते ही दो चरखे अपनी मांद से निकले। उन्हें बच्चे की गन्ध मिली और वे हाथी के समीप आए। चरखों ने बच्चे को लेने के लिए बड़ी चालें चलीं। वे हाथी के दोनों ओर हो गए ताकि किसी न किसी के पल्ले वह बच्चा पड़ जाए। बच्चा हाथी की पहुंच से कुछ दूर था। हाथी ने बहुत जोर लगाया कि बच्चे के पास पहुंच जाए और अन्त में उसने अपनी पूरी शक्ति लगा कर जंजीर को तोड़ डाला और बच्चे पर झपट्टा मारने वाले चरखे को अपनी टांग के धक्के से मार गिराया। दूसरे चरखे को उसने सूंड में पकड़ कर इतनी दूर फेंका कि उसका भी भुरता बन गया। बच्चे को उठाकर हाथी पेड़ के पास ले आया, और उसके ऊपर थोड़ी सी घास और पेड़ की फुनगियां रख कर उसे छिपा दिया। प्रातःकाल के समय महावत और उसकी पत्नी आ सके पर बच्चे को अपने स्थान पर न पाकर वे हाथी को गालियां देने लगे। पर बाद में पत्तों में छिपे हुए बच्चे को तथा चरखों की लाशों को देख कर वे समझे कि हाथी ने रात भर उस बच्चे की कैसे रक्षा की।

यह कहानी तो बड़ी प्रसिद्ध है कि एक पालतू हाथी को महावत एक तालाब में पानी पिलाने ले जाता था। मार्ग में एक दर्जी की दुकान थी। जब-जब हाथी निकलता तब-तब दर्जी उसे कुछ खाने की चीज देता। क्रम ऐसा बंध गया कि जब हाथी निकलता तब सूंड भीतर दुकान में कर देता और कुछ लेकर चला जाता। एक दिन दर्जी को हँसी सूझी और कुछ खाना न देकर उसने सूंड में सूई चुभो दी। हाथी चुपचाप पानी पीने चला गया और उधर से पीने के बाद अपनी सूंड में गंदला पानी भरा और लौटते समय दर्जी की दुकान में सब गंदला पानी दर्जी के ऊपर जोर से उड़ेल दिया।

कभी-कभी हाथी के चारे में या घास में जहरीले सांप आ छिपते हैं और सूंड से चारा उठाते में सांप सूंड काट खाता है तो हाथी मर जाता है, पर ऐसा होता बहुत कम है। कारण यह है कि हाथी पहले घास या टहनी को सूंड में पकड़ कर खूब झाड़ता है और तब मुंह में देता है।

जंगली हाथी बदमाश होकर बड़ा नुक्सान करता है। असल में बात यह है कि उमर पाकर उसकी शक्ति कम हो जाती है तब नए दंतैल हाथी हथिनियों के रनिवास पर अधिकार करना चाहते हैं। बस लड़ाई हो जाती है। रातों-रात लड़ाई चलती है और या तो वह मारा जाता है या फिर भाग कर अपनी जान बचाता

है, पर फिर वह झुंड में नहीं आने दिया जाता। झुंड का नया नेता उसको झुंड में शामिल नहीं होने देता। तब क्रोध, ग्लानि और एकाकीपन की भावना से वह अपना संतुलन खो बैठता है और फिर जो कोई जीव उसके सामने आता है उसी को वह मारता है। किसी का इक्का दुक्का घर मिल गया तो तोड़-फोड़ देता है, पालतू पशुओं को मार देता है और मकान का आदमी भी मिल जाए तो उसे भी या तो रौंद देता है या एक पैर से दबा कर सूंड से चीर कर फेंक देता है। ऐसे हाथी को बदमाश घोषित कर दिया जाता है। उसको मारने के लिए पुरस्कार भी रखा जाता है। अकेला रहने के कारण वह जंगल में छिप कर खड़ा रहता है और शिकारियों के पास आने पर एकदम आक्रमण कर बैठता है। पालतू नर हाथियों को भी समय-समय पर कुछ दिनों के लिए पागलपन सा हो जाता है। उस हालत में समझदार मालिक और महावत हाथी को कैद सा रखते हैं। समय पाकर यह पागलपन का दौरा-सा दूर हो जाता है। ऐसा मदमस्त हाथी जबर्दस्ती या मारपीट करने से भयंकर दुर्घटना करने लगता है। हथिनियों को पागलपन का ऐसा कोई दौरा नहीं होता, इसलिए पालतू बनाने के लिए हथिनियों को ही अधिक पसन्द किया जाता है।

पहले तो लड़ाई के काम में हाथी बहुत आता था और सिकंदर जब भारत आया तो पोरस की सेना में बहुत हाथी थे, पर पोरस की हार हुई, क्योंकि हाथी कभी-कभी अपने ही आदमियों को रौंद दिया करता था। बारूद के आविष्कार से पहले हाथी की उपयोगिता लड़ाई में बहुत अधिक थी। पर बाद में जब बारूद का आविष्कार हुआ तब आवाज से वह भड़कने लगा और अपना ही नुक्सान करने लगा। जरासंघ के प्रसिद्ध हाथी कुवलयापीठ की कहानी है कि जरासंध कहीं भी आक्रमण करता था तो पहले कुवलयापीठ को विध्वंस को भेज दिया जाता था और सूंड में भारी और लम्बी जंजीर लेकर वह घुमा-घुमा कर लोगों का संहार करता था। भयंकर शक्तिशाली कुवलयापीठ को कई हाथी मिल कर भी नहीं हरा सकते थे। शाहजहां के पुत्र दारा और औरंगजेब में जो लड़ाई हुई उनमें भी हाथियों का उपयोग किया गया था और जब औरंगजेब का हाथी मैदान से भागने लगा तो उसकी टांगें जंजीरों से बांध दी गई थीं।

यह तो सब पुरानी बातें हैं, पर गत द्वितीय महायुद्ध में भी हाथियों ने योग दिया है। बरमा के जंगलों में जहां न ठेले जा सकते थे, न सड़कें बन सकती थीं और न कोई और वाहन काम दे सकता था वहां हाथियों ने युद्ध का माल ढोकर अपनी उपयोगिता को फिर सिद्ध कर दिया। अब तो हाथी जहां चारे का बाहुल्य है वहीं रखे जा सकते हैं और विवाह, शादी, मेला, दशहरा के अवसर पर शोभा की वस्तु बन कर रह गए हैं। लकड़ी ढोने और सवारी का काम भी हाथी करते हैं।

बहुत से मालिक हाथी को शराब पीने की आदत डाल देते हैं। और जब हाथी थक जाता है तो शराब की बोतल खोल कर गट-गट पी जाता है और खाली बोतल वापस कर देता है।

लोगों की धारणा गलत है कि हाथी की सूंड में यदि चींटी घुस जाए तो वह मर जाता है। पहली बात तो यह है कि हाथी सतर्कता की मूर्त्ति है, चींटी या कोई कीड़ा

घुस नहीं सकता और फिर हाथी सूंड से इतनी जोर से हवा निकाल सकता है कि कोई भी इस प्रकार की चीज वहां टिक नहीं सकती है।

भारत के जंगली और पालतू हाथियों के स्वभाव के विषय में श्री जी० पी० सैंडर्सन और सर बेकर ने जो लिखा है उसका सार इस प्रकार है—

"हाथी विशेषकर ऐसे जंगलों में विचरते हैं, जहां ऊंचे पेड़ होते हैं। जहां बांसों का बाहुल्य हो और जमीन ऊंची-नीची हो। वह वर्षा के प्रारम्भ में अति ग्रीष्म काल में पानी के निकट वाले अति सघन वनों में रहते हैं। पर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही खुले मैदानों में मीठी रसीली घास खाने को आते हैं। मद्रास में वे कभी-कभी नीचे पहाड़ियों के जंगलों में भी आ जाते हैं। भारतीय हाथी के लिए सूर्य की प्रखर किरणें सहना असह्य होता है और अपनी इच्छा से कभी भी वह तेज धूप में नहीं चलना चाहता। गरमी के दिनों में प्रातः 9 बजे के बाद बोझा तो क्या महावत को लेकर चलना ही उसके लिए कष्टप्रद होता है। खुले स्थानों में बूंदाबांदी और बदली के समय हाथी चलना खूब पसन्द करता है। एक जंगल से दूसरे जंगल में जाते समय वे एक के पीछे एक चलते हैं।"

हाथियों के एक झुंड की संख्या 30 से 50 तक होती है और वे सब एक ही कुटुम्ब के होते हैं। जवान हाथी और हथिनियां कभी-कभी अपना झुंड छोड़कर दूसरे में भी शामिल हो जाते हैं। किसी-किसी झुंड की संख्या सौ तक हो जाती है। झुंड का नेतृत्व किसी बड़ी उमरवाली हथिनी के अधीन होता है। आगे हथिनियां, फिर बच्चे और पीछे दंतैल हाथी चलते हैं। जंगली हाथी अपने चारे की तलाश में रात में भी घूमता है, पर स्वभावतः हाथी 9—10 बजे प्रातःकाल से मध्याह्न तीन बजे तक आराम करते हैं और रात में भी ग्यारह बजे से प्रातः काल तीन बजे तक आराम करते हैं।

हाथी न तो दुलकी चाल चलता है और न पोइया। वैसे थोड़ी दूर तक 15 मील फी घण्टे के हिसाब से चल लेता है। हाथी ऊंचे और लम्बे कूदने के अभ्यस्त नहीं होते, पर कठिन चढ़ाई और उतार को वह बड़े आराम से पार कर लेते हैं। होता यह है कि वह पिछली टांगों के बल बैठ जाता है और अगली टांगों को खड़ी रखते या झुकाए हुए धीरे-धीरे सरकता चला आता है। जब हाथियों का झुंड जंगल से नीचे ऊंची चढ़ाई से नदी की ओर उतरता है तो जमीन उनके बोझ से टूटती चली जाती है और ढरकनी सड़क सी बन जाती है।

भारतीय हाथी विभिन्न प्रकार की आवाजें करते हैं, कुछ तो सूंड द्वारा और कुछ गले से। सूंड से हाथी की चिंघाड़ होती है, जो आतंक और क्रोध की द्योतक होती है। गले से जो आवाज होती है वह दहाड़ जैसी होती है, जिसका अर्थ पीड़ा और भय होता है। गले से एक विचित्र प्रकार की घरघराहट की आवाज क्रोध या आवश्यकता की द्योतक होती है। जब हाथी का बच्चा मां को बुलाता है तब ऐसी ही आवाज करता है। सूंड द्वारा लगातार धीमी चीखने की सी आवाज हाथी की प्रसन्नता प्रकट करती है। जब आस-पास कहीं शेर होता है तब हाथी सूंड को जमीन पर मार कर उसमें से हवा निकालता और ऐसी आवाज करता है मानो किसी धातु के बर्तन पर चोट करने की आवाज की गई हो। अर्थात् हाथी अप्रसन्न है और आतंकित है। भारतीय

हाथी स्वभाव से डरपोक होता है और नर जब आक्रमण करता है तब वह आक्रमण करने की अपेक्षा भाग जाना पसन्द करता है, पर बच्चे वाली हथिनी बड़ी ही खतरनाक होती है। हथिनी जब आक्रमण करती है तब पैरों से रौंद देती है और नर जब आक्रमण करता है तब शत्रु को दांतों से छेद कर जमीन में ठस देता है। आक्रमण के समय सूंड को हाथी मुंह में रख लेता है।

हाथी का शिकार पैदल ही किया जाता है और सबसे खतरनाक शिकारों में माना जाता है। विशेषकर घायल और इक्कड़ बदमाश हाथी का। यथासम्भव हाथी का शिकार बड़ी भारी राइफल से ही खेलना चाहिए। हाथी की दोनों आंखों के ऊपर जो गढ़ा सा होता है वहां निशान लेना चाहिए—जब हाथी सीधे शिकारी की ओर देख रहा हो। पर जब हाथी सर उठाए हुए आक्रमण कर रहा हो तब निशाना जरा नीचे जहां सूंड जुड़ी होती है, वहां लेना चाहिए ताकि गोली घातक बैठे। एक और भी कारगर निशान हाथी की कनपटी पर लेने का है, जो घातक सिद्ध होता है। कान के ठीक पीछे वाला निशान घातक पड़ता है। कोई शिकारी पेड़ पर बैठा हो तो भारी राइफल से हाथी का मेरुदंड तोड़ देने से भी हाथी मर जाता है। किसी भी खतरनाक जानवर के आक्रमण की कल्पना ही की जा सकती है, पर क्रोधित जंगली हाथी का आक्रमण जो कान खड़े किए सिर ऊंचा किए हुए, दांतों के बीच सूंड को सिकोड़ कर रखे हुए साक्षात यमराज प्रतीत होता है। बड़ा भयंकर होता है: तेज गति में कई गुने आकार का मालूम पड़ने वाला हाथी आक्रमण चुपचाप करता है, पर पास आकर चिंघाड़ मारता है। इस प्रकार के आक्रमण का सामना करना बड़े साहस का काम है। दृढ़ता, होश हवास, बढ़िया निशाना और आत्मविश्वास के बल पर ही शिकारी हाथी के ऐसे आक्रमण का सामना कर सकता है।

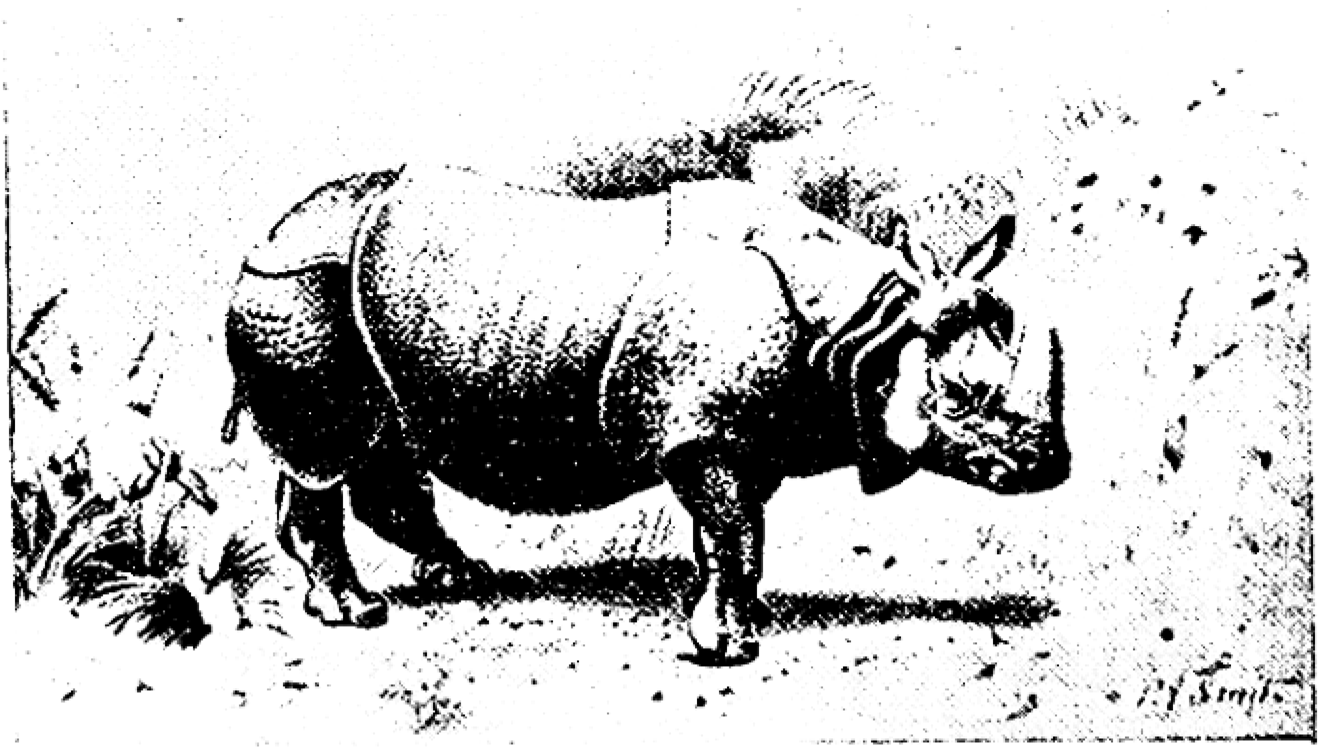
दंतैल हाथियों के दांत मोटाई और लम्बाई में एक से नहीं होते। सैंडर्सन ने हाथी दांत के एक जोड़े को प्राप्त किया था, जिसके एक दांत की लम्बाई 5 फुट थी। जबड़े के पास उसकी गोलाई 16 इंच थी और एक दांत का वजन 74½ पौंड था। बड़े से बड़े दांत की लम्बाई (जिस हाथी को सर वी० ब्रुक ने मारा था) उसकी आठ फुट थी और दांत गोलाई में 17 इंच था। उसका वजन 90 पौंड था। पर एक छोटे दांत का वजन, जिसकी लम्बाई 6 फुट थी, 100 पौंड था। पर असम की गारो पहाड़ियों में मारे गए एक दंतैल हाथी के दांतों का वजन क्रमश: 155 पौंड और 157 पौंड था।

हाथियों की उपयोगिता आजकल शोभा की सवारियों, बारातों और त्यौहारों की ही रह गई है और जिन क्षेत्रों में चारे की कमी है या बरगद पीपल और गूलर के पेड़ कम हैं वहां कोई हाथी रखना कठिन है। मोटर ने भी प्रतिष्ठा प्रदर्शन के लिए हाथी का स्थान ले लिया है पर फिर भी जहां मोटर नहीं जा सकती वहां हाथी जा सकता है। हाथी की उपयोगिता कम होने पर भी, हाथी का मूल्य रुपयों की क्रय शक्ति कम होने से कीमत में बढ़ गया है। चार हजार रुपयों से पांच हजार रुपयों में अर्धवयस्क हाथी आ जाता है। बढ़िया दंतैल वयस्क हाथी की कीमत दस हजार रुपयों के आस-पास होती है।

उत्तरी भारत में हरिहरपुर (सोनपुर स्टेशन) बिहार में हाथियों की सबसे अधिक बिक्री होती है और उत्तरी भारत के लोग उसी मेले से हाथी खरीदते हैं।

●गैंडा वंश (Family Rhinocerotidae)

इस वंश में एक ही जीव है गैंडा। गैंडे की तीन जातियां होती हैं, पर भारत में एक ही जाति पाई जाती है। अन्य दो जातियां अफ्रीका में हैं। गैंडे की जितनी भी जातियां हैं वे सब पुरानी दुनिया में ही सीमित हैं और वे सब एक-दूसरे से भिन्न हैं। टेपिर और गैंडे की बनावट में अन्तर यह है कि टेपिर के अगले और पिछले पैरों में तीन नाखून होते हैं। सिर के बीचों-बीच सामने की ओर एक या दो सींगों का होना गैंडा वंश की मुख्य पहचान है। पर ये पहचान-चिह्न भारतीय गैंडे की मादा के नहीं होते और कई लुप्त जीवों के तो पहले भी नहीं होते थे। इसलिए गैंडे को टेपिर से अलग करने के लिए कुछ और बातें भी जरूरी हैं। गैंडा वंश के ऊपर के जबड़े की डाढ़ें इस तरह होती हैं कि उसके तलुए में एक दीवार की सी रोक लग जाती है। इस उठान के बाहरी ओर से दो टेढ़ी श्रेणियां चलती हैं जो गहरी नाली से विभाजित होती हैं। ऊपर और नीचे जबड़ों के दोनों ओर सात-सात दांत होते हैं। इस वंश के ऊपर के जबड़े में



गैंडा

कीले कभी नहीं होते और ऊपर के कृंतक दांतों की संख्या दो जोड़ों से अधिक नहीं होती। नीचे के जबड़े में बड़ी और नुकीली कांपों का जोड़ा हो सकता है, जिनके बीच में छोटे कृंतक दांतों का एक जोड़ा होता है।

गैंडा वंश के सभी जीवों का आकार बड़ा और भारी है तथा टांगें अपेक्षाकृत छोटी और बहुत मजबूत होती हैं। प्रत्येक अंगुली में सुमनुमा नाखून होता है। सिर के अनुपात से आंखें बहुत छोटी होती हैं। इस वंश के जीवों के शरीरों पर मोटी खाल होती है, जिस पर छुटपुट बाल होते हैं। पूंछ पतली साधारण लम्बाई की होती है। इस वंश की शरीर रचना में उसका सींग एक विशेष स्थान रखता है, जो न तो हड्डियों का बना होता है और न उसका सम्बन्ध मस्तक की खोपड़ी से होता है। वह खाल से

हीं उगता है और एक प्रकार से घने जमे हुए कड़े बालों का ही एक रूप होता है। भारतीय गैंडे के एक ही सींग नाक की हड्डी के ऊपर होती है।

गैंडे नासमझ होते हैं और स्वभाव से शीघ्र डर जाने वाले तथा प्राय: आदमी से बचने की कोशिश करने वाले। अफ्रीकन गैंडा तो अपने बचाव के लिए सींग पर अवलंबित रहता है, पर एशियाई गैंडा अपने मुंह की नीचे की कांपों पर अधिक भरोसा करता है, क्योंकि सींग तो उसका छोटा होता है। इस वंश के सब जीव रचनीचर हैं और उनको लम्बी घास में रहना बहुत पसन्द है। ये जीव शत-प्रतिशत शाकाहारी हैं।

35—गैंडा (Rhinoceros)

एशियाई गैंडों में भारतीय गैंडा ही सबसे बड़ा और शानदार होता है। अब से कई सौ शताब्दी पूर्व ही यूरोपवासी भारतीय गैंडे से परिचित थे। सन् 1513 में भारतीय गैंडे का एक नमूना पुर्तगाल भेजा गया था। भारतीय गैंडे के शरीर पर बाल नहीं होते—बस, कान और पूंछ पर ही बाल होते हैं। उसके नाखून हाथी जैसे होते हैं। गैंडे का रंग कलछौंह सिलेटी होता है और शरीर पर खाल ढालों की तह की तरह मढ़ी होती है। सबसे विचित्र बात यह है कि गैंडे की थूथन के ऊपर एक या डेढ़ फुट ऊंचा सींग होता है, पर असल में वह सींग नहीं है। हजारों ही मोटे और मजबूत बाल इकट्ठे होकर ऊपर उठे होते हैं। गैंडे के लिए यह बड़ा उपयोगी होता है। सींग अगर एक बार टूट जाय तो वह फिर बढ़ जाता है। शरीर के अनुपात से गैंडे का सर बड़ा होता है। कान बड़े होते हैं, जिनके सिरों पर बाल होते हैं। नर और मादा दोनों में ही सींग बड़े होते हैं।

इस पशु की ऊंचाई 5—6 फुट होती है और जनरल किलचन ने जिस गैंडे को नापा था उसकी ऊंचाई कन्धों पर 5 फुट 9 इंच थी और थूथन की नोक से पूंछ के सिरे तक की लम्बाई 10 फुट 6 इंच थी, जिसमें से अकेली पूंछ की लम्बाई 2 फुट 5 इंच थी। शरीर का घेरा 9 फुट 8 इंच का था। सींग एक फुट से कभी-कभी ही लम्बा होता है, पर श्री जेर्डन का कथन है कि 2 फुट लम्बे सींग तक का लेखा है और ब्रिटिश अजायबघर में जो भारतीय गैंडे का सींग रखा है वह 19 इंच लम्बा है। गैंडे की आंखें छोटी होती हैं। साधारणतया हमारे देश के गैंडे के ऊपर के जबड़े में कृंतक दांतों का एक जोड़ा होता है, पर कुछ गैंडों के इस जोड़े के पीछे एक जोड़ा छोटे कृंतक दांतों का होता है।

भारतीय गैंडा केवल भारत में ही सीमित है और भारत के भी एक क्षेत्र में ही वह पाया जाता है। वह हमारे देश का बड़ा प्रसिद्ध जानवर है। पर अब केवल असम के क्षेत्र विशेष में ही रह गया है। भारत सरकार से वह सुरक्षित है, क्योंकि बिना सावधानी के उसके लुप्त हो जाने का खतरा है। सन् 1850 तक बंगाल के राजमहल स्थान में पाया जाता था और उत्तर प्रदेश के तराई के इलाके में भी वह काफी था। सोलहवीं शताब्दी में तो गैंडा पंजाब से पेशावर तक भी मिलता था और बाबर ने सोलहवीं शताब्दी में एक गैंडा सिंधु नदी के किनारे मारा था। गैंडा भारत का एक प्रमुख जीव है तथापि दक्षिण भारत के अनेक स्थानों में भी पहले पाया जाता था जैसे

नर्वदा नदी की घाटी, मद्रास और दक्षिणी पठार, क्योंकि इससे पथराए चिह्न वहां मिले हैं। उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र रुहेलखंड और बंगाल की खाड़ी में भी गैंडों के रहने के स्थान थे।

गैंडा हमारे देश के लम्बी घास के इलाकों का रहने वाला है। उसकी दाढ़ें भी यही बात बताती हैं। पहले भारत में घास का वाहुल्य था और आबादी कम थी इसलिए सारे भारत के घास वाले दलदली क्षेत्रों में गैंडा विचरता था। भारत में बीस से तीस फुट ऊंची घास केवल 3–4 महीनों में ही इतनी बढ़ जाती थी कि उसमें हाथी, गैंडे और जंगली भैंसे विचर सकते थे। लताओं से घिरी घनी और ऊंची घास के भीतर होने वाली गतिविधियों का पता नहीं चलता था। जंगल की घनी घास में खरगोशों तथा अन्य छोटे जानवरों के चलने के लिए सुरंगें सी बनी रहती थीं।

गैंडा दलदल से लगी ऐसी घासों में रहता है और वह एकाकी है। भारतीय गैंडा कीचड़-स्नान का बड़ा शौकीन है। यों तो गैंडे की खुंखारी की अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं पर स्वभावतः गैंडा निरापद और शान्त प्राणी है। ब्लैनफोर्ड के कथनानुसार गैंडा घायल होने पर भी आक्रमण नहीं करता पर जब वह आक्रमण करता है तब वह अपने नीचे के जबड़े की कांपे उसी भांति प्रयुक्त करता है जिस प्रकार जंगली सुअर अपनी कांपे। उत्तेजित होने पर सूअर की भांति खुरखराहट भी करता है। गैंडा साधारणतया धीमी चाल चलता है, पर वह सरपट भी दौड़ सकता है।

मादा गैंडा कितने दिनों में बच्चा देती है इसका कोई ठीक पता नहीं है। हां, बच्चा एक बार में एक ही होता है। भारतीय गैंडा पकड़े जाने पर चिड़ियाघरों में काफी दिनों तक बहुत अच्छी तरह रह सकता है। अनुमानतः भारतीय गैंडे की उमर सौ वर्ष से कुछ अधिक होती है। गैंडे के बारे में साधारण लोगों का भ्रम है कि उस पर गोली असर नहीं करती। पर यह बात गलत है। डांसों से बचने के लिए वह अपने शरीर पर कीचड़ लपेटे रहता है, अतः खाल ऐसी प्रतीत होती है कि गोली नहीं लगेगी। गोली तो क्या गैंडे के शरीर में चाकू भी एकदम घुसा चला जाता है। एक अंग्रेज सैनिक ने भी यही भ्रमपूर्ण बात सुनी थी और उसने अपनी रेजीमेंट के एक पालतू गैंडे पर गोली मार दी। गोली खाते ही गैंडा गिर कर मर गया। गैंडे में एक विचित्र बात है और वह यह कि गोली खाकर वह और जानवरों की तरह टांगें फैलाकर नहीं पड़ रहता वरन सीधा ऐसे बैठ कर मर जाता है मानो सो रहा हो। असल में गैंडे की खाल बड़ी कोमल होती है। हां सूखने पर खाल अत्यन्त कड़ी हो जाती है। भारतीय अमीर और राजे महाराजे गैंडे की खाल की ढाल बनवाते थे। पालिश करने पर खाल बड़ी सुन्दर अर्ध पारदर्शी हो जाती है। भारत में गैंडे के सींग के प्यालों का बड़ा महत्त्व है और वे किन्हीं पूजाओं में भी काम में आता है। आम खयाल है कि उन प्यालों से विष की पहचान हो जाती है। सींग के एक-एक प्याले की कीमत हजारों रुपया होती है, इसलिए गैंडे का शिकार चोरी से भी बहुत हो गया है।

अब गैंडे का शिकार तो होता नहीं है, क्योंकि भारत में उनकी संख्या बहुत सीमित है। जब शिकार होता था तब शिकारी हाथी पर चढ़कर चुपचाप उसके रहने की

जगह पर पहुंचते थे या जंगल में खड़ा देख कर उसे मार देते थे। दूसरा ढंग था हाथियों की पंक्ति बनाकर हांका करना और आगे शिकार खेलने वालों का हाथी या मचान पर बैठना। हांके से जब गैंडा निकलता था तब मार लिया जाता था।

गैंडे की दृष्टि अपेक्षाकृत अच्छी नहीं होती, पर उसकी घ्राण-शक्ति अच्छी होती है और आदमी की गंध उसे बिल्कुल नहीं भाती।

यों तो गैंडे को असम के सुरक्षित स्थान में संरक्षण प्राप्त है, पर फिर भी चोरी-छिपे से लोग उसके सींग की खातिर उसे मार लेते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि गैंडे को भारत के अन्य स्थानों में भी संरक्षण मिले और वहां वह बढ़ाया जाए। उत्तर प्रदेश की तराई का कोई इलाका इस काम के लिए उपयुक्त रहेगा और उड़ीसा का क्षेत्र भी इसके लिए उपयुक्त है।

—:o:—

●शूकर वंश

शूकर-वंश में सूअर ही एक अकेला जीव है। इस वंश के असली प्रतिनिधि के-जैसे यूरोप के जंगली सुअर के चौवालीस दांत होते हैं, जिनमें से प्रत्येक जबड़े की अन्तिम डाढ़ बढ़ी हुई होती है, ऊपर को छोटे और मोटे कीले ऊपर की ओर घूमकर पड़े होते हैं, पर नीचे के बड़े और सीधे होते हैं, अतः जब सूअर जबड़ा बन्द करता है तब वे कीले आपस में रगड़ते हैं और पैने होते रहते हैं। फलस्वरूप अगर कोई एक कांप किसी प्रकार टूट जाती है, तो उसके सामने की कांप बढ़ती रहती है। इस वंश के बड़े और कड़े बालों के नीचे ऊन जैसा समूर होता है। सूअरों के बहुत बच्चे होते हैं और जंगली सूअरों के बच्चों के लम्बी-लम्बी धारियां होती हैं।

इस वंश के जीवों की खाल मोटी, थूथन आगे को और चपटी होती है। इसी से ये जीव जमीन खोद कर भोजन की प्राप्ति करते हैं। इन जीवों के खुर चार हिस्सों में बंटे होते हैं जिनके सामने के दो भाग बड़े और पीछे के दो भाग छोटे तथा बेकार लटकते रहते हैं। सूंघने की शक्ति इस वंश के जीवों की बड़ी तीव्र होती है और जड़ें, कन्द-मूल आदि स्वादिष्ट भोजन वे इसी शक्ति से जान लेते हैं। इन जीवों की खुराक गन्ना, शकरकंद, मक्का, दही, कीड़े-मकोड़े आदि हैं। यहां केवल भारतीय जंगली सूअर का ही वर्णन दिया जाता है।

36—सूअर (Wild Boar)

हमारे देश में जहां-जहां जंगल, झाड़ी, नाले और उनके साथ पानी है वहां-वहां जंगली सूअर मिलेगा। भारतीय जंगली सूअर यूरोप के जंगली सूअर से कुछ बड़ा होता है और उसके बाल छितरे होते हैं तथा भीतर ऊनी समूर नहीं होता। जंगली सूअर का रंग पालतू सूअरों की भांति ही कलछौंह, पर तनिक सफेदी लिए हुए कत्थई-सा होता है। गरदन से पीठ तक बड़े बालों की एक पंक्ति होती हैं, जिन्हें वह क्रोध में खड़ा कर लेता है।



जंगली सूअर

मादा सूअर एक वार में कई-कई यानी 10—12 तक वच्चे देती है, जिनके रंग भूरे होते हैं और उन पर भी धारियां पड़ी होती हैं। ये धारियां वड़े होने पर विलीन हो जाती हैं। पट्‌ठे सूअर का रंग भूरा होना है, जो बड़ी उमर में सिलेटी हो जाता है।

साधारण जंगली सूअर की ऊंचाई कन्धे पर 30 से 40 इंच तक होती है पर एक सूअर जो मारा गया था, उसकी ऊंचाई 43 $\frac{1}{2}$ इंच निकली थी। ऐसे छोटे जानवर का वजन 3 से 4 मन तक होता है। नीचे के जवड़े से कांप निकाली जाए तो उसकी लम्बाई 8 से 9 इंच तक होती है, पर 9 से 10 इंच तक लम्बी कांपों का भी लेखा है। एक नमूने में तो ऊपर को मुड़ी कांप 12 इंच लम्बी थी। नर के थूथन के अन्त में लचीली गोलाकार होंठनुमा खाल होती है। इसी से वह ट्रैक्टर के डिस्क फाले की भांति सूखी जमीन को भी फोड़ देता है। पूरी उमर वाले जंगली सूअर की दोनों निकली कांपें देख कर डर लगता है और ऐसा प्रतीत होता है, मानो सूअर अपने इस भयंकर हथियार का पूरा गुमान रखता हो।

सूअर ऐसी जगह अधिक रहना पसन्द करता है जहां पानी पास हो और छिपाव के लिए स्थान वन सके। वह अपनी थूथन से भोजन की तलाश में घास की जड़ें निकाल कर खाता रहता है। इस खुदाई के निशानों से पता चल जाता है कि आस-पास सूअर रहते हैं। जंगली सूअर अपनी मांद गन्ने के खेत में, घास में या झाड़ियों में वनाता है। दिन भर वह उसी में पड़ा रहता है। प्रातः काल और सायंकाल वह भोजन की तलाश में खड़ी फसल में खेती का वहुत नुक्सान करता है। कन्दमूल का भोजन सूअर को वहुत प्रिय है। असम के जंगली सूअरों के वारे में तो यह कहा जाता है कि वे गरमी में कीचड़ में से मछलियां खोद कर खा जाते हैं और अन्य स्थानों में यदि जंगली सूअर को पड़ा हुआ या विशेषकर सड़ा हुआ मांस मिल जाए तो उसे भी खा जाते हैं।

जंगली सूअर टोली में रहता है और 15–15, 20–20 की टोली में देखा जाता है। रात को जिस खेत में वे पिल पड़ते हैं उसका नाश ही हो जाता है। ऊवड़-खावड़ नालों से मिली झाड़ियों और घास में सूअर आवादी से दूर रहता है और जहां आदमी का खटका न हो वहां दिन में भी चुगता है, पर कभी-कभी शकरकंद के खेत में से तो वह आदमी के भगाने पर भी नहीं भागता। कीचड़ और पानी में लोटने

का वह बड़ा शौकीन होता है, इसलिए जहां आस-पास पानी नहीं होगा वहां सूअर नहीं मिलेगा।

पहाड़ों पर 8–9 हजार फुट की ऊंचाई तक सूअर मिलता है, पर वहां उसके रहने का ढंग विचित्र होता है। झाड़ियां और लकड़ियां काट कर वह अपने छिपने का स्थान बना लेता है और जमीन खोद कर भीतर रहता है। एक बार हिमालय में आठ हजार फुट की ऊंचाई पर लेखक एक स्थान को लकड़ियों का ढेर समझ कर उस पर खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद नीचे भूचाल-सा आया प्रतीत हुआ, लकड़ियां हिलीं और सूअर "हो" करके निकल भागा।

थोड़ी दूर तक तो जंगली सूअर बहुत तेज दौड़ सकता है, पर अधिक दूर तक तेज नहीं दौड़ सकता। साधारणतया जंगली सूअर हमला नहीं करता और आदमी की आहट पाकर भाग जाता है, पर घायल होने पर वह भयंकर क्रोध से उन्मत्त हो साक्षात यमदूत हो जाता है और उसके हमले को रोकना आसान काम नहीं होता। बस, यह समझना चाहिए कि तेज भागते हुए 3–4 मन वजन में दो बहुत तेज छुरे लगे हों और वह वजन 'हो' करके अपने शत्रु में बड़े जोर की टक्कर दे। यह टक्कर किसी भी जानवर—शेर तक-के लग गई, तो पेट फट कर सूअर का शत्रु मर भी जाता है। घायल सूअर को इतना क्रोध होता है कि वह आदमी या कुत्ते को पकड़ कर कभी-कभी एक तरफ से चबचबाना शुरू कर देता है, पेट फाड़ता है और मार कर छोड़ता है। जंगली सूअर के शिकार में बड़े कीमती घोड़ों को सूअर की एक टक्कर से ही बेकार होते और उनका पेट फटते देखा गया है। बड़ी-से-बड़ी भैंस की टांग सूअर एक टक्कर में तोड़ देता है। इतना ही नहीं एक बार एक जंगली सूअर ने क्रोध में आकर एक ऊंट में टक्कर दी, उसे गिरा दिया और कांपों से पेट फाड़ डाला। फलस्वरूप ऊंट मर गया। शेर को भी कभी-कभी सूअर मार देता है। घायल जंगली सूअर जब पूंछ ऊपर को उठा 'घरर' और 'हो' करके दौड़ पड़ता है, तब शिकारी को परमात्मा ही बचा सकता है। आक्रमण करने में सूअर इतना निडर होता है कि जब वह आक्रमण कर बैठता है, तब आदमी तो क्या, हाथी को भी नहीं छोड़ता। उसकी गरदन इतनी मोटी और मजबूत होती है कि मुड़ती नहीं। अतः टक्कर भी बड़ी भयंकर होती है।

एक बार हरदोई (उत्तर प्रदेश) जिले के अन्तर्गत कटियारी रियासत में एक बड़ा जंगली सूअर घायल हो गया। क्रोधित सूअर भागा और गोली चलाने वाला तो उसे दिखाई नहीं पड़ा, पर रामगंगा की ओर भागते में एक बकरी मिली, जिसे उसने गिरा कर फाड़ दिया। घास खोदते एक घसियारे ने जब सूअर को आते देखा तो वह भाग कर पेड़ कर चढ़ गया। सूअर ने पेड़ में टक्कर दी और गहरा छिलका उतार दिया। रामगंगा पार की, फिर उसे एक पोस्टमैन मिला। पोस्टमैन के थैले की जंगली सूअर ने धज्जियां उड़ा दीं, भाग्यवश पोस्टमैन एक अरहर के खेत में जा छिपा, पर पास ही खड़ी एक बड़ी भैंस की अगली टांग में जंगली सूअर ने टक्कर दी। भैंस की टांग टूट गई और जैसे ही वह गिरी कि सूअर ने उसका पेट फाड़ दिया। आगे एक गांव था, जहां पहुंचकर सूअर एक घर में घुस गया। घर की कच्ची सीढ़ियों पर

होता हुआ छत पर चढ़ गया। बाहर से कुंडी लगा दी गई, फिर जब शिकारी आए तब नीचे से छिप कर उसे गोली से मारा गया।

एक बार लेखक ने शेर के शिकार के लिए सधी हथिनी पर बैठे हुए ढाई सौ गज की दूरी से भागते हुए एक जंगली सूअर पर निशाना लिया। गोली ओछी पड़ी और सूअर ने कुछ बैठा-सा होकर फिर एकदम एक्सप्रेस ट्रेन की गति से हथिनी की अगली टांग में टक्कर दी। दूसरी टांग से हथिनी ने उसे 5—6 गज दूर फेंक दिया और सूअर मर गया, पर हथिनी सूअर के शिकार के योग्य न रही। सूअर देख कर वह कांपने लगती और भाग खड़ी होती। चार-पांच इंच मोटाई के पेड़ को सूअर एक टक्कर से गिरा देता है।

अंग्रेजों के समय में सूअर का शिकार घोड़ों और बल्लमों से किया जाता था, जिसे 'पिग स्टिकिंग' कहते थे। घोड़ों से सूअर का पीछा करके उसे भाले से मारा जाता था। बहुत से स्थान इस काम के लिए सुरक्षित थे। पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश और दक्षिण के इलाकों में ऐसे स्थान सुरक्षित थे, जहां 'पिग स्टिकिंग' होता था। यह बड़ा ही साहसपूर्ण उत्तेजक शिकार होता था। कभी-कभी सूअर मुड़ कर आक्रमण कर घोड़े को बेकार कर देता है। अब 'पिग स्टिकिंग' का रिवाज बहुत कम हो गया है, क्योंकि न तो अब इतने सूअर हैं और न उनके लिए सुरक्षित स्थान और साथ ही रियासतों और जमींदारी के खतम होने से इस खर्चीले शिकार को धक्का सा लगा है।

जंगली सूअर का मांस बहुत स्वादिष्ट होता है और मांस खाने वाले इसे बहुत पसन्द करते हैं। खाल से लगी मांस में मोटी चर्बी की तह होती है। भिन्न-भिन्न स्थानों का मांस बड़ा ही कीमती और स्वादिष्ट माना जाता है। जंगली सूअर के मांस का अचार भी पहाड़ी और अन्य क्षेत्रों में बनाया जाता है और उसकी गणना बढ़िया अचारों में की जाती है।

यह धारणा गलत है कि सूअर की खाल नहीं निकाली जाती। चूंकि उसकी खाल बहुत पतली होती है इसलिए निकालने में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। पकने पर खाल में हर बाल के स्थान पर एक छोटा छेद का-सा चिह्न होता है, जिससे खाल की सुन्दरता बढ़ जाती है।

आक्रमण करने में अधौका (नया ही जवान) जंगली सूअर जल्दी मुड़ जाता है और तेज भी बहुत होता है, इसलिए आक्रमण के समय वह खतरनाक होता है, पर बंगाल का भारी और बड़ा जंगली सूअर उत्तर प्रदेश और पंजाब के हल्के असूरों की अपेक्षा अधिक लड़ाकू होता है।

झुंड से मार-पीट कर जिस सूअर को निकाल दिया जाता है वह इक्कड़ हो जाता है।

—:o:—

● अश्व-वंश (Family Equidae)

भारत में जंगली घोड़ा नहीं पाया जाता, इसलिए उसका वर्णन इस पुस्तक के लिए अप्रासंगिक है । यों वैज्ञानिक वर्गीकरण से अश्व उपवर्ग में तीन वंश हैं, जिनमें से एक अश्व वंश में घोड़ा, जेबरा और गदहा आते हैं । जंगली गदहों के दो भेद हैं—अफ्रीकन और एशियाई ।

अश्व वंश का प्राणि-जगत में विशेष स्थान है, इस वंश के जीवों के दांतों की संख्या 42 होती है । इनके खुर चिरे हुए नहीं होते हैं, अतः वे सुम कहलाते हैं । इस वंश के जीव इतने परिचित हैं कि उनके विषय में अधिक लिखना आवश्यक नहीं है । इनके कान खड़े होते हैं । पूंछ बालोंवाली होती है । ये सब शाकाहारी होते हैं । ऊपर के होंठ से इस वंश के प्राणी स्पर्शेन्द्रिय का काम लेते हैं, तथापि उसी के सहारे घास पकड़ कर मुंह में खींच लेते हैं । अश्व वंश के प्राणी बड़े सुडौल और गठीले होते हैं । तेज चाल और स्वामिभक्ति के लिए भी इस वंश के प्राणी विशेष प्रसिद्ध हैं ।

37–जंगली गदहा (Wild Ass)

एशियाई जंगली गदहों के तीन प्रकार हैं—(1) **सीरियन और ईरानी** (2) **तिब्बती और मंगोलियन** (3) **भारतीय जंगली गधा**। सीरियन और ईरानी गदहे एक ही प्रकार के होते हैं, पर वे हमारे देश के नहीं हैं । मंगोलियन जंगली गदहे को तिब्बत में कियांग कहते हैं । उन्नीसवीं शताब्दी तक कियांग लद्दाख में भी पाया जाता था, इसलिए थोड़ी चर्चा उसकी भी करनी है । वह 14 हजार फुट की ऊंचाई पर पाया जाता है । संसार में शायद ही कोई ऐसा जानवर हो जो कियांग की तुलना कौतूहल वृत्ति में कर सके । अजनबियों और शिकारियों को देखकर वह गोल-गोल चक्कर काटता है और यह जानने का प्रयत्न करता है कि वह अजनबी कौन है । एक अंग्रेज लेखक लद्दाख में पड़ाव डाले हुए था और भारतीय रसोइया खाना बना रहा था । अपने कौतूहल के कारण एक कियांग तम्बू में रसोइए के पास आ खड़ा हुआ । शिकारियों के तो वह बहुत पास आ जाता है ।

38–भारतीय जंगली गदहा (गोरखर)

भारतीय जंगली गदहा, जिसे गोरखर कहते हैं, अब केवल कच्छ की खाड़ी में ही पाया जाता है । पहले यह बीकानेर के रेगिस्तान में भी होता था जहां बलूची लोग घोड़ों पर चढ़ कर इसे भगा-भगा कर थका कर पकड़ लेते थे और ऊंची कीमतों पर बेचते थे । भागने में वह बहुत तेज होता है । अच्छा सवार अगर एक ही हो तो इसे भाग कर पकड़ना असम्भव है । कियांग की भांति यह बेधड़क नहीं है, वरन बड़ा चौकन्ना और भाग जानेवाला होता है ।

गोरखर की ऊंचाई 3 फुट 8 इंच से लगा कर 4 फुट तक होती है । पालतू गदहों की अपेक्षा इसका आकार बड़ा होता है । इसका रंग पिलछौंह राखी होता है, जिसमें ललाई मिली होती है । इसकी थूथन हल्की तथा पेट और टांगों का भीतरी भाग सफेद होता है ।

अयाल की जड़ से पूंछ की जड़ तक एक गहरी रंगीन पट्टी चली जाती है। उसके कभी-कभी पैरों पर भी धारी होती है। अयाल और पूंछ के बाल गहरे कत्थई या काले रंग के होते हैं। कान लम्बे-लम्बे पर आगे को झुके होते हैं।

गोरखर टोली में रहनेवाला प्राणी है और चार-चार, पांच-पांच से लेकर बीस-पचीस और कभी-कभी इससे बड़ी टोली भी इनकी मिलती है। गोरखर की खुराक गधों की तरह घास-पात है और रेंक भी गदहे की-सी होती है, परन्तु इसकी रेंक में कर्कशता अधिक होती है। मादा गोरखर ग्यारह महीनों में जून से अगस्त तक के समय के बीच एक बच्चा देती है।

गोरखर बड़े शर्मीले स्वभाव का प्राणी है और बड़ी कठिनाई से उसके पास तक पहुंचा जा सकता है। कम उमर के जंगली गदहों को तो किसी प्रकार पकड़ा भी जा सकता है। उसे भगा कर थका लेते हैं, परन्तु इस प्रकार पकड़ा गया भारतीय जंगली गदहा कभी भी पालतू नहीं बनाया जा सका, क्योंकि पालतू अवस्था में वह शीघ्र ही मर जाता है। इसको पकड़ने की विधि के विषय में बताया जाता है कि अगर शिकारी अपने घोड़े और अपने को किसी ऐसे जलाशय के आस-पास छिपा कर प्रतीक्षा कर सके, जहां गोरखर पानी पीने आते हों तो सम्भव है कि वह किसी को पकड़ सके, क्योंकि पानी भरपेट पी चुकने के बाद इस गदहे का जब पेट भारी हो जाता है, तब वह भागने में लद्धड़ हो जाता है और शीघ्र थकाया जा सकता है।

गोरखर के मांस को ईरानी लोग ही खाते हैं और वे भी उस अवस्था में जब अन्य खाद्य-पदार्थ या मांस उपलब्ध नहीं होता।

—:o:—

● गो वंश

अंग्रेजी तक में बैल, भेड़, बकरे और गवय के लिए एक ही ऐसा शब्द नहीं है, जिससे उन सबका समीकरण हो सके। इसलिए इनको अंग्रेजी में खोखले सींगवाले जुगाली करनेवाले पशु कहा गया है। वैज्ञानिक शब्दावली में तो उनके लिए 'बोवाईन' शब्द है, जिसे हम गवय कह सकते हैं। खोखले सींगवालों को भी दो भागों में बांटा गया है।

गो-वंश के प्राणियों के सींग स्थायी होते हैं और प्रतिवर्ष या कुछ समय बाद गिरते नहीं हैं और सीधे, टेढ़े घुमावदार होने पर भी उनमें शाखाएं नहीं निकलतीं। ये सब प्राणी शाकाहारी होते हैं और घास-पात के कल्ले, हरा चारा ही खाते हैं। बैल और भैंसे तैर भी सकते हैं, तथापि बोझा भी खूब ढोते हैं। साधारणतया बैल और भैंस एक चाल पर चलते हैं।

39—गौर (Indian Gaur या Bison)

कन्नड़ में इसे 'काडुकोण' कहते हैं, जिसका अर्थ है जंगली भैंसा; पर गौर जंगली भैंसा नहीं है। गौर भी भारतीय जंगल की एक शान है, आकार में विशाल, देखने में

भयावह, पर स्वभाव से भीरु। गौर के रहने का स्थान पहाड़ी घने जंगल तथा हिमालय की तराई तथा पूर्वी भाग हैं।



गौर

गौर का रंग भूरा होता है, पर अधिक आयुवाले नरों का रंग काला हो जाता है। पेट का भाग हल्के रंग का होता है। खुर से घुटनों तक का पैरों का भाग गौर का सफेद होता है। आंखों से पीछे का भाग तथा गरदन राखी रंग की होती है। चपटे सींगों का रंग पिलछौंह होता है और उनकी ऊपरी नोकें काली होती हैं। गौर की छोटी-सी पूंछ पिछले घुटनों तक ही पहुंचती है और उसके छोर पर बालों का एक गुच्छा होता है। गौर के शरीर पर छोटे-छोटे घने बाल होते हैं, जो बुढ़ापे में प्रायः हल्के और छंगरे हो जाते हैं। नर और मादा दोनों ही के सींग होते हैं।

गौर की ऊंचाई कछार और बरमा में अपेक्षाकृत अधिक होती है, पर मध्य-भारत के गौर की ऊंचाई उतनी नहीं होती है। डनबार ब्रेन्डर ने, जो सबसे बड़ा गौर नापा था, उसकी ऊंचाई 6 फुट 1/2 इंच थी और नाक के सिरे से पूंछ की जड़ तक उसकी लम्बाई 9 फुट 4 इंच थी, तथापि पूंछ की लम्बाई 2 फुट 10 इंच थी। डनबार ब्रेन्डर ने एक बूढ़े गौर को मारा और स्प्रिंग तराजू से काट-काट कर उसे तोला। इधर-उधर की काट-कूट निकाल कर उसका वजन 1900 पौंड (23 मन 7 सेर) निकला। मादा गौर के बच्चे देने का समय प्रायः अगस्त-सितम्बर है, पर वैसे कभी-भी वह बच्चा दे देती है। एक समय में एक या दो बच्चे होते हैं, जो दो वर्ष तक मां के साथ रहते हैं।

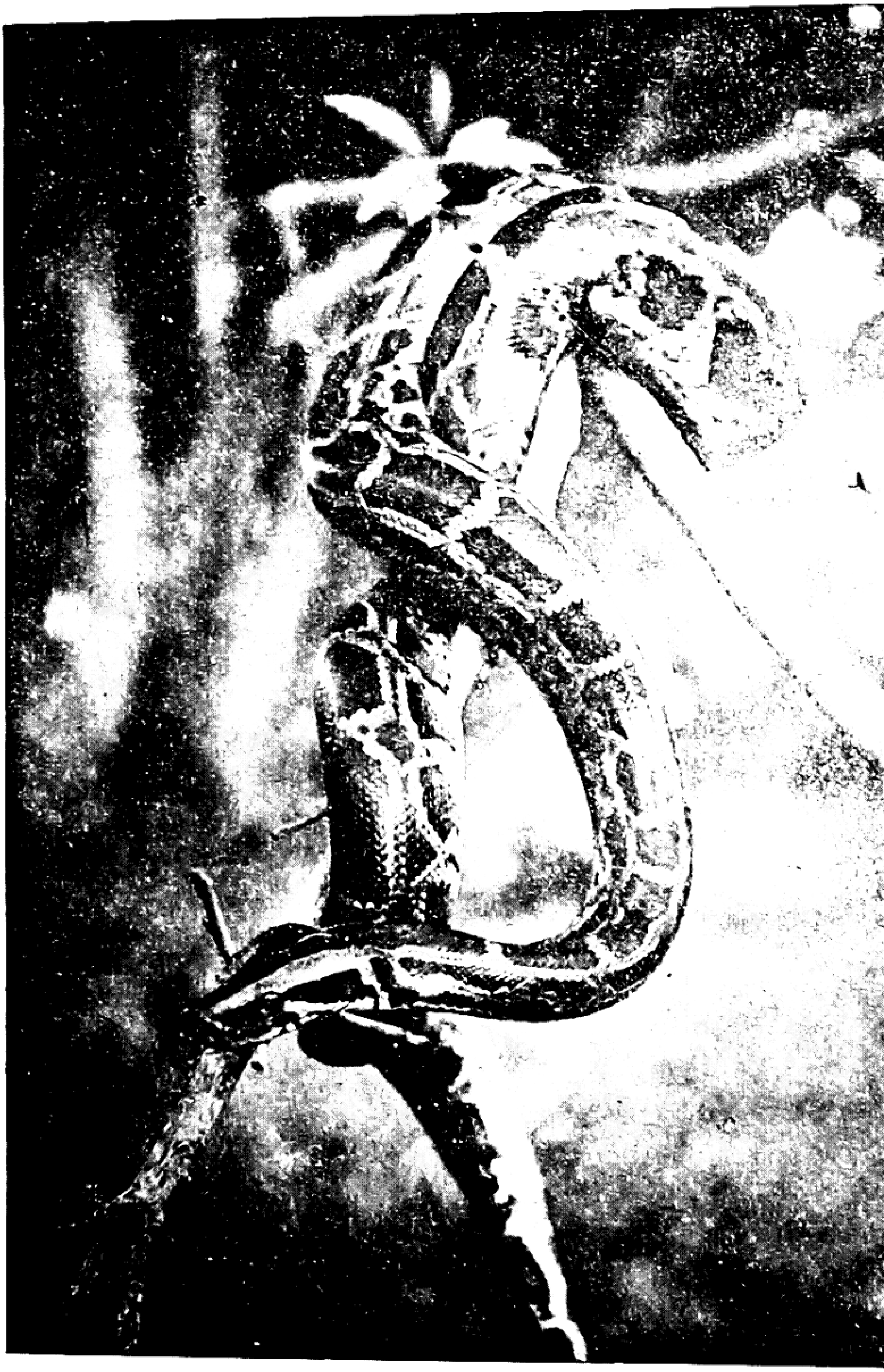
गौर झुंड में रहनेवाला जानवर है, जिसकी संख्या बीस तक होती है। मादा कभी अकेली नहीं रहती, पर बूढ़ा गौर और कभी-कभी जवान गौर भी एकाकी पाए जाते हैं। मादा तो केवल रोगी हो तभी अकेली रहती है। गौर गाय की भांति ही रंभाता



लंगूर-मां और बच्चा



वन्दर



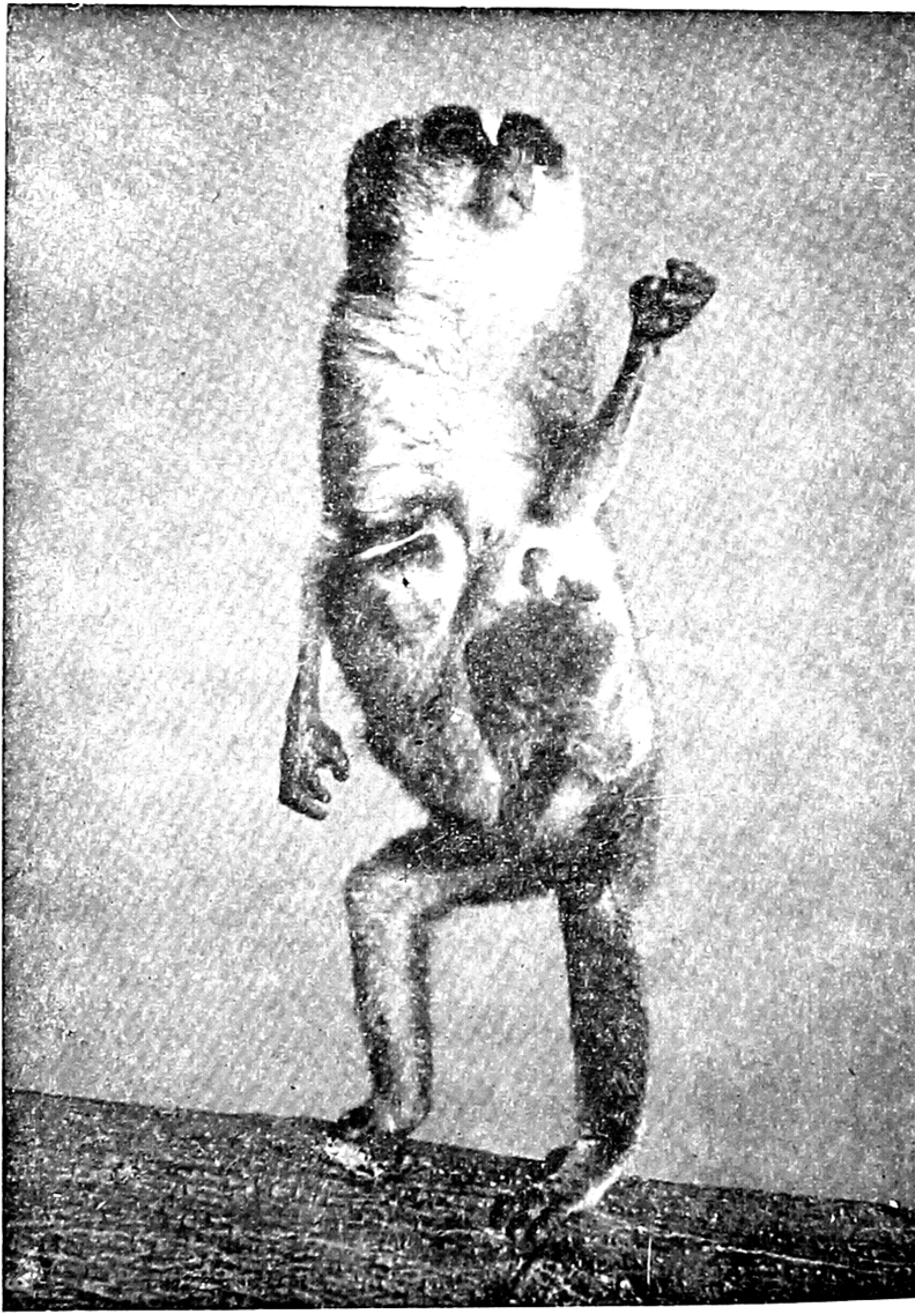
अजगर



जंगली सुअर के बच्चे



खरगोश



तवांगु



शेर का बच्चा



गौर या जंगली भैंसा

है । उसकी आतंक और स्नेहपूर्ण आवाज भी वैसी ही होती है । डनवार ब्रेन्डर ने 'वाइल्ड एनीमल्स इन सेन्ट्रल इंडिया' के 1931 के प्रकाशन में लिखा है कि गौर खंडवा, मालघाट, होशंगाबाद, वेतूल, छिंदवाड़ा, सिउनी, चांदा, वालाघाट, मांडला, विलासपुर और रायपुर जिलों में स्थायीरूप से पाए जाते हैं, पर अव तो गौर उपर्युक्त जिलों से लुप्त हो गया है, क्योंकि वह वहुत सीधा पशु है और आदमी से घबराता है ।

इसकी खुराक भी घास, पात, शाखाएं और पत्तियां हैं, इसलिए लोग बड़ी आसानी से इसे ढूंढ लेते हैं । एक मरे गौर का मूल्य 250 रुपये तक होता है और चोरी छिपे लोग उसे मारते हैं । फलस्वरूप गौर हमारे देश से समाप्त हो रहा है । यदि उसके लिए स्थान सुरक्षित नहीं किया गया और कड़े प्रतिबंध नहीं लगाए गए तो वह शीघ्र ही लोप हो जाएगा । मैसूर और आंध्र में उसकी संख्या अति सीमित रह गई है ।

गौर का शिकार बड़ी राइफल से ही संभव है । अत्यंत सीधा गौर घायल होकर जब आक्रमण करता है तव वड़ा भयंकर हो जाता है । सबसे विशेष बात, जो गौर के वारे में है वह यह है कि वह पालतू नहीं किया जा सकता । इसको पकड़ कर गाय-भैंसों की तरह पालतू करने की कोशिश भी की गई, लेकिन पकड़े जाने के थोड़े समय वाद ही वह मर गया । गौर की घ्राण शक्ति वड़ी तेज होती है ।

40–गयाल (Gayal)

गयाल गौर से भी अधिक सीधा जानवर है और रंग-रूप, शक्ल-सूरत में गौर जैसा ही होता है । आकार में गयाल गौर की अपेक्षा छोटा होता है तथापि सामने का हिस्सा गौर की तरह शानदार भी नहीं होता । इसे मियुन भी कहते हैं ।

भारतवर्ष में गयाल असम, मनीपुर, कछार तथा त्रिपुरा के पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है । गयाल की टांगें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं और नर का गलकम्बल बड़ा होता है । चपटा चौड़ा माथा होता है, जिस पर सींगों के बीच में एक लकीर होती है । गौर की अपेक्षा इसके सींग भी छोटे, कम चपटे और कम घुमावदार होते हैं ।

सवसे विशेष बात गयाल की यह है कि लोग इसे पकड़ कर पालतू बना लेते हैं । ऊंट, घोड़ों, गदहों की तरह तो इसे पालतू नहीं वनाया जा सकता, पर हाथियों की तरह इसे पकड़ कर पालतू बनाते हैं और इसके अन्य बान्धव जंगली अवस्था में रहते हैं । जितनों की आवश्यकता होती है उतने ही पकड़ कर पाल लिए जाते हैं । खेत जोतने का काम तो गयाल नहीं कर सकता, पर मादा गयाल का दूध और नर का मांस बड़े स्वाद से खाए-पिए जाते हैं । गयाल को पकड़ने में भी कोई विशेष परेशानी नहीं होती ।

41–जंगली भैंस या अरना (Wild Buffalo)

जंगली भैंस के नर को अरना कहते हैं । भारतीय जंगली भैंस अफ्रीका की जंगली भैंस से काफी भिन्न होती है और भारतीय जंगली भैंस की थूथन लम्बी, आंखें अधिक उभरी हुई और कान अपेक्षाकृत छोटे होते हैं । सबसे बड़ा भेद भारतीय और अफ्रीकन जंगली भैंस में सींगों का होता है । भारतीय जंगली भैंस के सींग पीछे की ओर को मुड़े

हुए और बहुत लम्बे, कभी-कभी पुट्ठे तक पहुंचने वाले होते हैं। इन सींगों का आखिरी सिरा पहले भीतर, फिर थोड़ा बाहर मुड़ा होता है। नर की अपेक्षा मादा के सींग अधिक लम्बे और पतले होते हैं। बूढ़े जानवरों के शरीर बाल रहित हो जाते हैं। जंगली भैंस का रंग प्रायः राखी मायल काला होता है। खुर से घुटनों तक टांगें सफेदी मायल होती हैं। उत्तरी असम में जंगली भैंस की एक दूसरी जाति भी पाई जाती है जिसकी थूथन छोटी होती है।

पहले जंगली भैंस असम से लेकर तिरहुत कमिश्नरी और तराई क्षेत्र में रूहेलखंड तक पाई जाती थी, पर अब इन स्थानों से तो उसका नामों निशान भी मिट गया है। अब तो वह उड़ीसा और मध्यप्रदेश के एक अत्यन्त सीमित क्षेत्र में ही पाई जाती हैं। भैंस के लिए पहाड़ी क्षेत्र उपयुक्त नहीं है, वरन उसके लिए घास के मैदान, दलदल और झील आदि के स्थान चाहिए। बढ़ती आबादी, जंगलों और घास के मैदानों के कट जाने से उसका सफाया हो गया है।

अगले पुट्ठों पर जंगली भैंस की ऊंचाई 5 फुट 4 इंच होती है। एक नमूने में, जिसकी ऊंचाई केवल 5 फुट थी नाक के सिरे से पूंछ की जड़ तक की लम्बाई 9 फुट 7 इंच थी और पूंछ 3 फुट 11 इंच थी। इसी जंगली भैंस के सींगों की लम्बाई 8 फुट 3 इंच थी। जब कि ब्रिटिश म्यूजियम में एक भारतीय जंगली भैंस के सींगों का जो नमूना है उसकी लम्बाई 12 फुट 2 इंच है। कर्नल बर्टन ने बम्बई की 'नेचुरल हिस्ट्री पत्रिका' में गोदावारी जिले में प्राप्त दो अरनों के वजन के विषय में लिखा है कि एक का वजन 2,001 पौंड (24 मन 16 सेर) और दूसरे का वजन 2241 पौंड (27 मन 13 सेर) था। जंगली भैंस की घ्राण शक्ति और दृष्टि बड़ी तेज होती है, पर श्रवण शक्ति बड़ी कमजोर होती है। मादा गर्मियों में बच्चे देती है।

स्वभाव से भैंस प्रातः और सांय चरती है और दिन में आराम करती है। गर्मियों में तो वह ताल-तलैयों में बैठकर केवल सिर ऊपर निकाले आराम करती रहती है। पहले तो बड़ी संख्या में जंगली भैंस पाई जाती थी और 50-50 तथा अधिक के झुंड मिलते थे। यों तो अचानक वह मिला नहीं करती, पर क्रोध में वह हाथी पर भी टूट पड़ती है। शेर से उलझने में भी उसे कोई संकोच नहीं होता। अरने पर तो आक्रमण करने का शेर को भी साहस नहीं होता। उसकी ताकतवर गरदन तोड़ना शेर के लिए आसान काम नहीं है। शेर और अरने की लड़ाई में कभी-कभी अरना जीत जाता है।

जंगली भैंस बड़ी हौसले वाली होती है। अरने के शिकार के लिए बड़ी बोर की राइफल की आवश्यकता पड़ती है। उसको भी कई-कई गोलियां खाकर वह गिरता है। मनुष्य और शेर दो ही इसके शत्रु हैं।

गौर की भांति जंगली भैंस भी भारतीय जंगलों की शोभा है। चमड़े और मांस की खातिर भी जंगली भैंस की बड़ी आवश्यकता है। अब से 50—60 वर्ष पूर्व ही इसकी सुरक्षा का प्रश्न था, पर यदि अब बड़ी कड़ाई के साथ इस प्रश्न को नहीं लिया गया तो वह लोप ही हो जाएगी। उड़ीसा और मध्यप्रदेश तथा तराई में इसके लिए स्थान सुरक्षित कर देने चाहिएं। जब इसकी संख्या काफी थी, तब तो

यह खेतों में घुस कर उनका बड़ा नुकसान करती थी और बड़े ठाठ से खेत के मालिक से उसका कब्जा खुद ले लेती थी, पर अब जब कि वह भारत से समाप्त हो रही है तब ऐसी कोई समस्या नहीं है।

—:O:—

बारहसिंगा वंश (Family Cervidae)

बारहसिंगा शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'सर्विडाइ' के लिए किया गया है। इस वंश की विशेषता यह है कि इस वंश के जीवों के माथे के ऊपर खोपड़ी से हड्डी के उभार विकसित होते हैं, जिन्हें श्रृंग या 'ऐन्टलर्स' कहते हैं। हिन्दी में तो 'हौर्न्स' और 'ऐन्टलर्स' के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होता है, पर लेखक 'ऐन्टलर्स' के लिए श्रृंग शब्द का प्रयोग करता है और हौर्न के लिए सींग। यहां यह भी लिखना आवश्यक है कि इस वंश के सब जीवों के श्रृंग नहीं होते, इसलिए प्राणिशास्त्र के विद्वानों को उनके वर्गीकरण के लिए श्रृंग को छोड़ कर कुछ अंशों में अन्य बातों पर भी अवलंबित रहना पड़ता है। तब भी बारहसिंगा वंश के लिए श्रृंग उसकी मुख्य विशेषता है।

श्रृंग में अनेक शाखाएं होती हैं और इससे एक सीधा श्रृंग नहीं समझना चाहिए वरन एक-एक में कई-कई शाखाएं होना आवश्यक है; श्रृंग की एक विशेषता यह है कि उसके ऊपर कोई किसी प्रकार का खोल या आवरण नहीं होता। वास्तव में श्रृंग निर्जीव हड्डी का एक पिंड होता है, जो एक जीवित प्राणी द्वारा वहन किया जाता है। रेनडियर को छोड़कर अन्य सब जीव इन श्रृंगों को प्रतिवर्ष गिरा देते हैं और फिर नए श्रृंग निकल आते हैं, जब किसी नर के श्रृंग हाल ही में गिर जाते हैं तब माथे पर खाल से ढकी हड्डी रह जाती है। थोड़े समय बाद ही इन्हीं हड्डियों पर मखमली गांठें सी उठ आती हैं, जो बड़ी ही संवेदनशील और कोमल होती हैं। वे गांठें असाधारण रक्त-कोषों से पूरित होती हैं। फिर ये गांठें बड़ी तेजी से विकसित होती हैं। अविकसित और छोटे हिरनों में इन गांठों का विकास एक ही नोंक तक रहता है, पर पूर्ण वयस्कों अथवा शुद्ध बारहसिंगों में अनेक शाखाएं निकलती हैं और बढ़कर वह पूरा श्रृंग बन जाता है। सम्पूर्ण श्रृंग रक्तमय बालों वाली खाल से पूरित रहता है, इसलिए उसको 'मखमल' कहते हैं। फिर उसकी जड़ में हड्डी का पदार्थ पैदा हो जाता है और नीचे हड्डी का घेरा पूरा हो जाने पर ऊपर का सारा मखमली पदार्थ सूखा हो जाता है। इस समय इसमें बड़ी खुजलाहट मचती है और तब किसी पेड़ या डालों से अपने श्रृंग रगड़-रगड़ कर इस ऊपरी सूखी मखमली खाल को वे छुटा देते हैं। श्रृंग अब पूरा निर्मित हो जाता है और जोड़े के समय तक वे नए मजबूत श्रृंग अपने प्रतिद्वंद्वी के प्रति खूब अच्छी तरह प्रयोग किए जाते हैं। अगले वर्ष में श्रृंग जड़ में शाखाएं देते हैं। शुद्ध बारहसिंगा जाति में प्रतिवर्ष नई शाखाएं फूटती हैं। एक लाल बारहसिंगा (Red Deer) के गिराए हुए श्रृंग समूह का वजन 74 पौंड था।

अब इस वंश के उन जानवरों की विशेष बातें बतानी हैं, जिनके श्रृंग नहीं होते; इस वंश के जिन जीवों के (नरों के) श्रृंग नहीं होते उनके कुकुरदंतों पर

खयाल करना चाहिए। इस वंश के शृंगहीन जानवरों के ऊपर के जबड़े में कुकुरदंत होते हैं। इस प्रकार गो वंश से इनकी पहचान अलग स्पष्ट है कि गो वंश में आगे ऊपर कांपें होती ही नहीं हैं। इसके अतिरिक्त कांपों के विषय को छोड़कर कस्तूरा के अलावा किसी के भी 'गॉल ब्लैडर' नहीं होता। कस्तूरा के सींग नहीं होते, पर पूंछ के नीचे एक थैली होती है। केवल कस्तूरा के ही ऊपर कांपें होती हैं।

वारहसिगा (Cervidae) वंश में अनेक जातियां हैं, जिनको कि एक पृथक उपजाति में रखा जा सकता है और उनका वितरण भी एक वड़े लम्बे चौड़े भौगोलिक क्षेत्र में है।

बारहसिंगा वनों और घास के मैदानों के रहने वाले हैं और मरुभूमि में वे कभी नहीं पाए जाते। जुगाली करने वालों में इस वंश के जीव अपेक्षाकृत अधिक पुराने हैं। नीचे भारतीय बारहसिंगों का वर्णन दिया जाता है—

42–हंगल (Kashmir Stag)

हंगल या कश्मीरी बारहसिंगा शुद्ध बारहसिंगा है और हमारे देश में केवल कश्मीर में ही पाया जाता है। भारतीय बारहसिंगों में सबसे भारी यही है। इसकी ऊंचाई कन्धों पर 4 फुट 4 इंच होती है और यह साढ़े सात फुट लम्बा होता है। पर हंगल की आवाज़ विदेश के बारहसिंगों की सी न होकर बघेरे की दहाड़ की सी होती है। भारतवर्ष में यह केवल कश्मीर में सघन चीड़ के बनों में दस-बारह हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है। कश्मीर घाटी से लगे इलाकों में भी वह मिलता है।

नर के लम्बे शृंगों का नाप 40 इंच होता है, लेकिन 52-53 और 55 इंच लम्बे शृंग भी नापे गए हैं और प्रत्येक में 5 शाखाएं होती हैं। हंगल के शृंगों में 6-7 तक नोकें मिलती हैं। हंगल का रंग योरुपीय बारहसिंगों से मिलता जुलता है।

यह गर्मियों में 9 हजार फुट से बारह हजार फुट की ऊंचाई तक रहता है, पर जाड़ों में बरफ पड़ने पर वह नीचे घाटियों में उतर आता है तब लोग इसे आसानी से मार लेते हैं। गर्मियों में हंगल इक्का दुक्का या छोटी टोलियों में भी मिल जाता है। बूढ़े नर एकाकी होते हैं। मार्च के महीने में हंगल अपने शृंग गिराते हैं और अक्तूबर से पहले ये शृंग पूरे नहीं हो पाते। अक्तूबर-नवम्बर में नरों की दहाड़ें सुनाई पड़ती रहती हैं और शिकार का भी सबसे अच्छा समय वही है। लगभग 6 महीने में प्राय: अप्रैल के आसपास मादा बच्चे देती है।

स्वभावत: हंगल एक वन से दूसरे को, घास के इलाकों से घने जंगलों तक, आना जाना पसन्द करता है। पानी का सान्निध्य वह कभी नहीं छोड़ता। एक ही जगह रहना हंगल को पसन्द नहीं है। इसकी खुराक घास और पत्तियां हैं। पर अब हंगल की संख्या इतनी घट गई है कि वह खतम हो जाने की सीमा तक पहुंच गई है। हंगल को सुरक्षा में प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि वह भारत की ही शोभा नहीं है वरन विश्व के विख्यात और अनोखे बारहसिंगों में से एक है।

43–चीतल (Spotted Deer)

चीतल हमारे देश का प्रसिद्ध तथा सुन्दर हिरन है। इसे 'स्वर्णमृग' भी कहते हैं। सीताजी ने श्री रामचन्द्र से जिस हिरन को मार कर लाने को कहा था वह चीतल ही था। चीतल के नर को झांक कहते हैं।

भारतवर्ष में चीतल पंजाब, राजपूताना, असम को छोड़कर बाकी सब जंगलों में पाया जाता है। दक्षिण भारत में तो यह केवल समुद्र तट से तीन-चार हजार फुट की ऊंचाई पर ही रहता है।

पांच फुट लम्बा और 3 फुट से 3 फुट 2 इंच तक ऊंचा चीतल बड़ा ही मनोहर प्राणी है। नर के लम्बे और तीन शाखाओं वाले शृंग होते हैं। शृंगों की लम्बाई प्राय: चीतल की खोपड़ी की लम्बाई की तिगुनी होती है। मादा के शृंग नहीं होते। उत्तरी भारत और मध्य भारत के चीतल की ऊंचाई जहां 3 फुट 2 इंच होती है, वहां दक्षिण भारत के चीतल केवल 2 फुट 6 इंच ऊंचे होते हैं। उत्तरी भारत के नर चीतल के शृंगों की लम्बाई 30 इंच होती है, पर 38 इंच और $38\frac{1}{2}$ इंच लम्बे शृंग भी पाए गए हैं। माथे पर शृंगों का घेरा $5\frac{3}{4}$ इंच होता है।

चीतल के शरीर का ऊपरी भाग बादामी होता है, जिस पर सफेद चित्तियां बड़ी ही मनमोहक प्रतीत होती हैं। सिर और गरदन पर चित्तियां नहीं होतीं और गरदन पर बाल भी नहीं होते। चीतल के पेट और टांगों का भीतरी भाग सफेद होता है। सफेद चित्तियां कन्धों से पूंछ की जड़ तक लम्बी-लम्बी लकीरों में होती हैं। पीठ पर गरदन से पूंछ तक एक काली लकीर होती है। ठोड़ी, कान और गले का ऊपरी भाग सफेदी लिए होता है। पूंछ पतली और नुकीली सी होती है।



चीतल

आकार में चीतल क्षेत्र-विशेष के हिसाब से बड़ा या छोटा होता है, दक्षिण के चीतल की ऊंचाई उत्तर के चीतल की अपेक्षा कम होती है, पर शृंग बड़े सुन्दर होते हैं। 3 फुट के आसपास ऊंचे चीतल का वजन 145 पौंड होता है।

भारतीय वनश्री का प्रतीक चीतल जिन स्थानों में रहता है, वे स्थान भी बड़े मनोहर होते हैं। घने विशाल साल के वृक्ष, बांसों के झुरमुट, पेड़ों से लगी बल्लरियां, कलकल करते नाले और पास ही कालीन जैसे घास के मैदान उनके रहने की जगह हैं। स्वभावत: चीतल धूप निकलने तक चरते हैं और प्रात:काल उन्हें देखा जा सकता

है। धूप चढ़ते ही वे जंगल में घुस जाते हैं और दिन भर विश्राम करते हैं। उस बीच प्रहरी पहरा देते हैं। सांयकाल होते ही वे फिर चरने निकल आते हैं। पानी, वांस और पेड़ों के इलाके इन्हें वहुत पसन्द हैं। चीतल प्रायः प्रातःकाल 8 और 10 बजे के बीच में पानी पीते हैं, पर यह समय मौसम के अनुसार वदला करता है। चीतल तैरते भी खूब अच्छी तरह हैं और पानी में घुसना उन्हें पसन्द भी है।

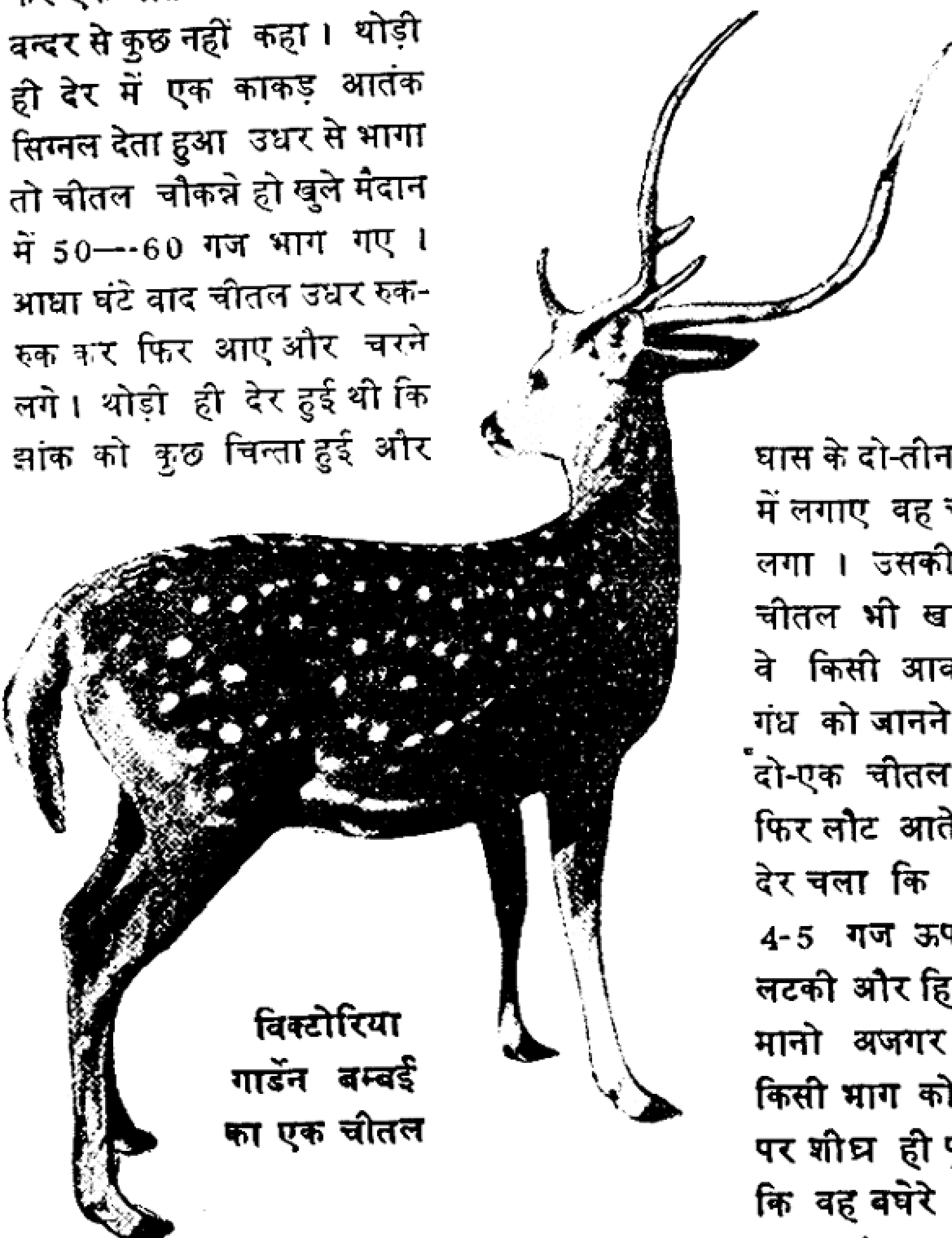
नर चीतल के शृंग गिराने और जोड़ा बांधने का कोई निश्चित समय नहीं है और पूरे वर्ष में नरों के कभी भी शृंग गिर जाते हैं। उत्तर भारत में तो इसका जोड़ा बांधने का समय अधिकांश जाड़े का मौसम ही होता है, पर फिर भी छोटे बच्चे हर ऋतु में दिखाई पड़ जाते हैं।

स्वाभाविक दशा में चीतल चुपचाप बच कर निकल जाने वाला प्राणी है। भयंकर गर्मियों में जंगल की घनी से घनी साया में सोता हुआ चीतल किसी के आने का अनुमान लगाकर चुपचाप सिर नीचा किए सरक जाता है। स्वभाव से चीतल झुंड में रहने वाला हिरन है और उसकी बीस से लेकर सत्तर-अस्सी और सौ तक की टोली पाई जाती है। सुवह और शाम जंगल से वाहर तराई में घास के मैदानों में जव वे चरते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो फर्लांगों लम्बी हरी कालीन हो, जिसकी झालर तराई के पेड़ हों और चीतल का झुंड उस पर अंकित किया गया सुन्दर चित्र हो। बड़े श्रृंगों वाले झांक एक तरफ चरते हैं तो छोटे वच्चे अलग अठखेलियां करते हैं। भारत के स्तनपोषी जीवों में चीतल अपने चर्म सौंदर्य के लिए अद्वितीय है। उन पर पड़ी सफेद चित्तियों के कारण यह नहीं समझना चाहिए कि वे आसानी से दिखाई पड़ जाते होंगे। चीतल के शरीर का रंग तो सूखी पत्तियों में मिल जाता है और सफेद चित्तियां ऐसी लगती हैं, मानों पेड़ों से छन-छन कर धूप आ रही हो। शेर और बाघ इनके बाहुल्य से अपना भोजन ठाठ से चलाते हैं और चीतल के रहते गांववालों के पालतू पशुओं को मारने की उन्हें आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

बौद्धिक कौतूहल मानव समाज का एक स्वभाव है, पर जंगली जानवरों में भी कौतूहल होता है और इस कौतूहल की प्रेरणा आत्मरक्षा से सम्वन्धित है; किसी आवाज या आहट को सुनकर प्रायः सभी जंगली जानवर रुक जाते हैं और जानना चाहते हैं कि वह आहट किधर से हुई और किसकी है ? पर चीतल में ऐसा कौतूहल अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक मालूम पड़ता है। हलके से खटके को भी वह टकटकी लगाकर देखता है और अगर कहीं शेर या बाघ हुआ तो चीतल एक तीखी आवाज करके भागता है, जिससे शिकारी और वन के अन्य पशु सतर्क हो जाते हैं।

चीतल के स्वभाव का अध्ययन करने के लिए लेखक एक दिन पेड़ पर छिप कर बैठा। उस पेड़ से 10—12 गज की दूरी पर प्रतिदिन चीतलों का एक झुंड जंगल से चरने निकलता, चरता, किलोलें करता और झरने पर पानी पीने चला जाता। पच्चीस-तीस गज की दूरी पर कई सेमल के पेड़ थे और झाड़ियां थीं। छः-सात चीतल एक बड़े झांक के साथ वहां आए और इधर-उधर देखकर वह छोटी सी टोली सेमल के नीचे चरने लगी। इतने ही में दूसरी ओर पेड़ों से कुछ आहट सी हुई। सतर्क हो चीतल देखने लगे। पहले तो चीतल बिदके, पर फिर दो तीन बन्दरों को पेड़ से उतरता देख

रुक गए । बन्दरों और चीतलों ने साथ-साथ खाना शुरू किया कि एक बन्दर कूद कर एक चीतल की पीठ पर बैठ गया, पर चीतल ने उसे बाकायदा चड्ढी लेने वाले बन्दर से कुछ नहीं कहा। थोड़ी ही देर में एक काकड़ आतंक सिग्नल देता हुआ उधर से भागा तो चीतल चौकन्ने हो खुले मैदान में 50—-60 गज भाग गए । आधा घंटे बाद चीतल उधर रुक-रुक कर फिर आए और चरने लगे। थोड़ी ही देर हुई थी कि झांक को कुछ चिन्ता हुई और घास के दो-तीन तिनके यों ही मुंह में लगाए वह चारों ओर देखने लगा । उसकी मुद्रा देख अन्य चीतल भी खड़े हो गए मानो वे किसी आवाज, आहट या गंध को जानने के लिए खड़े थे। दो-एक चीतल आगे बढ़ते और फिर लौट आते । यह क्रम कुछ देर चला कि एक छोटे पेड़ से 4-5 गज ऊपर से कोई चीज लटकी और हिलती दिखाई पड़ी मानो अजगर अपने शरीर के किसी भाग को हिला रहा हो, पर शीघ्र ही पूंछ से पता चला कि वह बघेरे की पूंछ है और वह वहां घात लगाए बैठा है।



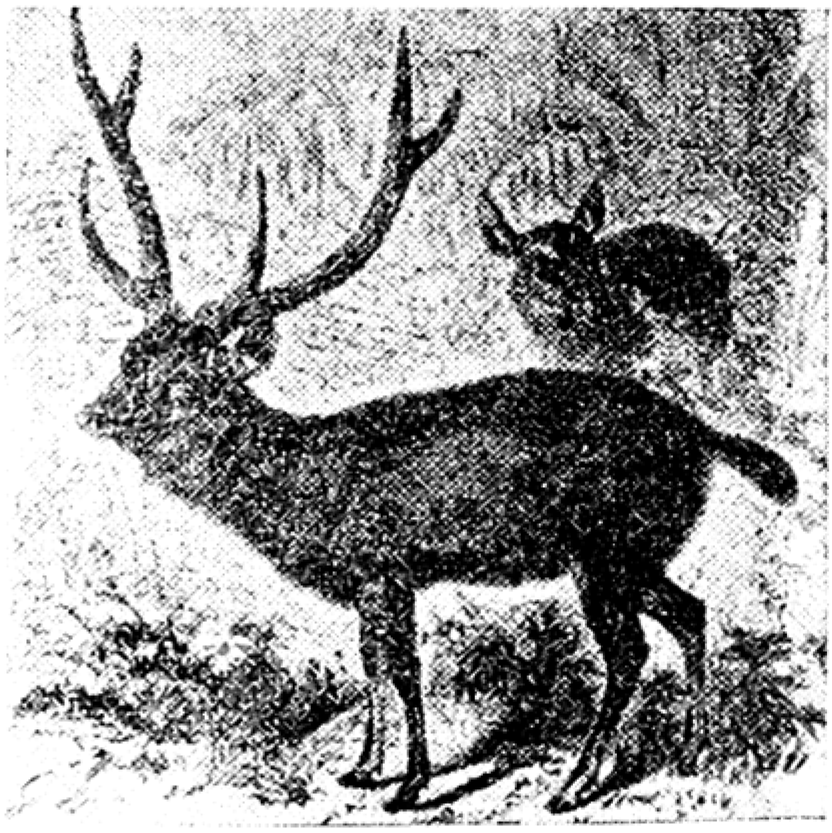
विक्टोरिया गार्डेन बम्बई का एक चीतल

चीतलों ने पूंछ का तो अनुमान लगा लिया था, पर वे यह नहीं जान सके कि वह पूंछ आखिर है क्या । उनके कौतूहल की तृप्ति नहीं हुई थी कि आखिर वह लटकती चीज क्या थी । एक मादा चीतल आगे बढ़ी और फिर वापस आ गई। कभी चीतल पैर उठाते, कभी आगे बढ़ते, पर बिना जाने हुए कि वह क्या है वह टोली गई नहीं । एक मादा आगे बढ़ी कि एकदम पेड़ से विद्युत गति से बघेरा कूदा और मादा चीतल को दबोच लिया। शेष ने आतंक सिग्नल दिया और भाग गए । बघेरे ने फौरन ही चीतल को मार दिया, पर थोड़ी देर बाद लेखक ने बघेरा को भी मार दिया। जिज्ञासा पूर्ति में इस छोटी टोली ने एक आहुति चढ़ा दी।

झांक के शृंग जब जंगलों में पड़े मिल जाते हैं, तब गांव वाले उन्हें उठा लाते हैं और पसलीं के दर्द पर घिस कर उसे लगाते हैं।

44–सांभर (Sambar)

भारतीय बारहसिंगों में सांभर सबसे बड़ा जानवर है। नर के शृंग होते हैं और मादा शृंगहीन होती है। नर के बाल कड़े होते हैं और गरदन पर बालों का रूप केसर का सा बन जाता है। सांभर के कान बड़े और चौड़े होते हैं और पूंछ मोटी और मंझोली होती है। इसका रंग कत्थई होता है और कुछ सांभरों में कत्थई पीला मायल हो जाता है। ठोड़ी, शरीर के नीचे का भाग और टांगों का भीतरी भाग पीला मायल सफेद होता है। सांभर शावक भी इसी प्रकार कत्थई रंग के होते हैं, पर कछार में सांभर होता है, जिसके बच्चों पर धब्बे होते हैं जो बड़े होने पर लुप्त हो जाते हैं।



सांभर

नर सांभर की ऊंचाई 4 से 5 फुट तक होती है और कंधों पर इससे भी कुछ अधिक। लम्बाई 7-8 फुट होती है। बड़े नर सांभर का वजन 550 पौंड होता है, पर बढ़िया और बड़े-से-बड़े 700 पौंड वजन के भी सांभर पाए गए हैं। भारतीय सांभर के शृंगों की लम्बाई 36 इंच होती है, पर शृंगों के फैलाव और मोटाई के घेरे में विभिन्न स्थानों में काफी अन्तर होता है। एक अच्छे सांभर के बढ़िया शृंगों की लम्बाई 38½ इंच थी, और शृंगों के दोनों विन्दुओं के बीच की दूरी 37¾ इंच थी, और शृंग की जड़ की गोलाई 8⅞ इंच थी। पर एक दूसरे शृंग के जोड़े की लम्बाई 32½ इंच थी। विन्दुओं के बीच की दूरी 38 इंच और जड़ पर गोलाई 9 इंच थी। सबसे लम्बे शृंगों का जो लेखा मिलता है उसकी लम्बाई 48 इंच है, पर सबसे बढ़िया लेखा जो है वह 44 इंच लम्बाई, 45 इंच फैलाव और 7¾ इंच घेरे का है।

सांभर भारतवर्ष में राजस्थान और पंजाब को छोड़ कर सभी जंगलों में पाया जाता है। हिमालय में सांभर लगभग 8—10 हजार फुट की ऊंचाई तक पहाड़ों में रहता है। आश्चर्य है कि इतने भारी शरीर तथा नर के 3-4 फुट लम्बे तीन शाखाओं वाले शृंगों के बावजूद भी वह बड़ी आसानी से पहाड़ी स्थानों में निवास करता है।

यह जंगल का जानवर है और अधिकतर रात में ही चरता है। अगर वह इतना सतर्क न होता, तो खतम हो गया होता। सांभर बड़ी टोलियों में नहीं

रहता, 4-6 की ही टोली में रहता है। धूप भी वह बिल्कुल पसन्द नहीं करता और दिन भर घने जंगलों में छिपा रहता है। गर्मियों में वह मजे से पानी में लोटता है। सांभर की खुराक पानी के किनारे की हरी घास और जंगली फल हैं। रात में तो सांभर समीपवर्ती खेतों में खूब चरते हैं। पेड़ों के कोमल कल्ले और शाखाएं भी सांभर का स्वादिष्ट भोजन हैं। सांभर प्रतिदिन पानी पीता है और पानी की तलाश में प्यास लगने पर कभी-कभी काफी दूर तक भी चला जाता है।

सांभर का जोड़ा बांधने का समय चीतल से भी अधिक झमेले का है और निश्चित नहीं बताया जा सकता, क्योंकि कभी-कभी लगातार दो-दो वर्ष तक इनके शृंग नहीं गिरते। फिर भी इस विषय के अधिकारियों के मत से इनका जोड़ा बांधने का समय अक्तूबर और नवम्बर के महीने होते हैं और हिमालय में वसंत ऋतु। मादा लगभग 5-6 माह में एक बच्चा देती है। जोड़ा बांधने के दिनों में रात्रि के समय जब नर एक लम्बी और धीमी रंभाने की आवाज करता है तब वह सारे जंगल में प्रतिध्वनित हो जाती है। सांभरों के जोड़ा बांधने के दिनों में ही बड़े-बड़े गिरोह बन जाते हैं अन्यथा वह अकेला रहना पसन्द करता है।

अपने विशालकाय सुंदर शृंगों के कारण सांभर का बेहद शिकार खेला जाता है और वे इतने मारे गए हैं कि बहुत बड़े शृंगों वाले सांभर अब उपलब्ध नहीं हैं। नर जब अपने बड़े शृंगों के फैलाव के साथ सतर्क खड़ा होता है तब बड़ा शानदार दिखाई देता है। नीलगाय की तरह ही सांभर भी केवल भारी राइफल से ही मार गिराया जा सकता है। हिमालय के टिहरी गढ़वाल इलाके में उसे 'जड़ाऊ' भी कहते हैं और जंगली सूअर के मांस की तरह इसके मांस का भी अचार डालते हैं और खाने वाले उसे बड़ा स्वादिष्ट बताते हैं।

मध्य प्रदेश में पहले बहुत बड़े-बड़े सांभर मिलते थे और हिमालय में तो बहुत ही बड़े सांभरों के रेकार्ड थे, पर अब न उनकी संख्या ही घट रही है वरन नमूने तो बिल्कुल ही मिट गए हैं। नीलगाय और गाय की तरह सांभर लात मारता है और अगर किसी के वह लात पड़ जाय तो वह मर ही जाता है। जंगली कुत्ते अगर सांभर के पीछे पड़ जाते हैं तो फिर मार कर ही पीछा छोड़ते हैं और उनसे सांभर पानी में भी नहीं बच पाता।

45–पाड़ा (Hog Deer)

पाड़ा, जिसे लगुना भी कहते हैं एक प्रकार का छोटा बारहसिंगा है। कंधे पर उसकी ऊंचाई 2 फुट होती है। पाड़े की गरदन और गले पर केसर नहीं होती, टांगें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं, पूंछ बड़ी होती हैं। ऊपर के जबड़े में कांपें नहीं होते। पाड़े के बदन का ऊपरी हिस्सा भूरा, हलका कत्थई या बादामी होता है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है। पूंछ का निचला हिस्सा सफेद होता है। गर्मियों में पाड़े का रंग हलका हो जाता है और दोनों बगलों में भूरे या सफेद चित्ते पड़ जाते हैं। देखने में ये चित्ते धारी से प्रतीत होते हैं। पाड़ा शावकों के सारे शरीर पर चित्तियां होती हैं, जो बड़ी होकर गायब हो जाती हैं।

पाड़ा के तीन शाखाओं वाले श्रृंगों की लम्बाई अधिक से अधिक 10 इंच या 12 इंच होती है । श्रृंगों का सामने वाला भाग पिछले भाग से बड़ा होता है।

भारतवर्ष में पाड़ा दक्षिणी भाग में बिल्कुल नहीं पाया जाता। उत्तरी भारत में आसाम से पंजाब तक हिमालय की तलहटी में पाया जाता है। भारत की मैदानी उर्वरा जमीन तक ही पाड़ा सीमित है। पाड़ा साधारण ऊंचाई के घास के जंगलों में रहता है और अधिक ऊंचाई के जंगल या घास इसको पसन्द नहीं हैं, पर कभी-कभी वह वनों में भी चला जाता है। अन्य बारहसिंगों के समान यह भी घास खाता है। स्वभावतः पाड़ा टोली बना कर नहीं रहता। दो-तीन से अधिक पाड़े एक साथ नहीं मिलते। यह तो होता है कि एक जंगल के टुकड़े में कई रहते हों। अप्रैल में पाड़ा श्रृंग गिराता है और सितम्बर या अक्तूबर में उनका जोड़े का समय होता है। अंग्रेजी में इसे 'होग डियर' इसलिए कहते हैं, क्योंकि इसकी चाल भौंडी होती है और घास में सर नीचा करके सूअर की तरह भागता ही है। पाड़े का शिकार भी रोचक होता है, क्योंकि उस पर निशान बड़ी सावधानी से लेना पड़ता है। हाथी पर से निशान अच्छा लगता है, क्योंकि पाड़ा घास में बड़ी तीव्र गति से सूअर की तरह भागता है। भागते पाड़े पर अनुमान से ही आगे निशान लिया जाता है।

46–गोंद (Swamp Deer)

गोंद और अन्य बारहसिंगों में यह अंतर है कि गोंद के श्रृंगों में तीन से अधिक शाखाएं होती हैं। बारहसिंगा का शब्दार्थ है बारह सींग वाला, क्योंकि इसके शाखाएं अधिक होती हैं, इसीलिए साधारण लोगों द्वारा बारहसिंगा ही कहलाता है। गोंद कुछ बड़ा बारहसिंगा है। इसकी कंधों पर ऊंचाई 3 फुट 8 इंच से लगाकर 3 फुट 10 इंच तक होती है। गरदन पर केसर होते हैं। थूथन लम्बी और पूंछ मंझोली होती है। बाल पतले और ऊन के रेशे से होते हैं। गोंद के श्रृंगों में सोलह से बीस तक नोकें होती हैं। जाड़ों में गोंद का रंग पीलापन लिए बादामी होता है, पर गर्मियों में ऊपरी भाग लालिमा लिए भूरा रहता है । छोटे बच्चों पर चित्तियां होती हैं। गोंद के श्रृंगों की औसत लम्बाई 30 इंच होती है, पर 38 इंच लम्बे श्रृंगों का भी लेखा है । बड़े नरों का वजन 460 पौंड से 570 पौंड तक होता है ।

भारतवर्ष में गोंद असम से लगाकर हिमालय की तराई तक पाया जाता है । मध्य भारत में विशेषकर नर्बदा नदी की घाटी में गोंद काफी संख्या में रहता है, पर वह वहां वहीं पाया जाता है, जहां साल वृक्ष के वन हैं ।

स्वभाव से गोंद कभी-कभी खुले मैदानों में भी आ जाता है, पर वह जंगल के किनारे ही रहता है। वह ऊंचे नीचे घास से भरे पेड़ और बाढ़ के इलाकों का जानवर है। जाड़ों में वह टोली में रहता है। कुछ वर्षों पूर्व तो एक-एक टोली में वे तीन-तीन सौ तक पाए जाते थे, पर अब मार डाले जाने के कारण बहुत कम हो गए हैं ।

सांभर तो प्राय: रात में चरता है, पर गोंद दिन में। रात में गोंद कभी नहीं चरता। असम में नर गोंद इक्के-दुक्के भी देखे जाते हैं। बढ़ती आबादी और जंगलों के कटने तथा खेती के विस्तार के कारण गोंद का बुरी तरह संहार हुआ है। किसी अन्य कारण से न सही, मनुष्यों के हित के कारण ही सही, उसकी रक्षा होनी चाहिए, क्योंकि इससे मांस और खाल दोनों ही प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

47–काकड़ (Barking Deer)

काकड़ बारहसिंगा वंश का एक छोटा जानवर है, जिसकी ऊंचाई कंधों पर 20 से 22 इंच तक होती है। लम्बाई भी काकड़ की केवल तीन फुट ही होती है। इसका रंग गहरा बादामी होता है, जो ऊपर कलछौंह और नीचे हलका हो जाता है। उसके मुंह और पैर हलके भूरे रंग के होते हैं, पर गले का ऊपरी भाग पेट और पूंछ का निचला भाग तथा जांघों के भीतर का भाग सफेद होता है। काकड़ के नरों के अन्य बारहसिंगों की भांति शृंग तो होते हैं, पर वे केवल दुफंकी—दो शाखाओं वाले होते हैं और सबसे विशेष बात यह है कि यह अपने पूरे शृंग नहीं गिराता, वरन केवल ऊपर का कुछ भाग गिराता है। शृंग के ठूंठ के नीचे से एक काली धारी काकड़ के चेहरे तक चली जाती है। चार पांच इंच के ठूंठों पर शृंगों की लम्बाई केवल 3 या 4 इंच



छलांगें भरता हुआ एक काकड़

होती है, पर कभी-कभी शृंग 5 इंच के भी होते हैं और लेखा तो 11 इंच लम्बे शृंगों का भी है।

वास्तव में काकड़ बन का रहने वाला प्राणी है और पहाड़ी क्षेत्र में ही रहना पसन्द करता है। भारत में यह जंगली और पहाड़ी क्षेत्र में सब जगह पाया जाता है, पर दक्षिण में कम होता है।

काकड़ इक्के-दुक्के ही पाए जाते हैं। यों तो यह सुबह-शाम बोलता है, पर आंतकित होने पर प्राय: बोला करता है। शेर-बाघ के आने अथवा और कोई संदिग्ध बात होने पर यह एकदम भागता है, खड़ा होकर बोलता है, फिर भागता है। आदमी को देख कर भी यह भाग खड़ा होता है। भागने में भी यह बड़ा दक्ष होता है। सघन झाड़ियों, पेड़ों, बेलों किसी में भी वह नहीं उलझता। काकड़ जब भागता है, तब एक प्रकार की खटर-खटर की आवाज करता है, शायद मुंह से करता जाता है। इस आवाज के बारे में अभी तक पता नहीं चला कि यह कैसे करता है। यह छोटा-सा पशु जब बोलता तो है, 'भाउ भाउ' की बड़ी तेज आवाज करता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि छोटे शरीर के आकार के हिसाब से इसकी बोली बड़ी दमदार होती है।

नर काकड़ के ऊपर के जबड़े मे दो बड़ी कांपें होती हैं, जो थोड़ी मुड़ी होती हैं और नीचे की ओर बाहर दिखाई देती हैं। ये कांपें ही नर काकड़ की रक्षा करती हैं। किसी हिंस्र पशु की पकड़ में आ जाने पर इन्हीं कांपों से वह उन्हें मारता है। नासमझ आदमी अगर घायल काकड़ को पकड़ ले तो यह उसे भी घायल कर देता है। कांपों से बड़े तेज घाव हो जाते हैं।

काकड़ का जोड़ा बांधने का समय उत्तरी भारत में प्राय: जनवरी और फरवरी के महीने हैं और जून या जुलाई में मादा एक या दो शावकों को जन्म देती है। फिर भी काकड़ के बच्चे किसी भी महीने में देखे जा सकते हैं। काकड़ के शृंग मई मास में गिरते हैं और अगस्त मास तक पूरे हो जाते हैं।

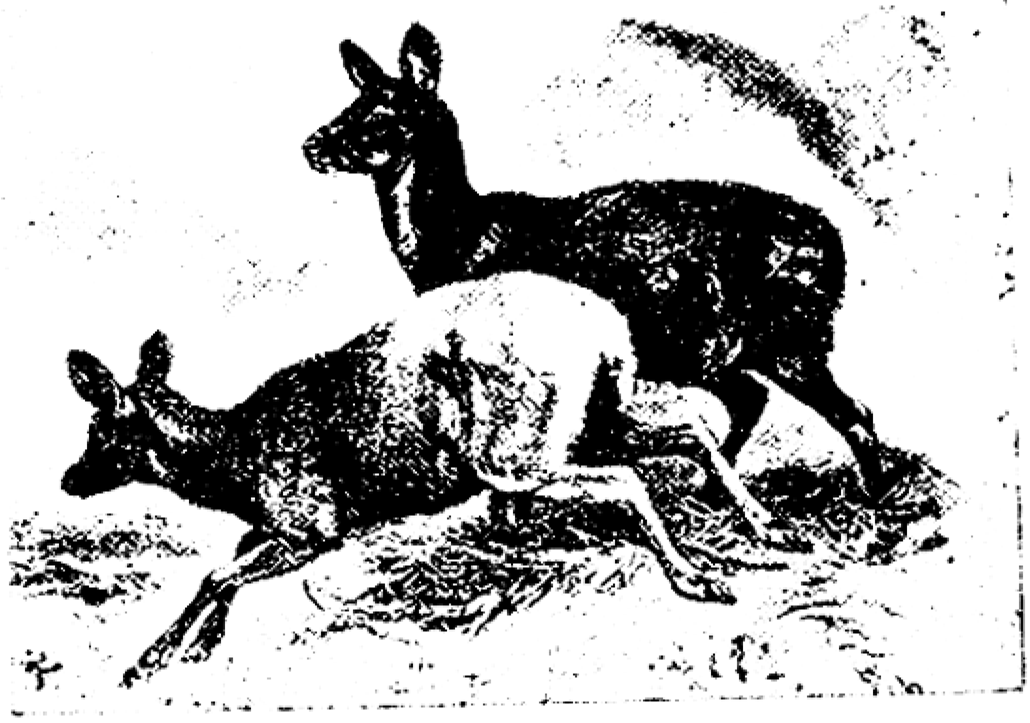
शिकार करते समय घेरे जाने पर काकड़ घेरनेवालों की पंक्तियों को तोड़ कर भाग निकलता है। मांस खाने वाले कहते हैं कि इसका मांस कुछ खटास लिए हुए होता है। जंगल का प्रहरी काकड़ शिकारियों का बड़ा मददगार है। जब शेर या बाघ मार पर आते हैं, तब काकड़ आंतक सिग्नल देता है और शिकारी जान जाता है कि अब बाघ या शेर अपने स्थान से चल दिया। इसकी आवाज भी बहुत दूर तक सुनाई पड़ती है।

मैदानी इलाकों से काकड़ बचता है। हिमालय में लेखक ने काकड़ को आठ हजार फुट की ऊंचाई तक देखा है। टिहरी गढ़वाल के सामने वाले पर्वत पर आठ हजार फुट की उंचाई पर लेखक ने इसको मारा है और कुशकल्याण पर्वत चोटी से नीचे रिंगाल के जंगल में इसको बुलाने की कोशिश की है। 'भाउ भाउ' की आवाज अनभिज्ञ व्यक्ति को आतंकित कर देती है। इसके बच्चे की पतली-सी आवाज 'टी-टी' होती है। चौड़ी पत्ती को दुहरा कर मुंह से बजाने से वैसी ही आवाज निकलती है। झाड़ी की आड़ में से वैसी आवाज करने से काकड़ आ जाता है। रिंगाल के घने जंगल में झाड़ी के पीछे से जैसे ही लेखक ने आवाज की, तो दूर पर काकड़ बोला और काकड़ के आने से पहले ही उस 'टीं-टीं' की आवाज पर बाघ आ गया। खैर यह हुई कि 10-12 फुट की दूरी से बाघ ने देख लिया और गुर्रा कर भाग गया।

48—कस्तूरा (Musk Deer)

कस्तूरा अन्य बारहसिंगों की अपेक्षा कुछ विशेषताएं रखता है, जो कुछ तो आंतरिक हैं और कुछ वाह्य। बारहसिंगा वंश के किसी भी जीव के गॉल ब्लैडर

नहीं होता, पर कस्तूरा के गॉल ब्लैडर होता है और कस्तूरा के नर तथा मादा में से किसी के भी शृंग नहीं होते।



नर और मादा कस्तूरा

कस्तूरा की पिछली टांगे अगली टांगों से तनिक बड़ी होती हैं, इसलिए उसकी चाल भोंडी मालूम पड़ती है। यह छोटा-सा प्राणी केवल बीस इंच ऊंचा और तीन फुट से अधिक लम्बा नहीं होता। इसका रंग गहरा भूरा होता है और कहीं-कहीं सिलेटी चित्तियां पड़ी होती हैं। नीचे का भाग हलके रंग का होता है। बच्चों के बदन पर बादामी या सफेद चित्ते होते हैं। पिछली टांगें बड़ी होने के कारण खरगोश की तरह भागता है। कस्तूरा के कान अपेक्षाकृत बड़े होते हैं, पर पूंछ छोटी होती है, जिसमें नर की पूंछ में तो बालों का गुच्छा-सा हो जाता है, पर मादा की बालों दार पूंछ होती है। कस्तूरा के शरीर के समूर के प्रत्येक बाल की नोक काली होती है, पर नीचे बाल सफेद होता है। ठोड़ी, कानों की भीतरी कोर और जांघों के भीतर का भाग भी सफेद होता है। नर की नाभि में ग्रंथि होती है। शृंगों के अभाव और भीतर गॉल ब्लैडर होने के अतिरिक्त कस्तूरा के कांपे होती हैं और नर की कांपों की लम्बाई 3 इंच होती है। ये कांपें ऊपर के होंठ में से नीचे को बाहर निकली होती हैं। कस्तूरा के खुर भी चट्टानों पर कूदने के उपयुक्त बने होते हैं, जिससे वह पूरी तेजी के साथ खतरनाक चट्टानों पर दौड़ सकता है।

भारतवर्ष में कस्तूरा कश्मीर से लगाकर हिमाचल प्रदेश, टिहरी गढ़वाल, कुमाऊं और सिक्किम में पाया जाता है। गर्मियों में कस्तूरा आठ हजार फुट से नीचे नहीं उतरता, पर वैसे प्राय: 9-10 हजार फुट की ऊंचाई पर यह मिलता है। लेखक ने कस्तूरा को 9 हजार फुट की ऊंचाई पर टिहरी के कुशकल्याण और चम्बासर के बीच जुलाई के महीने में देखा है।

स्वभाव में कस्तूरा खरगोशों से बहुत मिलता है और उन्हीं की तरह दिन में अपने घास के छिपाव के स्थान में छिपा पड़ा रहता है। इसके चरने का समय प्रात:

काल और सायंकाल है। इसको जाड़ा नहीं लगता और कैसा भी भयंकर शीत हो कस्तूरा का समूर ही ऐसा होता है, जिसके भीतर वह आराम से गरम रहता है। बसंत ऋतु में हिमालय पर कश्मीर के आसपास जब सारी पृथ्वी बरफ से ढकी होती है कस्तूरा मजे से प्रत्येक पेड़ के पास उनकी फुनगियां खाने की खातिर घूमता रहता है।

रही कस्तूरा की बोली की बात तो वह बहुत कम बोलता है, यहां तक कि जोड़ा बांधने के दिनों में भी चुप ही रहता है। अगर पकड़ा जाए या फंस जाए तब लगातार चीखें-सी मारता है, अन्यथा कभी-कभी एक हल्की सी 'हिस-हिस' की आवाज करता है। जनवरी में कस्तूरा का जोड़ा होता है और जून में अधिकांश तौर पर एक ही बच्चा होता है, पर कभी-कभी दो भी हो जाते हैं।

कस्तूरा की खुराक में घास-पात तो है ही, साथ ही वह केदार पत्ती खाता है, जो बड़ी सुगंधित होती है। इसी कारण कस्तूरा के मलमूत्र में भी सुगंध आती है। नर की नाभि की ग्रंथि में ही कस्तूरी का नाफा एक छोटी थैली के रूप में होता है। नाफे में दो वर्ष की आयु के नर में एक तरल पदार्थ के रूप में कस्तूरी होती है। कस्तूरा को मार कर नाभि की थैली के मुंह को दबा कर कस्तूरी निकाली जाती है। उस समय उसमें इतनी तीव्र गंध होती है कि सही नहीं जाती। मुंह पर कपड़ा बांध कर ही कस्तूरी को निकालना संभव है। मुंह और नाक खोल कर कस्तूरी निकालने से उसकी भयंकर गरम तासीर के कारण नाक से खून निकलने लगता है। थैली में से निचोड़कर रख लेने के बाद में कस्तूरी काली और कड़ी हो जाती है। असली कस्तूरी एक चावल-भर दूध या चाय में मिला कर पीने से भयंकर जाड़ों में भी पसीना आ जाता है। कस्तूरी की खातिर कस्तूरा चोरी-चोरी इतना मारा गया है कि यदि उसको संरक्षण नहीं मिला, तो बिल्कुल ही उसके खतम हो जाने की आशंका है। असली कस्तूरी को राजस्थान तथा अन्य स्थानों में अमीरों को बड़ी-बड़ी ऊंची कीमतों पर बेचा जाता है। एक नाफे में एक औंस कस्तूरी निकलती है।

अंग्रेज शिकारी कस्तूरा का शिकार या तो पैदल उन जंगलों में, जिनमें वह रहता है, घूम-घूम कर और प्रत्येक खार को खोज-खोज कर करते थे या भारतीयों द्वारा जंगल का हांका करवा के शिकार खेलते थे। जिन क्षेत्रों में कस्तूरा पाया जाता है, वहां के निवासी कस्तूरा को पकड़ने के लिए जंगल में बाड़े की-सी रोक लगा कर छोड़ देते हैं। जब कस्तूरा आता है, तब उस रोक के सहारे-सहारे चलता है। मील डेढ़ मील लम्बी जगह में लगी रोक से उसे कुछ गड़बड़ भी नहीं प्रतीत होती। रोक के सहारे चलते-चलते कस्तूरा एक छोटे संकरे मार्ग पर जा पहुंचता है, जहां जाल लगा होता है। बस उस मार्ग से निकलते ही वह फंस जाता है और फिर मार लिया जाता है। बाड़े की रोक और जाल लगा कर आदमी चले जाते हैं और दूसरे तीसरे दिन उसे देखते रहते हैं।

कस्तूरा का एक बड़ा शत्रु हिम बाघ है। अत्यंत लजीला जीव कस्तूरा अपने स्वभाव से आदमी की गंध मात्र से ही भाग जाता है, पर हिमालय का बड़ा उकाब

तक, इसके बच्चों को उठा ले जाने को तैयार रहता है। मादा कस्तूरा बच्चे को अपने साथ इन्हीं सब कारणों से नहीं रखती है। अगर मादा के दो बच्चे होते हैं तो वह उनको भी एक दूसरे से अलग-अलग छिपाकर रखती है। जहां वे बच्चे रखे जाते हैं वहीं जाकर वह उन्हें दूध पिला आती है।

49—संगाई या मस्तक श्रृंग हिरन (Sangai)

संगाई (मस्तक श्रृंग हिरन), जिसे अंग्रेजी में (Brow Antlered Deer) कहते हैं, केवल मनीपुर में ही पाया जाता है। पहले यह रिपोर्ट कर दी गई थी कि संगाई का विनाश हो गया और वह लुप्त हो गया और 1952 में इसे अंतिम बार देखा बताया गया। पर कुछ वर्षों बाद ही दो तीन संगाई मनीपुर में दिखाई पड़े और भारत सरकार से उसे सुरक्षा मिल गई तथा उसके बचाव के लिए कड़े नियम बना दिए गए। अब अनुमान है कि संगाई की संख्या लगभग एक सौ तक पहुंच गई है। संगाई के विषय में हमें किसी पुस्तक से कोई जानकारी नहीं मिल सकी, तब लेखक ने मनीपुर के चीफ कमिश्नर अपने मित्र श्री जगतमोहन रैना आई० ए० एस० को गाई के विषय में जानकारी के लिए एक पत्र लिखा। तब श्री रैना ने मनीपुर के चीफ फॉरेस्ट आफीसर से संगाई के विषय में निम्नलिखित नोट भिजवाया:—

साधारण विवरण

बाल कड़े और बेगरे होते हैं। नर ६ गहरा कत्थई या काला-सा रंग होता है। मादा का रंग हलका भूरा होता है। बच्चों के चित्ते होते हैं। ऋतु परिवर्तन के साथ संगाई का रंग भी बदलता प्रतीत होता है। शीतकाल के संगाई का गहरा कत्थई रंग गर्मियों में पिलाई मायल भूरा हो जाता है। बर्मी संगाई से भारतीय संगाई का एक भेद यह है कि इसके पिछले मुजम्मे (Pastern) विकसित और बालों वाले न होकर सींग के-से होते हैं। इस विकास से यह लाभ होता है कि दलदली जमीन में संगाई के पैर, चलने में बड़ी सहायता देते हैं। अन्य बारहसिंगों से अलग संगाई अपने विचित्र श्रृंगों के कारण शीघ्र ही पहचाना जा सकता है। ये श्रृंग मस्तक के ठूंठों से समकोण बनाते हुए सिर पर होते हैं। दोनों श्रृंग एक दूसरे से तुलनात्मक दृष्टि से करीने से नहीं होते। कुछ दूरी तक सींग शाखा रहित होते हैं, बहुत घूमे हुए और अंत में दोफंके हो जाते हैं। बड़ी उमर के नरों में सींगों का झुकाव एक स्पष्ट कोण बनाता है और कम उमर के नरों में सींगों का मोड़ जारी रहता है, जैसे अंग्रेजी के अक्षर सी (C) में।

स्वभाव और रहने का स्थान

संगाई घने जंगलों और पहाड़ों से बचता है। पहाड़ों और नदियों के बीच के छुट-पुट जंगलों को संगाई पसंद करता है। दिन को गर्मी में वह साये और छिपाव की जगह में रहता है और प्रातः तथा सायं को चरता है। दिन में वह सोता

है। रात पड़ते ही वे खुली जगहों में चरने निकलते हैं और करीब के खेतों पर भी धावा बोलते हैं। तीव्र दृष्टि और तीव्र गति ही उनके बचाव के मुख्य साधन हैं। उन्हें घास बहुत पसंद है और कोपलों को खूब खाते हैं।

संगाई के मांस का प्रकार

उनके मांस के विषय में निश्चित ज्ञान अभी उपलब्ध नहीं है, पर संगाई का मांस अच्छा कहा जाता है।

यह सुन्दर प्राणी कंधों पर लगभग 4 फुट ऊंचा होता है। मादा छोटी होती है। इसकी लम्बाई नाक के सिरे से पूंछ के सिरे तक 4 फुट से 5 फुट तक पूरे जवान नरों में होती है। संगाई के नर 210 पौंड से 245 पौंड तक भारी होते हैं।

शृंगों का वर्णन और लम्बाई

इसके शृंगों की अधिकतम ऊंचाई 42 इंच होती है। 35 इंच से ऊपर के शृंग बढ़िया माने जाते हैं। अगस्त के मध्य में नर अपने शृंग गिराते हैं और दिसम्बर के अंत तक नए सींगों का मखमली भाग सूख कर गिर जाता है। तब शृंग सबसे अच्छी हालत में होते हैं। मादा के शृंग नहीं होते।

मादा अक्तूबर में एक ही बच्चा देती है। अनुमानतः मनीपुर के संगाई सुरक्षित क्षेत्र में संगायों की संख्या एक सौ के लगभग होगी। संगाई की रक्षा के लिए कड़े प्रतिबन्ध हैं, इसलिए इनकी संख्या अब और बढ़ गई होगी।

•गवय वंश

अंग्रेजी के 'एन्टीलोप' शब्द के लिए गवय शब्द का प्रयोग किया गया है। गो वंश और गवय वंश में मुख्य भेद यह है कि गवय वंश के जीवों में गलकम्बल नहीं होता और गो वंश के गलकम्बल होता है। इसके अतिरिक्त दोनों की शरीर-रचना में भी भेद होता है। नीलगाय गवय वंश का हिरन है, गो वंश का नहीं। 'मनुस्मृति' में नील गाय के लिए गवय शब्द का प्रयोग किया गया है। गवय वंश के जीवों पर लिखने से पूर्व उस वंश की विशेषताओं पर लिखना आवश्यक है।

विभाजन की दृष्टि से गवय वंश को एक ओर गो-वंश से और दूसरी ओर अज-वंश से विभाजित करना कठिन है। गवय वंश के शरीर की बनावट सुगठित और ऊंचे उठे सिर बड़े शानदार प्रतीत होते हैं। गवय वंश के सींग प्रायः लम्बे, और कभी-कभी बनावट में घुमावदार होते हैं, पर यह आवश्यक नहीं है कि गवय वंश की मादा ों के भी सींग होंगे। सींगों में स्पष्ट घेरे होते हैं और प्रायः ऊपर खड़े हुए होते हैं। इस वंश के जीवों के सींगों का ऊपरी भाग पूरा ठोस होता है। इन जीवों की आंखों के नीचे एक ग्रंथि होती है, जिसके कारण ये गो वंश और

अज वंश से अलग पहचाने जा सकते हैं, पर दांतों के विषय में यह है कि कुछ के तो दांत गो वंश से मिलते हैं और कुछ के अज वंश से।

गवय वंश के जानवरों का बाहुल्य अफ्रीका और एशियाई देशों में ही है, पर जनसंख्या के बढ़ने से गवय वंश की संख्या बुरी तरह घट रही है।

50—नीलगाय

नीलगाय को 'रोझ' भी कहते हैं। यह गाय नहीं है, एक प्रकार का हिरन है और इसकी गणना वैज्ञानिक वर्गीकरण से ऐंटीलोप में ही की जाती है। नीलगाय में गाय शब्द लगा रहने के कारण कहीं-कहीं लोग इसे न मारते हैं न मारने देते हैं। गोभी में भी गो शब्द है और और थोड़े से ही लोग भले ही आपत्ति करें अन्यथा सब बड़े स्वाद से खाते हैं। नीलगायों में नर के सींग होते हैं, मादा के नहीं होते। ऊंट, बकरी और हिरन की तरह वे मेंगनी करते हैं। शरीर विज्ञान का खयाल न भी करें तब भी गाय की जो पहचान गलकम्बल की है, वह उसमें नहीं होता।

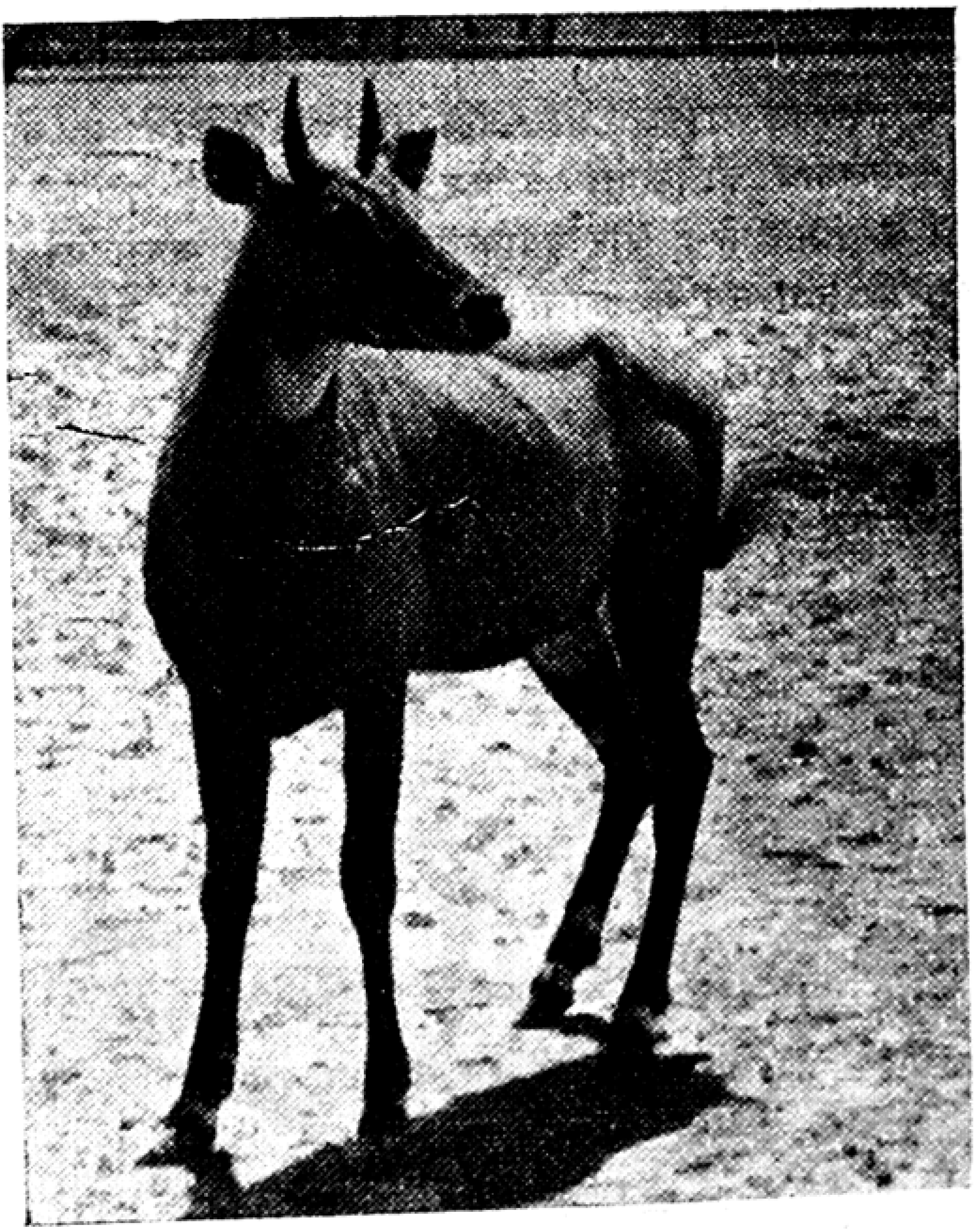
नीलगाय शुद्ध भारतीय जानवर है, क्योंकि भारतवर्ष के बाहर वह और कहीं-नहीं मिलती। भारत में भी बंगाल, बिहार असम और मलाबार तट पर नहीं पाई जाती है। कदाचित बाढ़ग्रस्त और अति वृष्टि के क्षेत्रों में वह ठीक तौर पर नहीं पनपती। नीलगाय की ऊंचाई 5 फुट और लम्बाई 7 फुट होती है। नर के 8-9 इंच के सींग होते हैं और युवावस्था में गले पर बालों का एक गुच्छा-सा निकल आता है तथा रंग में कालापन आ जाता है, वैसे जन्म के समय नर



नीलगाय का एक झुंड

और मादा के रंगों में कोई भेद नहीं होता। नीलगाय की अगली पसलियां पिछली से लम्बी होती हैं और कूल्हे ऊंचे होते हैं, इसलिए देखने में नीलगाय भौंड़ी और असंतुलित प्रतीत होती है। इसकी पूंछ के निचले भाग पर बाल होते हैं और वह घुटनों तक लंबी होती है। नर और मादा दोनों की गरदन पर केसर होते हैं, पर नर के गले के नीचे बालों का गुच्छा-सा लटकता है। आंख के नीचे की गिल्टी बहुत छोटी होती है और थूथन बाल रहित होती है। वयस्क नर का रंग गहरा सलेटी होता है और गरदन, गले और पूंछ के लंबे बाल काले रंग के होते हैं। चेहरे, कान और गले पर सफेद से चिह्न होते हैं।

मैदानी क्षेत्रों में या छोटी-छोटी पहाड़ियों में नीलगाय पाई जाती है और समतल मैदानों में भी उसकी कमी नहीं होती। झाड़ियां और छोटे-छोटे पेड़ ही उसे पसन्द हैं, वह घने जंगलों का जीव नहीं है। नर एकाकी होता है और कभी-कभी दस-बारह की टोली में भी पाया जाता है। उसके झुंड में पांच जानवरों से लगा कर 50 तक जीव होते हैं और इसकी निश्चित सीमा नहीं है।



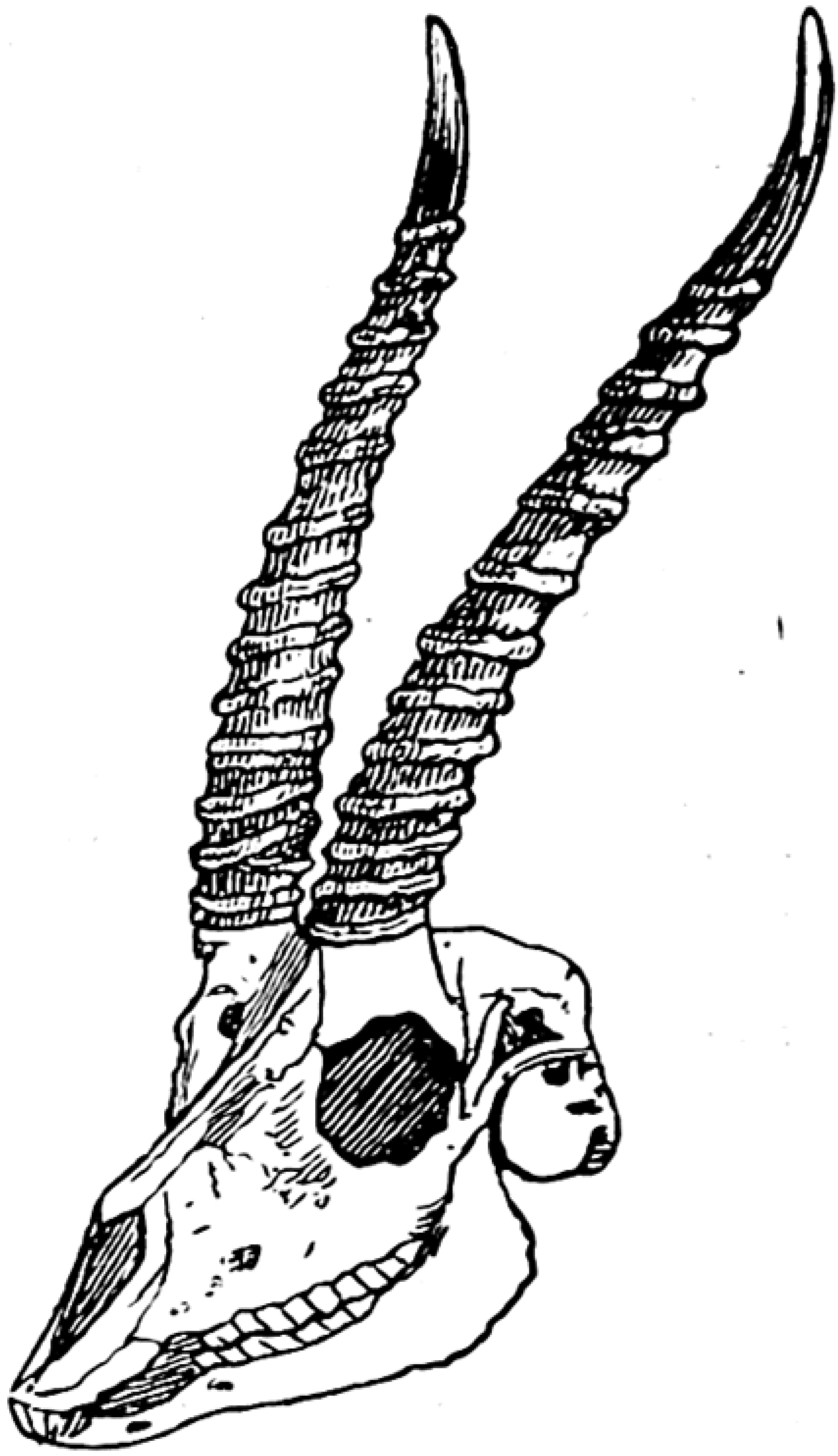
नीलगाय

एक बार में मादा एक या दो बच्चे देती है। बच्चे देने का समय प्रायः जुलाई-अगस्त है। नीलगाय आसानी से पाली भी जा सकती है, पर नर बड़ा दुष्ट होता है और मार पर आ जाता है। इसका शिकार बल्लमों से भी होता है। वह दिन और रात दोनों समय चरती है, पर जहां आदमियों की भीड़-भाड़ हो, वहां वह रात में ही आकर चरती है। जहां उसका शिकार नहीं होता, वहां वह आदमियों से बहुत कम डरती है, पर वैसे वह बड़ा चौकन्ना जानवर है। जिन स्थानों से नीलगाय को दिन में भगाया जाता है, वहां वह रात में चरने आती है। दो से लगा कर बीस-बाइस और कभी-कभी पचास-पचास तक की टोली भी खेतों में आ जाती है। जिस खेत में होकर दस-पांच नीलगायें भाग कर निकल जाएं, उस खेत का झुरकुट उड़ जाता है। रात में नर खेतों में लड़ते हैं और फसल का एक पौधा भी नहीं छोड़ते। कुछ खास फसलों के तो वे जानी दुश्मन हैं। नीलगाय जहां आती हो, वहां अरंडी की खेती तो कोई कर ही नहीं सकता। कोई न कोई मौका पाकर वह अरंडी को खतम कर ही जाती है। पोश्त, ज्वार, बाजरा, मकई, मूंग, मसीना, जई, गेहूं कुछ भी नीलगाय से नहीं बचता। खेती के लिए हानिकारक जानवरों में इसका नाम सर्वप्रथम आता है। एक नीलगाय प्रतिदिन लगभग दस आदमी का खाना बिगाड़ती है। इसको मारने के लिए बड़ी बोर की राइफल ही ठीक होती है। यह इतना दमदार जानवर है कि बड़ी राइफल की गोली ओछी पड़ जाने पर मीलों घायल अवस्था में भागता चला जाता है।

नीलगाय की खाल की घोड़े की काठी बहुत अच्छी बनती है, सूटकेस और जूते भी बहुत बढ़िया बनते हैं। शिकारी द्वारा पीछा किए जाने पर नीलगाय धोखाधड़ी भी बहुत करती है—खेत में छिप कर लेट जाती है। अधिक घायल होने पर भी झाड़ी की ओट में ही छिपती है। भारतवर्ष से काला हिरन और चिकारा मिट रहे हैं, पर बड़े दुख की बात है कि खेती का शत्रु नम्बर एक नीलगाय बढ़ रही हैं और लगातार बढ़ती जा रही हैं।

51—चिकारा

चिकारा, चिनकारा या चिन को अंग्रेज़ी में 'रेवीन डियर' कहते हैं। देहाती लोग इसे फुसकैला कहते हैं, क्योंकि आतंकित होने पर यह खड़ा होकर अपने अगले पैर जमीन से मारता है और मुंह से 'फुस-फुस, हिस-हिस' की आवाज करता है। पूंछ तो सदा ही चिकारे के दाएं-बाएं चलती रहती है। आकार में यह काले हिरन से छोटा होता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी मादा के भी सींग होते हैं। नर के सींग मादा के सींग से बड़े घुमावदार और पीछे को मुड़े हुए होते हैं। चिकारे के शरीर का सारा ऊपरी भाग तथा टांगों का बाहरी भाग खैरे रंग का होता है, परन्तु नीचे का सब भाग सफेद होता है और पूंछ कालिमा लिए हुए होती है। चिकारे के सींगों में 15-16 उठे-उठे छल्ले से पड़े होते हैं और उनकी लम्बाई एक फुट तक होती है।



चिकारे की खोपड़ी

चिकारा बड़े झुंडों में नहीं रहता। दो से लगाकर आठ दस या अधिक तक की टोली में रहता है। हमारे देश में चिकारा उत्तरी पश्चिमी इलाकों, राजस्थान और मध्य भारत में पाया जाता है। बंगाल, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में वह नहीं मिलता। काले हिरन की भांति चौकड़ी तो यह नहीं भरता पर दौड़ता बहुत तेज है। यह ऊंची-नीची जमीन में रहना अधिक पसंद करता है और खेतों में आने की अपेक्षा छोटी झाड़ियों तथा बंजर भूमि में अधिक रहता है। पथरीली खारों वाली जमीन में रहने के कारण ही उसे अंग्रेजी में 'रेवीन डियर' कहते हैं। चम्बल और यमुना के खादरों में पहले यह बहुत होता था, पर अब तो इन क्षेत्रों से मिट गया है । हां, पंजाब के हरियाने इलाके में हिसार के आसपास यह अब भी पाया जाता है। खादरों और पथरीली जमीन में यह खूब तेजी से भागता है । पंजाब में तो काले हिरनों के साथ यह चरता भी है।

यह घास और झाड़ियों की पत्तियां खाता है, और आक आदि रसदार पत्तों को खाकर भी गुजर कर लेता है और पानी नहीं पीता, क्योंकि चिकारा ऐसे स्थानों में भी मजे से रहता है, जहां पानी केवल गहरे कुंओं से ही मिल सकता है।

चिकारे की आंखें इतनी सुन्दर होती हैं कि शायद इसी की आंखों के कारण 'मृगनयनी' शब्द से सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्री को सम्बोधित करते हैं। काले हिरन और चिकारा हिरन के रहन-सहन में बड़ा अन्तर है।

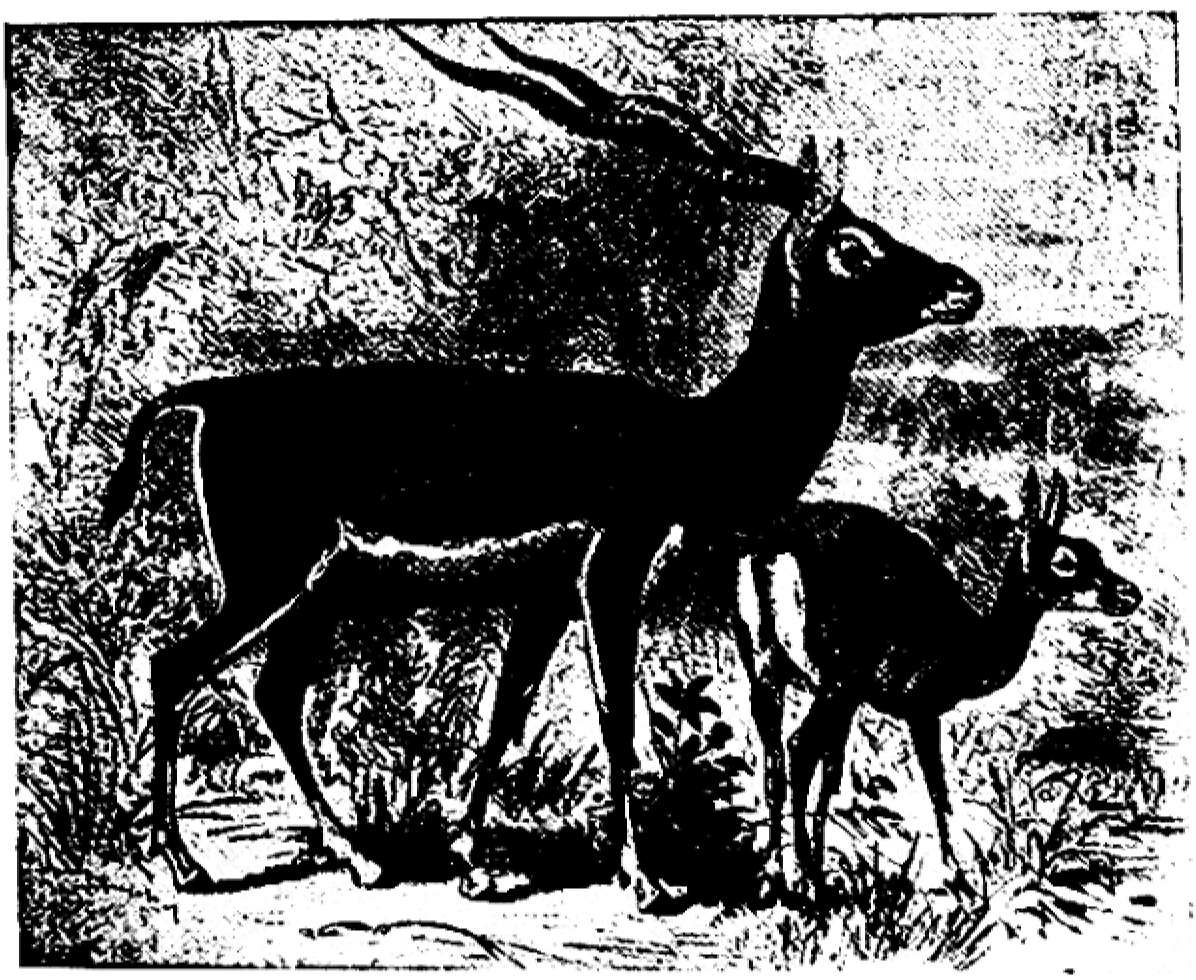
अब से 25-30 वर्ष पूर्व तक चिकारे को आगरे और मथुरा के जंगलों में आठ-आठ, दस-दस की टोलियों में लेखक ने देखा था, पर अब उन्हीं स्थानों पर एक भी चिकारा नहीं मिलता। इस अति सुन्दर हिरन के बिल्कुल ही खतम हो जाने की आशंका है। खेती का चिकारा कोई विशेष नुकसान नहीं करता और काले हिरन की

ही तरह आसानी से पाला जा सकता है, पर वह इतनी तेजी से घट रहा है कि उसके लोप हो जाने का खतरा है। उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों से तो वह लोप हो ही चुका, इसलिए इसको बचाने के लिए पंजाब के प्रसिद्ध हिसार फार्म और उत्तर प्रदेश के आगरे जिले के कीयम झील के आस-पास स्थान सुरक्षित कर देना चाहिए। इसकी सुरक्षा के लिए कड़े नियम बनाने चाहिएं और चोरी-छिपे इसके मारने वाले को कड़ा दंड मिलना चाहिए।

52—काला हिरन

काला हिरन, जिसे 'कृष्णासार' या 'कालिया' कहते हैं हमारे देश के मैदानी इलाकों का बड़ा सुन्दर जानवर है। घने जंगलों, पहाड़ी क्षेत्रों और झील झिलारे स्थानों में काला हिरन नहीं मिलता। भारत में यह हिमालय को छोड़ कर सारे देश में पाया जाता है, पर पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश—विशेषकर पश्चिमी और मध्यवर्ती उत्तर प्रदेश—और कुछ दक्षिण की ओर बहुत बड़ी संख्या में पाया जाता है।

अब से तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व तक पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इनकी दो-दो, ढाई-ढाई सौ की टोलियां देखने को मिलती थीं। स्वभावत: काला हिरन टोली में रहनेवाला जानवर है और एक दल दस बारह हिरनों से लगाकर हजारों की संख्या तक कितने का ही हो सकता है, पर अब तो बहुत वर्षों से इतने बड़े झुंड नहीं रहे। बीस तीस और पचास जीवों के झुंड में एक बड़ा काला हिरन अवश्य रहता है, छोटे पट्ठे भी दो तीन अवश्य रहते हैं, पर कभी-कभी बड़ा हिरन उन पट्ठों को झुंड से निकाल देता है, तब वे अपना अलग झुंड बना लेते



नर और मादा काला हिरन

हैं, पर अब तो यह लुप्त सा हो गया है। जिन स्थानों में सैंकड़ों काले हिरन मिलते थे वहां अब कभी-कभी एक दो दिखाई पड़ जाते हैं। पंजाब का हरियाना क्षेत्र और राजस्थान में अब भी काले हिरन मिल जाते हैं। भिवानी और हिसार के बीच भी इनकी कुछ बड़ी टोलियां अब भी मिल जाती हैं। अन्य प्रदेशों में काले हिरन के लुप्त होने का कारण शिकारियों द्वारा इसका मारा जाना है। मैदानी इलाकों में काले हिरन का स्थान अब नीलगाय ने ले लिया है।

काले हिरन के शरीर का ऊपरी हिस्सा तथा टांगों का बाहरी भाग भूरा होता है। जन्म के समय तो नर और मादा का रंग एक-सा होता है, पर जब नर के सींग निकलने लगते हैं, तब उसका रंग बदलना शुरू हो जाता है और जवान होते होते पीठ का रंग सिलेटी होकर कालेपन पर आ जाता है। नर की जैसे-जैसे उमर बढ़ती है, वैसे-वैसे उसके मुंह और पीठ का रंग काला होता जाता है, पर पेट और पुट्ठों का भीतरी भाग बिल्कुल सफेद होता है और आंखों के चारों ओर भी सफेदी रहती है। घुटनों पर बालों का गुच्छा होता है।

इस हिरन की ऊंचाई 32 इंच और लम्बाई 4 फुट होती है और छोटी सी पूंछ होती है। नर के सींग होते हैं, पर मादा के नहीं होते। नर के लम्बे और ऐंठे हुए सींग होते हैं। सींगों पर उठी-उठी गड़ारियां सी होती हैं और तीन से पांच ऐठनें होती हैं। सींगों की साधारणतया औसत लम्बाई बीस इंच होती है, पर हरियाने और पंजाब तथा राजस्थान के हिरनों के सींग अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं, जिनकी लम्बाई $28\frac{3}{4}$ इंच तक पाई गई है।

काले हिरन का स्वभाव है कि वे प्रायः एक ही स्थान पर सुबह और शाम लेंडी करते हैं। दिन में दोपहर को आराम करने के बाद शाम, रात और सुबह उनके चरने का समय है। मैदानी इलाकों की भयंकर गर्मी में बबूलों के साये में आबादी से दूर बैठ कर जब काले हिरन का झुंड आराम करता है, तब प्रायः हिरनियां और कभी-कभी हिरन भी प्रहरी का काम करते हैं।

इस हिरन का चारा—घास, पत्तियां, मूंग, मसीना (दालें) तथा अन्य फसलें है, जिन में से गेहूं और ज्वार उसे बहुत पसंद हैं। गर्मियों में आक के पत्ते खाकर अपनी पानी की कमी को वह पूरा कर लेता है और अगर आठ-दस-मील के दायरे में पानी न हो तो फिर वह पानी पीता भी नहीं है, पर जिन स्थानों में पर्याप्त पानी मिल जाता है वहां वह खूब पानी पीता है।

काले हिरन की मादा गर्मियों से लगाकर बरसात तक एक बच्चा देती है और कुत्तों से उसे बचाने के लिए घास में छिपा कर रखती है। हिरनी के साथ जब छोटा बच्चा होता है और कुत्ते पीछा करते हैं, तब हिरनी बच्चे को छोड़ कर कुत्तों की ओर धीमी चाल से भागती है, ताकि कुत्ते उसके पीछे पड़ जाएं। फिर तेज दौड़ कर, चक्कर काट कर वह अपने बच्चे के पास आ जाती है। घायल काला हिरन भी जब अधिक नहीं चल पाता, तब खेत और झाड़ी में छिपने की पूरी कोशिश करता है और कभी-कभी शिकारी को झांसा भी दे देता है।

सूखे मैदानों और समतल पृथ्वी पर काला हिरन इतना तेज दौड़ता है कि कोई भी शिकारी कुत्ता उसे पकड़ नहीं सकता। बारिश के दिनों में जब कुत्ते पीछा करते हैं, तब

छलांग मारने में उसके पैर कीचड़ में फंस जाते हैं। ऐसी दशा में वह बहुत जल्दी थक जाता है और कुत्ते उसे पकड़ लेते हैं अन्यथा उसे कोई घुड़सवार भी नहीं पकड़ सकता। चौकड़ी मारता हुआ काला हिरन बड़ा ही शानदार जानवर मालूम होता है। कभी-कभी तो वह एक चौकड़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और तीसरी के बाद चौथी चौकड़ी लगातार लगा देता है। वह दृश्य देखने ही योग्य होता है, मालूम पड़ता है मानो किसी स्प्रिंग के सहारे वह कुदाया जा रहा हो। चौकड़ी भरने में वह जमीन से ऊपर उड़ता-सा मालूम पड़ता है। जवान हिरन और हिरनियां बीस फुट लम्बी छलांग भरते हैं और अपनी पूरी गति की दौड़ में काला हिरन 60 मील प्रति घंटा के हिसाब से दौड़ता है।

टोली के नेतृत्व के लिए काले हिरनों में भयंकर लड़ाई घंटों तक चलती रहती है और सींगों की टक्कर बड़ी दूर तक सुनाई पड़ती है। टोली से हराए जाने पर काले हिरन इक्कड़ हो जाते हैं। इस प्रकार के इक्कड़ प्रायः काफी बड़ी उमर के हिरन होते हैं। जब एक नर लड़ाई के लिए जाता है तब बड़ी अकड़ के साथ सीना ताने आगे बढ़ता है और लड़ाई ठन जाती है।

जाड़ों में रात के समय और उषाकाल से पहले नर हिरन के बोलने की 'ऐह ऐह' की आवाज सुनाई पड़ती है। वह आतंकित होने पर हिस-हिस की-सी आवाज करता है।

काला हिरन बड़ी आसानी से पाला जा सकता है। वह बकरी का दूध थन से ठाट से पीता है। हिरनियां पलकर बकरियों के साथ चरने लगती हैं और बकरों से उनके बच्चे भी हो जाते हैं, पर नर बच्चे को लोग नहीं पालते हैं, क्योंकि वह बड़ा होकर शरारती हो जाता है और बड़े बड़े सींगों के कारण खतरनाक भी बहुत हो जाता है।

मैदानी क्षेत्रों की यह शोभा, काला हिरन, संरक्षण चाहती है। हिरन इतना घट रहा है कि अगर उसे संरक्षण नहीं मिला, तो वह मिट जाएगा। पंजाब और राजस्थान में भी जहां इनकी संख्या अभी है वहां भी वह कम होती जा रही हैं। इनका स्थान नीलगायों ने ले लिया है, जो कि खेती का भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक नुकसान करती हैं।

इसका मांस रूखा होने पर भी स्वादिष्ट होता है।

53–चौसिंगा (Four Horned Antelope)

चौसिंगा गवय वंश का एक खास प्रकार का जीव है। जैसा इसके नाम से स्पष्ट है इसके चार सींग होते हैं। चारों सींग केवल नर के होते हैं, मादा के नहीं होते। छोटे सींग आंख के ठीक ऊपर होते हैं और बड़े सींग इस वंश के सब जीवों के समान माथे पर होते हैं। आंख के नीचे इस वंश के सब जीवों के समान ग्रंथि होती हैं। इसके सिर पर बालों का गुच्छा नहीं होता। नर के जो सींग होत हैं वे छोटे, चिकने और गोलाकार होते हैं।

नर चौसिंगा की कंधे पर ऊंचाई 25½ इंच होती है, पर कूल्हे पर इसकी ऊंचाई 27 इंच होती है और लंबाई 3 से 3½ फुट होती है। इसका समूर छोटा, पतला और कड़ा होता है, पर पूंछ के ऊपरी भाग पर शरीर के अन्य स्थानों की अपेक्षा तनिक बड़ा होता है। इसके शरीर का रंग बादामी पिलाई-सी लिए भूरा होता है और टांगों का भीतरी भाग था पेट बिल्कुल सफेद होता है। अगली टांगों में एक काली धारी होती है, पिछली टांगों

में वैसी ही छोटी धारी होती है। छोटे सींगों की लम्बाई $1\frac{1}{2}$ इंच तक होती है पर किन्हीं में $2\frac{1}{2}$ इंच तक के भी सींग पाए जाते हैं। बड़े और माथे वाले सींगों की लम्बाई $3\frac{1}{2}$ से 4 इंच होती है, पर किन्हीं-किन्हीं चौसिगों में 44 इंच तक के बड़े सींग पाए गए हैं।

भारतवर्ष में चौसिंगा हिमालय की तलहटी में पंजाब से नेपाल तक पाया जाता है और उत्तर भारत के गंगा के मैदानी इलाकों को छोड़ कर फिर दक्षिण भारत के पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में पाया जाता है। चौसिंगा को न तो घने जंगल पसंद हैं न सपाट मैदानी इलाके, वरन छितरा झाड़ियों वाला जंगल पंसद है।

चौसिंगा गवय वंश के अन्य जीवों से स्वभाव में भिन्न है। भिन्नता इन अर्थों में है कि वह पानी से कभी दूर नहीं जाता और प्रतिदिन पानी पीता है। खरगोश की भांति यह झाड़ियों में छिपा रहता है और शिकारियों को एकाएक लंबी घास में से भागता दिखाई पड़ जाता है। झुंड बना कर भी यह नहीं रहता और शरमीला जीव है, जो झटके के साथ चलता मालूम पड़ता है। चौसिंगा का मांस रूखा होने पर भी स्वादिष्ट होता है।

मादा जनवरी-फरवरी में एक या दो बच्चे देती है।

पिसूरी वंश (Family Tragulidae)

प्राणि शास्त्रवेत्ता पहले इसकी गणना बारहसिंगों में करते थे और इसे कस्तूरा का निकट सम्बंधी बताते थे, पर जीवों के विभाजन में बाह्य समानताएं सर्वदा विभिन्न जीवों को एक ही वंश में रखने को बाध्य नहीं करतीं। मोटे ढंग से तो पिसरी की गणना बारहसिंगों में और विशेषकर कस्तूरा के साथ की जा सकती है, क्योंकि पिसरी वंश के कस्तूरा की तरह सींग नहीं होते और कस्तूरे की ही तरह इस वंश के जीवों के कापें होती हैं।

पिसूरी वंश के ऊपरी जबड़े में अंतिम डाढ़ को छोड़ कर तीन दूध की डाढ़ें चंद्राकार न होकर ऊपर की ओर को फैली हुई और तेज नुकीली धारों वाली होती हैं। साथ ही इस वंश का गरदन वाला मेरुदंड का भाग जुगाली करनेवालों के समान भी नहीं होता है। पिसूरी वंश के जीवों की टांगों में 'मेटा कार्पल' और 'मेटा टार्सल' हड्डियां पूरी होती हैं, जबकि अन्य जुगाली करनेवालों में ये हड्डियां या तो होती ही नहीं या फिर अधूरी होती हैं। इस वंश के जीवों के पेट अन्य जुगाली करनेवाले जीवों के पेट की तरह चार खानें वाले न होकर केवल तीन ही खाने वाले होते हैं। अतः इसको एक प्रकार का बारहसिंगा भी माना जा सकता है।

पिसूरी वंश को दो जातियों में विभाजित किया गया है :—(1) **एशियाई पिसूरी जाति** (2) **अफ्रीकन पिसूरी जाति**। शुद्ध अथवा एशियाई पिसूरी जाति को पांच उपजातियों में विभाजित किया गया है जिसके जीव भारत, सीलोन और मलाया में पाए जाते हैं। एशियाई पांच उपजातियों में से भारत में केवल एक ही जाति पाई जाती है।

54—पिसूरी (Indian Mouse Deer)

भारतीय पिसूरी अन्य सब पिसूरियों से इस बात में भिन्न है कि भारतीय पिसूरी के ऊपर सफेद चकत्ते होते हैं और गले तथा ठोड़ी पर बाल होते हैं।

पिसूरी दक्षिण भारत में दो हजार फुट की ऊंचाई से नीचे ही पाया जाता है। उत्तर में उड़ीसा के पूर्वी तट तक और दक्षिण में बम्बई तक पश्चिमी घाट पर पाया जाता है, पर अत्यंत छोटे कद का यह हिरन अत्यंत शरमीले स्वभाव और छिपने की आदत के कारण दिखाई नहीं पड़ता। इसी कारण इसके स्वभाव के विषय में बहुत कम जानकारी है।

पिसूरी की ऊंचाई केवल 10 या 12 इंच होती है, वजन केवल 5 से 6 पौंड तक। लम्बाई में पिसूरी केवल $1\frac{1}{2}$ से 2 फुट तक ही होता है। शरीर के बाल घने, पतले, और मुलायम होते हैं। शरीर के ऊपरी भाग का रंग भूरा होता है, जिस पर सफेदी लिए पीली चित्तियां गरदन से पूंछ की जड़ तक ऐसी होती हैं मानो धारियां पड़ी हों। नीचे का भाग सफेद होता है और गरदन के दोनों ओर नीचे को तीन सफेद आड़ी पटरियां सी बनी रहती हैं। स्वभावतः पिसूरी अकेला रहनेवाला जीव है। यह सदा जंगलों, पत्थरों तथा चट्टानों के आस-पास ही रहना पसंद करता है। किसी भी खतरे की संभावना होने पर फौरन गुफा में घुस कर छिप जाता है। दिन भर तो पिसूरी किसी गुफा या चट्टान के नीचे पड़ा आराम करता रहता है। पिसूरी अत्यंत सीधा और डरपोक जीव है।

पिसूरी जून या जुलाई में जोड़ा बांधता है, लेकिन जाड़ा आते ही फिर एकाकी हो जाता है। मादा पिसूरी एक बार में दो बच्चे जाड़ों में देती है।

इसका मांस खाया जाता है और बहुत स्वादिष्ट बताया जाता है।

—:o:—

अज वंश

भेड़ों और बकरों का विभाजन उनकी विशेषताओं तथा शरीर-रचना से बड़ा कठिन है। अज वंश के नरों में एक विशेष प्रकार की गंध आती है, जो मेढ़ों और भेड़ों में नहीं आती। अज वंश के नरों की ठोड़ी पर दाढ़ी होती है। अज वंश के किसी भी जीव के आंखों के नीचे ग्रंथि नहीं होती। भेड़ वंश और अज वंश में एक भेद यह भी है कि अज वंश के जीवों में पिछले खुरों के बीच में ग्रंथियों का अभाव होता है। साथ ही कुछ के तो अगले पैरो में भी इनका अभाव होता है। सम्पूर्ण अज वंश के जीवों में पूछ छोटी होती है, टखनों पर कड़ी गद्दियां-सी होती हैं और किन्हीं-किन्हीं जीवों की तो छाती पर भी वे गद्दियां सी होती हैं। विभाजन की दृष्टि से शुद्ध बकरों के, जिनकी गणना 'कोपरा' जाति में है, नरों में बेहद लम्बे सींग होते हैं। ये सींग एक दूसरे के निकट आंखों के ऊपर स्थित होते हैं और सिर के ऊपर सीधे खड़े जाते हैं। सींग गोल और पीछे को घूमे हुए होते हैं। मादा के सींग अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और जड़ में कुछ दूरी पर होते ह।

दक्षिण भारत में पाए जाने वाले बकरों का वर्गीकरण एक विशेष जाति में ही किया जाता है। अज वंश की शुद्ध जंगली बकरों की दस उपजातियां है और वे सब झुंड में रहते हैं। नर मादाओं से अलग रहते हैं और कभी एकाकी भी पाए जाते हैं। जंगली भेड़ के समान जंगली बकरे भी पहाड़ी प्रदेश में पाए जाते हैं। बकरे भेड़ की अपेक्षा अधिक ऊबड़-खाबड़ और खड़ी पहाड़ियां पसंद करते हैं। पर यह बात शत प्रतिशत ठीक नहीं है, क्योंकि साकिन (Himalayan Ibex) पामीर के खुले मैदानों तक में पाया जाता है। इस वंश के सभी जीव बड़े चौकन्ने और तेज होते हैं और पेड़ों के कल्ले

तथा पत्तियां चाव से खाते हैं। भेड़ें तो केवल जमीन पर ही चरती हैं। इस दृष्टि से अज-वंश जंगल के नए पेड़ों और पेड़ों के नए कल्लों के लिए बड़ा ही हानिकारी है।

55—साकिन (Himalayan Ibex)

साकिन अर्थात 'हिमालयन आइवेक्स' भारत के हिमालय प्रदेश का एक प्रसिद्ध जंगली बकरा है। भारत में साकिन तिब्वत और भारत को विभाजित करने वाली हिमालय की पंक्ति पर कश्मीर से गोमुख तक ही पाया जाता है। एक अंग्रेज लेखक के मत से सन् 1854 तक साकिन कई-कई सौ के झुंड में मिलता था, पर अब यह बहुत कम रह गया है। इस प्रकार के वकरे और देशों में भी पाए जाते हैं तथापि उनके चार प्रकार हैं, जिनमें हिमालय की साकिन जाति एक विशेष जाति है। साकिन के, बड़ी शानदार, काले बालों की सात-आठ इंच लम्बी दाढ़ी होती है। अन्य देशों के वकरों की अपेक्षा हमारे देश का साकिन, आकार में भी बड़ा होता है और सींग भी उसके बड़े होते हैं।


साकिन का सिर

साकिन का समूर बड़ा और चमकदार होता है। जाड़ों में समूर के नीचे वढ़िया पश्मीना हो जाता है, जिसके कारण इसे भयंकर शीत की कोई चिंता नहीं रहती। नर के बड़े ही सुंदर और वहुत बड़े सींग होते हैं, जिनमें सामने की ओर गांठें-गांठें सी होती हैं। साकिन का रंग मौसम के अनुसार बदलता रहता है। गर्मी में रंग भूरा होता है, जो नीचे हलका पीला सा हो जाता है, जबकि जाड़ों में यह पोलापन सफेदी लिए होता है। बूढ़े नरों की पीठ पर भद्दे सफेद चित्ते-से हो जाते हैं। साकिन के पीठ पर एक काली लकीर होती है। दाढ़ी, पूंछ और टांगें, कलछौंह गहरे भूरे रंग की होती हैं। शरीर का नीचे का भाग और टांगों के भीतर का हिस्सा सफेद होता है। मादा के पीठ के रंग में लालिमा होती है।

एक पूरे नर साकिन की कंधों पर ऊंचाई लगभग 42 इंच तक होती है। वढ़िया नर के सींगों की लम्वाई 40 इंच से 55 इंच तक होती है, पर एक बहुत वढ़िया नर के सींग 54 इंच लम्बे भी पाए गए हैं। पहली गांठ के ऊपर 54 इंच लम्बे सींग की

गोलाई 1½ इंच थी। सींग माथे पर सीधे जाकर पीछे को मुड़ जाते हैं। मादा साकिन के सींग अधिक से अधिक बारह इंच के होते हैं।

साकिन थार से भी ऊंचे स्थानों पर रहता है और अगम्य कंगूरों तथा हिमाच्छादित स्थानों पर ही मिलता है। हिम अंधड़ से परेशान होकर कभी-कभी नीचे उतर आता है। वंसत ऋतु में जब घास के नए कल्ले जमने लगते हैं और बरफ पिघल जाती है, तब वह उन कल्लों को चरने आता है। साकिन की दृष्टि बहुत तेज होती है, पर घ्राण शक्ति तीव्र नहीं होती और वह सदा नीचे के खतरे से बचता है। अतः होशियार शिकारी साकिन को पीछे से किसी ऊंची चट्टान से चढ़ कर मारते हैं। वसंत और ग्रीष्म के प्रारम्भ में साकिनों के झुंड ऊंची चट्टानों और बरफ में चरते देखे जा सकते हैं। एक समय में थोड़ी देर केलिए वे आराम करते हैं और शीत में वे नीचे पहाड़ियों पर चरते दिखाई पड़ जाते हैं। जब तक वे शिकारी को देख ही न लें तब तक बंदूक की आवाज से भागते नहीं है, क्योंकि वे चट्टानों के टूटने की आवाज के अभ्यस्त होते हैं। यदि झुंड में से कोई साकिन किसी संदिग्ध वस्तु को देखता है तो वह एक तेज सीटी सी देता है और पूरी टोली भाग जाती है। साकिन गिरोह में रहने वाला जीव है और-कभी कभी बीस तक की टोली में मिल जाता है, पर साधारणतया 6–7 साकिन ही साथ रहते है।

जाड़ों में तो साकिन अगम्य चट्टानों से नीचे आते हैं, पर बरफ गलते ही वे फिर वहीं चले जाते हैं। साकिन के शिकार का सबसे अच्छा मौका मई और जून में होता है, जब नई घास हिम सीम पर जमने लगती है। भयंकर हिमपात में तो वे गांव की सीमा तक नीचे उतर आते हैं और तब गांव वाले खूब डट कर इनका शिकार करते हैं। कर्नल कार्खम ने सन् 1854 में लिखा है कि उन्होंने सिंधु नदी की घाटी में सौ से अधिक साकिनों की एक टोली देखी थी, पर अब तो उनकी संख्या बेहद कम हो गई है।

साकिनों के जोड़े का समय शीतकाल में होता है, जब नर ऊंचीं चट्टानों से नीचे मादाओं के पास आ जाते हैं। मादा साकिन मई या जून में बच्चा देती है, जिनकी संख्या कभी एक और कभी दो होती है।

साकिन का मांस खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसी स्वादिष्ट मांस के लालच के कारण जिन क्षेत्रों में यह पाया जाता है वहां के निवासी इसे मारते हैं।

56–मारखोर (Markhor)

मारखोर भी भारत का प्रसिद्ध जंगली बकरा है। हमारे देश में यह एक बहुत सीमित क्षेत्र में यानी कश्मीर की चिनाब घाटी से कश्मीर की बाहरी सीमा तक ही मिलता है। थोड़ा आगे सुलेमान पहाड़ की ओर भी मारखोर पाया जाता है और अपने स्वादिष्ट मांस के कारण मारा भी काफी जाता है।

मारखोर और अन्य जंगली बकरों में दो भेद हैं—एक तो यह कि इसके सींग बहुत बड़े और डाट खोलने के स्क्रू की तरह घुमावदार होते हैं। मारखोर के एक प्रकार के सींग में तो केवल डेढ़ चक्कर ही होता है, परन्तु दूसरे में तीन घुमाव होते हैं। पहले तो यह ख्याल किया जाता था कि ये दोनों प्रकार भिन्न-भिन्न उपजातियों के हैं, पर बाद की खोजों से स्पष्ट हो गया कि वे एक ही हैं।



मारखोर (काबुल की नस्ल)

इसकी कंधों की ऊंचाई 3 फुट 8 इंच होती है और लम्बाई 5 फुट होती है। करीब चार फुट लम्बे सींग ऐंठे और घुमावदार होते हैं। जवान मारखोर की बड़ी शानदार दाढ़ी होती है, जो केवल ठोड़ी पर ही नहीं होती वरन सीने और कभी-कभी कंधों तक होती है। सामने से तो गरदन और छाती के बाल काले होते हैं, परन्तु पीछे से उनका रंग राखी होता है। मारखोर का रंग भूरा सा होता है, पर शरद ऋतु में मटमैला हो जाता है। मारखोर के शावकों का रंग राखीमायल भूरा होता है और पीठ पर एक काली धारी होती है। नर के शरीर से तेज दुर्गंध आती है।

स्वभाव से मारखोर अपने वंश के समान झुंड में ही रहने वाला जीव है और अत्यंत पहाड़ी प्रदेश ही इसे पसंद है। आकार में साकिन से बड़ा होने पर भी और भारी होने पर भी मारखोर पहाड़ी चट्टानों और दुर्गम स्थलों पर भागने में अद्वितीय है।

अभी तक यह पता नहीं चल सका कि इसका नाम मारखोर क्यों पड़ा, क्योंकि मारखोर का अर्थ है मार (सांप) खाने वाला। मादा मारखोर मई-जून में एक या दो बच्चों को जन्म देती है।

कश्मीर भारत की शोभा है और मारखोर तथा कश्मीरी बारहसिंगा, कश्मीर के अतिरिक्त हमारे देश में अन्यत्र कहीं नहीं मिलते, अत : उनके अंधाधुंध मारे जाने पर रोक लगनी चाहिए।

57–थार (Thar)

थार भारतीय हिमालय का जंगली बकरा है। हमारे देश में थार कश्मीर से लगाकर हिमालय प्रदेश, गढ़वाल, कुमाऊं और भूटान तक पाया जाता है। ब्लेनफोर्ड के मत से

थार और नीलगिरी के बकरे को अन्य जंगली बकरों से अलग मानना चाहिए, क्योंकि नर थार के न तो दाढ़ी होती है और न चेहरे पर ही आंखें इतनी उठी हुई होती हैं और सींग भी फौरन ही सीधे पीछे मुड़ जाते हैं। थार के सामने के खुरों में ग्रंथि भी नहीं होती।

थार के सींग काले होते हैं। सिर पर बाल छोटे होते हैं, पर शरीर पर वे बढ़ जाते हैं और पुराने नर थारों में गरदन के बाल इतने बढ़ जाते हैं कि नीचे घुटनों तक लटकते केसर मालूम पड़ते हैं। इनके रंगों में अंतर होता है—कोई किसी रंग का, कोई किसी रंग का, पर बालों का रंग आमतौर से लालिमा लिए भूरा होता है। नीचे का रंग हलका होता है, पैरों का सामने का भाग काला सा लगता है। नर के दाढ़ी नहीं होती। बच्चे पीले से रंग के होते हैं। अन्य बकरों से इसमें एक विशेषता यह है कि जब अन्य बकरियों के दो थन होते हैं तब मादा थार के चार थन होते हैं।



थार

नर थार की ऊंचाई तीन फुट से सवा तीन फुट तक होती है। बढ़िया बड़े सींग 12 इंच से 15 इंच तक के होते हैं, पर मादा थार का आकार भी छोटा होता है और सींग भी केवल 10 इंच तक के ही होते हैं।

थार घने जंगल और अगम्य तथा भयानक चट्टानों में रहता है, जहां ऊंचे पेड़ भी हों। पुराना नर थार तो विशेषकर भयानक चट्टानों और जंगलों में रहना पसंद करता है। मादा तो जंगल के बाहर भी आ जाती है। उन कंगूरों पर, जहां आदमी की पहुंच नहीं होती, थार कूदता-फांदता रहता है। हमारे अनुभव से ऐसे स्थानों में एक पुराने नर थार का शिकार करना 15 शेरों के शिकार के बराबर है। उन भयानक चट्टानों, टूटी दरारों और खतरनाक कंगूरों में आदमी का पहुंचना आसान काम नहीं। कदम-कदम पर खड्ड, चट्टान पर लेट कर राइफल दागने से चट्टान टूटने का खतरा! डिवीजनल फोरेस्ट अफसर श्री हकीमुद्दीन का सारा जीवन जंगलों में शिकार खेलते बीता है। थार के शिकार के सम्बन्ध में वे लेखक के मत से सहमत हैं कि नर थार जिस क्षेत्र में रहता है, उसमें उसका शिकार अत्यंत कठिन है। थार की ही भांति कंगूरों पर संतुलन रख सकने वाला और प्रतिक्षण खड्ड में गिर कर मरने को तैयार रहने वाला व्यक्ति ही उसका शिकार खेल सकता है।

58–नीलगिरि का जंगली बकरा

नीलगिरि पर्वत का जंगली बकरा भी हमारे देश का बड़ा प्रसिद्ध बकरा है। तमिल में इसे 'वरै आडु' कहते हैं। भारतवर्ष में यह पश्चिमी घाट से कुमारी अंतरीप तक और

नीलगिरि तथा अनामलाई पर्वत पर पाया जाता है। समुद्र तट से चार हजार फुट से छः हजार फुट तक की ऊंचाई पर यह बकरा रहता है। कभी-कभी नीचे भी आ जाता है।

नीलगिरि बकरे की ऊंचाई साढ़े तीन फुट तक होती है, और सींग बारह से सोलह इंच तक लंबे होते हैं। शरीर के बाल मोटे और कड़े तथा रंग गहरा बादामी और पीठ पर गहरी धारियां पड़ी होती हैं। मादा का आकार और सींग छोटे होते हैं।

यह बकरा ढलवां पहाड़ियों पर रहना पसंद करता है और चट्टानों के नीचे की ओर छोटी-छोटी ढलवां पहाड़ियों पर चरा करता है। इसके 5–6 से लगाकर 50–60 तक के झुंड होते हैं। मादा प्रहरी का काम करती है। इस बकरे के केवल दो ही दुश्मन होते हैं एक तो बघेरा और दूसरा आदमी। इसके जोड़े का कोई निश्चित समय नहीं है और सब मौसमों में इसके बच्चे पाए जाते हैं।

59–भेड़

भेड़ 'ओविस' जाति का जानवर है। भेड़ चलते में सिर ऊंचा करके चलती है। इसकी गरदन अपेक्षाकृत छोटी होती है। नर और मादा दोनों के ही सींग होते हैं, पर मेढ़े के सींग मोटे और बड़े होते हैं और भेड़ के छोटे तथा पतले होते हैं। आंख के नीचे भेड़ के ग्रंथि होती है। एक दूसरी विशेष बात भेंड़ में यह होती है कि प्रत्येक खुर के बीच में एक ग्रंथि होती है। मादा के दो ही थन होते हैं। भेंड़ों से किसी विशेष प्रकार की गंध नहीं आती और न उनकी ठोड़ी पर दाढ़ी होती है। जंगली भेड़ की पूंछ भी अपेक्षाकृत छोटी होती है। कान साधारण लम्बाई के होते हैं। बाल छोटे और कड़े होते हैं। भेड़ की दाढ़ें चिकारे से मिलती हैं।

जंगली भेड़ों की ग्यारह जातियां हैं, जिनमें से अधिकांश योरोप और एशिया की हैं। भेड़ खुले हुए पहाड़ी इलाके पसन्द करती है, अतः ये सब जंगली जातियां पहाड़ी हैं।

60–उरियल या शा (Urial or Sha)

इस जंगली भेड़ के दो भेद होते हैं, एक तो पंजाब की नमक की पहाड़ियों के पास (जो अब भारत के बाहर है) और दूसरी लद्दाख की जंगली भेड़, जिसे वहां 'शा' कहते हैं। इस भेड़ की विशेषता इसका छोटा आकार और बहुत बड़े भारी सींग हैं। साधारण तौर पर उरियल की ऊंचाई 2 फुट 8 इंच की होती है, पर शा 3 फुट की होती है। मेढ़े के सींग चौड़े और गोलाई से पीछे को मुड़े होते हैं, पर मादा के सींग छोटे पतले और सीधे होते हैं। मेढ़े के सींगों की लम्बाई 24 इंच से 30 इंच तक होती है, जिनकी जड़ पर गोलाई 10 इंच होती है, पर ब्लैनफोर्ड ने लिखा है कि एक बढ़िया उरियल के सींगों की लम्बाई $37\frac{3}{4}$ इंच थी, जिसकी जड़ पर गोलाई $11\frac{1}{5}$ इंच थी। जवान बड़ी उमर के उरियल के गले पर लम्बे बाल होते हैं, जो ठोड़ी के दोनों ओर बराबर बंट कर लटकते रहते हैं और कुछ दिनों बाद बढ़ कर मिल जाते हैं तथा छाती तक बढ़ कर लटकने लगते हैं। शा में ये बाल कम लम्बे होते हैं। उरियल का रंग जाड़ों और गर्मियों में बदलता रहता है। गर्मियों में तो उसका रंग गहरा खैरा सिलेटी होता है, पर जाड़ों में हलका सिलेटी हो जाता है। नीचे

का भाग, पैर और पुट्ठे सफेद होते हैं। बदन के बाल छोटे, कड़े और काफी घने होते हैं। कंधों के पीछे गहरा कत्थई या काला धब्बा होता है। नीचे की सफेदी को विभाजित करती हुई एक काली सी रेखा होती है। मादा भेड़ और छौने का रंग एक-सा सिलेटी मायल भूरा होता है।

लद्दाख में शा खुली घाटी में रहती है। उरियल घास के मैदानों और पहाड़ी चटियल क्षेत्रों में भी रहती है, क्योंकि उरियल जितने लम्बे चौड़े क्षेत्र में फैली हुई है, उतनी और कोई एशियाई भेड़ नहीं है। इसकी टोली में तीन चार से लगाकर तीस तक भेड़ें होती हैं। नर और मादा प्राय: एक ही साथ झुंड में रहते हैं, पर गर्मियों में नर अलग हो जाते हैं; थार और बरड़ के समान पहाड़ों, कंगूरों आदि पर चढ़ने में इतनी कुशल तो नहीं है, पर वे बड़ी तेज और चौकन्नी होती हैं। आतंकित होने पर एक तेज सीटी की सी आवाज करती है और साधारण बोली मिमियाने की होती है।

मादा गर्मियों में एक या दो बच्चे देती है। इन भेड़ों का जोड़ा पालतू भेड़ से भी हो जाता है।

61–बरड़ (Bharal)

बरड़ को केवल किताबों से जानने वाले लोग 'भरल' कहते हैं। गढ़वाल, लद्दाख और कुमाऊं में यह हमारे देश में पाई जाती है और जहां-जहां यह होती है वहां लोग इसे बरड़ ही कहते हैं। स्वभाव में बरड़ भेड़ और बकरे के बीच का जानवर है। अंग्रेजों में इसे 'तिब्बत की नीली भेड़' कहते हैं। यह जानवर हिमालय की मुख्य धुरी का विशेष-कर उत्तर की ओर का है।



बरड़

भारतवर्ष में हिमालय से सटे उन प्रदेशों में जहां बरफ पड़ती है और जहां घास के चटियल पहाड़ हैं, वहां बरड़ रहता है। जंगल और झाड़ियों से बरड़ बचता है, गर्मियों में सोलह हजार फुट तक की ऊंची चट्टानों पर चला जाता है और जाड़ों में दस हजार

फुट से नीचे नहीं उतरता। यह झुंड में रहने वाला जानवर है। पहले इसके बहुत बड़े झुंड पाए जाते थ, पर मांस और ऊन के कारण बरड़ का बहुत संहार किया गया है।

बरड़ के शरीर का रंग सिलेटी होता है और निचला भाग बिल्कुल सफेद होता है। नर का चेहरा और पूंछ का आधा भाग काला होता है। चारों पैरों का सामने का भाग तथा पेट के दोनों तरफ एक-एक काली पट्टी रहती है। नर बरड़ बड़ा आकर्षक प्राणी है। मादा के शरीर पर काली धारियां नहीं होती हैं। बरड़ के सींग घूमे हुए पर बाहर की ओर फैले हुए होते हैं। नर बरड़ की ऊंचाई 3 फुट तक होती है। सींगों की लंबाई 24 से 26 इंच तक होती है और जड़ पर उनकी गोलाई 11 इंच होती है। बहुत बढ़िया सींग 30½ इंच से 32 इंच तक के भी पाए गए हैं, जो गोलाई में 13 इंच थे। मादा बरड़ बहुत छोटी होती है, सींग भी छोटे-छोटे होते हैं। स्वभाव से बरड़ बहुत ही भीरु पशु है। बरड़ के नर के न तो बकरों की तरह दाढ़ी होती है और न नरों में दुर्गंध आती है, अतः यह भेड़ ही अधिक है। बरड़ दिन में दोपहर को आराम करता है और ऊंची नीची भयानक चट्टानों पर चढ़ने में बड़ा कुशल होता है। नर और मादा एक साथ ही झुंडों में रहते हैं, पर गर्मियों में नर मादाओं से अलग हो जाते हैं। मादा गर्मियों में एक या दो बच्चे देती है।

हमारे देश में ऐसे जानवर मौसम के हिसाब से भारत की सीमा पार कर तिब्बत की ओर भी चले जाते हैं और फिर आ जाते हैं। लेखक ने बरड़ को गंगोत्री के निकट भैरों-घाटी से आगे जाड़ गंगा के किनारे नीलंग दर्रे के निकट पहाड़ पर लगभग 11 हजार फुट की ऊंचाई पर 10–12 की टोली में देखा है।

मांस और ऊन की खातिर आदमी तो इसे मारता ही है, पर हिम बाघ भी इसका बड़ा दुश्मन है। चट्टानों पर जब यह बैठता है तब आस-पास की चट्टानों और घासों का एक अंग सा लगता है और गतिशील हुए बिना दिखाई नहीं पड़ता। दल की रक्षा के लिए दो एक बरड़ पहरा देते रहते हैं।

——:o:——

•घुएड़ उपवंश

62–घुएड़ (Goral)

अंग्रेजी में इसे 'गुरल' लिखा जाता है, पर 'घुएड़' शब्द गढ़वाल में इस जीव के लिए प्रचलित है, इसलिए लेखक ने 'घुएड़' शब्द का प्रयोग किया है। घुएड़ आकार-प्रकार में बकरे से अधिक मिलता है, क्योंकि इसके दांत बकरे जैसे होते हैं, पूंछ छोटी होती है, पर इसके बकरे जैसी दाढ़ी नहीं होती और गोल छोटे सींग होते हैं। वैसे घुएड़ बकरे और हिरन के बीच का जानवर है।

भारतवर्ष में घुएड़ हिमालय में तीन हजार फुट की ऊंचाई से आठ हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है। ऊंची नीची जगहें घुएड़ को बहुत पसंद है और पूरी तेजी से वह वहां भाग सकता है। रात को यह ऐसे ऊंचे कंगूरे पर वास करता है, जहां बाघ भी इसे आसानी से नहीं पा सकता। देहरादून से सहारनपुर मोटर से आते समय धौलखंड की



घुएड़

पहाड़ियों में प्रात: और साय चार-चार, पांच-पांच की टोलियों में घुएड़ चरता दिखाई दे जाता है।

घुएड़ की ऊंचाई 27 इंच होती है और लम्बाई चार फुट होती है। इसके छोटे और कड़े बाल तथा मजबूत टांगे होती हैं। घुएड़ का रंग सिलेटी होता है, जो नीचे हलका हो जाता है। इसकी पीठ पर धारियां होती हैं। नर और मादा दोनों के ही सींग होते हैं। नर के सींग मादा के सींगों से बड़े होते हैं। नर घुएड़ के 6 से 8½ इंच तक के सींग होते हैं। इनके सींग पीछे को मुड़े होते हैं। सींगों में हलकी हलकी गड़ारियां भी पड़ी रहती हैं। बढ़िया बड़े से नरों के सींगों की लंबाई 9½ इंच तक होती है।

स्वभाव से घुएड़ छोटे-छोटे झुंडों में रहने वाला प्राणी है। ये झुंड चार से आठ तक के होते हैं। ऊबड़-खावड़ पहाड़ियों, खतरनाक और चट्टानी घास के इलाके घुएड़ को बहुत पसंद हैं। अगर किसी क्षेत्र में एक घुएड़ मिल जाए तो समझ लेना चाहिए कि वहां अन्य भी अवश्य होंगे। आतंकित होने पर घुएड़ एक तेज 'हिस हिस' की आवाज करके भागता है।

घुएड़ बड़ा सतर्क रहता है और उन अगम्य चट्टानों पर इसके शिकार करने का मजा वही आदमी ले सकता है, जो ऐसे स्थानों पर चढ़ने में प्रवीण हो। इसका पीछा करना बड़ा ही मनोरंजक होता है। इसका मांस बड़ा ही कोमल और स्वादिष्ट होता है।

घुएड़ प्राय: सुबह और शाम चरने को निकलता है। धूप में चरना घुएड़ को बिल्कुल पसंद नहीं है और जिस दिन बदली होती है, उस दिन वह दिन भर चरता है। इसका रंग आसपास की घास में ऐसा मिल जाता है कि यदि यह गतिशील न हो तो कोई जान नहीं सकता कि घुएड़ बैठा है। बाघ जैसा चालाक जानवर भी इसे बड़ी चालाकी से ही पकड़ पाता है।

लेखक ने लगभग 5 हजार फुट ऊंची एक पहाड़ी के एक भयंकर कंगूरे के नीचे एक घुएड़ को चौकन्ना खड़ा देखा। सामने कई फर्लांग गहरा सीधा खड्ड था और उसके दूसरी

ओर थोड़े नीचे स्तर पर [अनुमान से] 10 फुट दूर एक चट्टान थी। सायंकाल 4½ बजे इस तरह घुएड़ को चौकन्ना देख कर उसकी गतिविधि देखने को मन चाहा, क्योंकि स्पष्ट मालूम पड़ता था कि वह किसी खतरे से शंकित था। जरा देर बाद ही दो बाघों ने उसे दोनों ओर से आ घेरा। ऊपर कंगूरा था, और नीचे लगभग चार फर्लांग गहरा खड्ड। स्पष्ट था, वह बघेरों का भोजन बनेगा, पर जैसे ही घुएड़ ने बाघों को देखा, वैसे ही पीछे हट कर आगे को तेज गति से ऐसी छलांग भरी कि वह खड्ड के दूसरी ओर की चट्टान पर ही खड़ा दिखाई दिया। बाघ अपना सा मुंह लिए खड़े देखते रह गए।

घुएड़ के शिकार के लिए गया हुआ शिकारी दोपहर को आराम से अपने डेरे में विश्राम कर सकता है और उसे घुएड़ के भाग जाने की कोई आशंका नहीं होती, क्योंकि घुएड़ भी दोपहर में आराम करता है।

टिहरी गढ़वाल के परम मनोहर कुशकल्याण नामक स्थान में भयंकर कंगूरों की भाड़ में 10–12 घुएड़ों की एक टोली को सन् 1923 में लेखक ने देखा था। कुशकल्याण की समुद्रतट से ऊंचाई आठ हजार फुट से कम न होगी।

मादा घुएड़ पांच-छः महीनों में एक बच्चा देती है।

63–सिराव (Serow)

सिराव घुएड़ के उपवंश का ही जानवर है, क्योंकि यह भी बकरे और हिरन के बीच का ही जीव है। आम बनावट में वह घुएड़ से मिलता है। इसकी थूथन पर बाल नहीं होते पूंछ छोटी और मादा सिराव के चार थन होते हैं और आंख के नीचे ग्रंथि भी होती है। इसके अतिरिक्त इसका माथा सींगों के पीछे के भाग में एकदम मिल जाता है।

साधारण सिराव हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रांतों में लगभग 6 हजार फुट से बारह हजार फुट की ऊंचाई तक मिलता है। घुएड़ से सिराव बहुत बड़ा और भारी होता है। इसकी कंधों पर ऊंचाई 3 इंच होती है। सिराव के सींगों की लंबाई 9 से 10 इंच तक होती है, पर बढ़िया बड़े सींगों की लम्बाई 13½ इंच होती है। देखने में सिराव सुंदर नहीं होता है, पर सीधा-सादा जीव होता है। इसका सिर बड़ा और आकार भारी होता है, इसके बाल पतले और कड़े होते हैं और गरदन पर बालों का अयाल होता है। सिराव के कान बड़े बड़े होते हैं। सिराव का रंग कलछौंह सिलेटी होता है और सिर और गरदन काली होतीं हैं तथा रानें और सीना कत्थई और नीचे का सब भाग सफेद। नर और मादा दोनों के सींग होते हैं, पर मादा के सींग छोटे होते हैं। मादा जाड़ों में एक बच्चा देती है। सिराव का मांस साधारण होता है।

स्वभाव से सिराव बड़ी भौंड़ी गति वाला होने पर भी ऊंची-नीची चढ़ाई और उतार के क्षेत्र में बड़ी तीव्र गति से दौड़ सकता है। तेज उतार और चढ़ाई में इससे तेज चलने वाला दूसरा जानवर नहीं है। सिराव एकाकी जानवर है, किसी पहाड़ पर 3–4 हैं, तो किसी पर 4–5 रहते हैं। सबसे अधिक आनन्द इसे तेज उतार की पहाड़ियों में आता है, जहां ऊंची चट्टानें होती हैं। एक दो सायादार पेड़ के पास चट्टान की गुफाओं में यह विश्राम करता है। वैसे तो यह बड़ा सीधा और डरपोक जानवर है, पर घायल होने पर बड़ा

भयंकर हो जाता है और बुरी तरह हमला करता है। एक सिराव के मारे जाने पर उसका साथी भयंकर हमला करता है। आक्रमण किए जाने पर सिराव घोड़े की फुर्र और चीख के बीच की आवाज करता है, और जंगली कुत्तों का डट कर मुकाबला करता है। जनरल मैकेन्ड्री ने लिखा है, "एक बार मैंने एक मादा सिराव को मारा और जैसे ही मेरे आदमी उसकी लाश उठाने गए वैसे ही नर सिराव ने एक दम झाड़ी से निकल कर एक आदमी को ऐसी टक्कर दी कि वह नीचे लुढ़कता-लुढ़कता चला गया।"

8—वानर वर्ग (Order Primates)

वा-नर अर्थात विकल्प मे नर विकासवाद के अनुसार मनुष्य से निकटतम प्राणी से विकसित होकर मनुष्य बना, पर इस विवाद में भी मतभेद है। वानर वर्ग के दो उपभेद आसानी से किए जा सकते हैं—

(1) **लजीला वानर उपवर्ग**—Sub Order Lemuridae

(2) **वानर उपवर्ग**—Sub Order Anthropoidea

सम्पूर्ण वानर वर्ग पर दृष्टि डालते हुए उस वर्ग के विषय में कुछ विशेष बातों की जानकारी आवश्यक है। वनमानुषों को छोड़ कर इस वर्ग के सब जीवों के पूंछ होती है, शरीर पर बाल होते हैं और मुंह में चारों प्रकार के दांत होते हैं। कंधे की हड्डी स्पष्ट तथा हाथ की दोनों हड्डियां अलग अलग होती हैं। हाथों और पैरों में पांच-पांच अंगुलियां होती हैं, और अंगूठा अंगुलियों से छोटा होता है। इस वर्ग के जीवों की खोपड़ी बड़ी होती है और अपेक्षाकृत मस्तिष्क भी विकसित होता है। मादा की छाती पर दो स्तन होते हैं। बच्चा असहाय अवस्था में पैदा होता है।

—:o:—

• लजीला वानर-वंश

लजीला वानर उपवर्ग में भारत में केवल एक ही लजीला वानर वंश है, वैसे इस उपवर्ग के प्राणी के अफ्रीका, स्याम, लंका, मलाया, मेडेगास्कर में दो अन्य वंश भी हैं। इस वंश के प्राणी, विकास-क्रम में बानरों की अपेक्षा पिछड़े हुए हैं। इस वंश के प्राणियों के मुंह लम्बे होते हैं, कान भी लम्बे होते हैं, पर पूंछ किसी के होती ही नहीं, किसी के छोटी होती है। आंखें बड़ी बड़ी और तेज होती हैं, जो उभरी-उभरी रहती हैं। शरीर पर मुलायम बालों की तह होती है। भारत में इस वंश के दो जीव हैं :—लजीला वानर और तवांगू।

64–लजीला वानर (Slow Loris)

लजीला वानर हमारे देश में केवल असम में ही पाया जाता है। इसकी शक्ल सूरत बन्दरों से काफी भिन्न होती है। इसलिए बहुत से लोग इसे पहचानने में भूल कर देते हैं।

आकार में लजीला वानर बिल्ली से छोटा होता है, परन्तु उसका बदन बड़ा गठा हुआ होता है। इसकी लम्बाई 14–15 इंच होती है। मुंह लोमड़ी जैसा, आंखें बिल्ली जैसी, शरीर का रंग सिलेटी और लाल मिला हुआ, नीचे का भाग हलके रंग का तथा आंखों के चारों ओर सिलेटी रंग का ही घेरा होता है और पुतली पर एक सफेद धारी होती है। छोटे-छोटे कान तथा बालों में छिपी नहीं के बराबर पूंछ होती है।

यह शरमीला सुस्त जानवर सदा पेड़ों पर ही रहता है। दिन भर पेड़ पर गोल गठरी सा बना सोता रहता है। रात होते ही जागता है, कूदता है, फांदता है, भोजन के लिए चक्कर लगाना शुरू कर देता है और फल-फूल खाता है। अगर केला मिल जाए तब तो बड़ी खुशी से खाता है। लजीले वानर का मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे जानवर और चिड़ियां हैं।

इसकी एक विशेषता यह है कि इस वंश के जीवों की तर्जनी काफी विकसित होती है और इसमें तीन जोड़ होते हैं तथा स्पष्ट नाखून होता है।

मादा एक बार में एक बच्चा देती है।

65—तवांगु

लजीला वानर और तवांगु के आकार-प्रकार में थोड़ा भेद है। तवांगु का शरीर लजीले की अपेक्षा हलका, बनावट छोटी, लम्बे और पतले हाथ-पैर, आंखें बहुत ही बड़ी तथा पास-पास, कान बड़े-बड़े होते हैं। इसकी लम्बाई केवल 8 इंच होती है। इसके शरीर का ऊपरी भाग सिलेटी, नीचे का हलका, माथे पर एक सफेद तिकोना-सा निशान, कान गोल, बाल छोटे और मुलायम, बाहों की लम्बाई पांच इंच और पैरों की लम्बाई साढ़े पांच इंच होती है।

तवांगु दक्षिण भारत के जंगलों और लंका में ही सीमित है। तवांगु के विषय में ब्लैनफोर्ड ने लिखा है, "इसका स्वभाव अपने निकटतम बंधु लजीले वानर से बहुत मिलता है, यद्यपि इसकी गति इतनी स्पष्ट नहीं है। लजीले वानर के समान ही इसकी खुराक है। लजीले वानर की तरह ही गोल-मोल होकर हाथों से शाखाओं को पकड़े सिर को जांघों में छिपाए सोता रहता है!" मद्रास में एक बार एक तवांगु का जोड़ा खरीदा गया। मद्रास से कलकत्ते तक जहाज में उन्हें ले जाया गया और मार्ग में तवांगु का जोड़ा केले और भात पर ही रहा। सारे दिन वे सोते ही रहते थे।

'तवांगु' तमिल भाषा का शब्द है और उसका अर्थ है हलके पतले शरीर वाला। इसलिए जब कोई लड़का या आदमी दुबले-पतले शरीर वाला होता है तब उसे तवांगु कह कर संबोधित करते हैं। तेलुगु में इसे 'दवांग पिल्ली' कहते हैं।

इसकी खुराक फल-फूल, नरम कल्ले, कीड़े-मकोड़े, और अंडे और छोटे-मोटे पशु-पक्षी हैं। भोजन के लिए तवांगु कभी पेड़ से नीचे नहीं उतरता है।

• वानर-वंश

वानर उपवर्ग में दो वंश हैं (1) वानर वंश और (2) ऊलक वंश। वानर वंश में अनेक जातियां हैं, पर हमारे देश में दो ही प्रसिद्ध हैं :—ललमुंहा बन्दर और कलमुंहा लंगूर। बन्दर और लंगूर में मुख्य भेद यह है कि बन्दर के गालों में खाद्यान्न रखने की थैलियां होती हैं और लंगूर के नहीं होतीं। दोनों के रंगों में भी अंतर है। लंगूर आकार में बन्दर से बड़ा होता है, उसकी भौंहें भी बड़ी होती हैं और पूंछ भी बहुत बड़ी होती है।



बानेट बन्दर

66—बन्दर

ललमुंहा बन्दर जंगल में भी रहता है और आबादी में भी। शहर में रहनेवाला बन्दर तो आफत ही है। वे चोरी चपाटी से खाने का सामान उठा ले जाते हैं। बरतन उठा कर बैठ कर रगड़ने लगते हैं और खाना मिलने पर ही छोड़ते हैं। कपड़े उठा ले जाते हैं। खेती का बेहद नुकसान करते हैं और जहां उनकी टोली रहती है वहां खेतों को बचाना बड़ा ही मुश्किल होता है।

किन्हीं-किन्हीं रेलवे स्टेशनों पर व सवारी गाड़ी आने पर वे डिब्बों पर घूमते हैं और खाने का सामान चुरा ले जाते हैं। टूंडला स्टेशन पर एक बन्दर सवारी-गाड़ी के आते ही खिड़की के बाहर सिर निकालने वाले एक यात्री की टोपी ले जाता था और दो पूरियां लिए बिना टोपी वापस नहीं करता था। उस बन्दर की शरारत देख और बन्दरों ने भी उसकी नकल शुरू कर दी। मजा यह था कि यदि कोई एक पूरी दे तो वह टोपी वापस नहीं करता था और अगर कोई व्यक्ति पूरी न दे तो रेलगाड़ी के चलने पर टोपी को फाड़कर फेंक दिया करता था।

सारे भारतवर्ष में मदारी इस बन्दर को पाल कर खेल दिखा कर जीविका पैदा करते हैं। पाले जाने पर बांध कर रखना पड़ता है। अगर खुल जाए तो फिर मदारी के हाथ नहीं आता। चालाक वह इतना होता है कि यदि उसे मदारी से भागने का मौका लग जाय और साथ में जंजीर चली जाए तो एक मकान से दूसरे मकान में कूदते समय वह जंजीर मुंह में रख लेता है।



हनूमान बन्दर

सांप को वह बड़े ढंग से मारता है। यदि सांप से उसका मुकाबला पड़ जाए तो वह ताक कर उसका फन पकड़ लेता है और रगड़-रगड़ कर उसका फन कुचल देता है और गुंजलक से बचता रहता है। पोखरों से वह सिंघाड़ों की चोरी बड़े विचित्र ढंग से करता है। सिर पर मिट्टी रख कर पोखर में घुसता है और सिंघाड़े तोड़-तोड़ कर कुछ मुंह में रखता है, कुछ मिट्टी में जमाता चला जाता है। बाद में बाहर बैठ कर बड़े मजे से खाता है। तीर्थ स्थानों में तो वह अभिशाप स्वरूप है। वहां खाना खाना, रहना, बाहर सामान रखना कठिन है, क्योंकि आंख बची और बन्दर सामान ले गया। जंगलों का भी वह बड़ा दुश्मन है, कच्चे फल-फूल, बौर सबका संहार करता है। बस, बाघ और शेर के आगमन का ढिंढोरा वह जरूर अपनी चीख-पटाख से पीट देता है और आदमी तथा अन्य, पशु, बाघ या शेर की उपस्थिति से अवगत हो जाते हैं।

बंदरिया एक समय में प्राय: एक ही बच्चा देती है और कभी-कभी दो भी। बन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह की सजीव मूर्ति है। बच्चे को बंदरिया इतना प्यार करती है कि



शेर की पूंछ जैसी पूंछ वाला बंदर

जब कभी बच्चा मर जाता है तब हफ्तों मरे ही को चिपटाए फिरती है, पर अगर बच्चा कुछ खाने लगे तो फिर उससे फौरन झपट लेती है।

67—लंगूर

लंगूर कई प्रकार के होते हैं, पर लंगूरों और बन्दरों में मुख्य भेद यह है कि बन्दर के तो कपालों में थैलियां होती हैं पर लंगूर में एक बड़ी विचित्र बात यह है कि इसका आमाशय अन्य बन्दरों के समान नहीं होता, उसमें थैलियां सी होती हैं। लंगूरों के शरीर खास तौर से लम्बे और पतले होते हैं और उनकी पूंछ सिर और शरीर की लम्बाई से भी लम्बी होती है। लंगूर की खोपड़ी अन्य बन्दरों की अपेक्षा विशेष रूप से तंग होती है। माथा लंगूरों के नहीं होता। स्वभावत: लंगूर जंगल के रहनेवाले हैं और पत्तियों तथा कल्लों पर गुजारा करते हैं, पर आबादी में या पाल लेने पर सब चीजों को खा लेते हैं।

68—हनूमान लंगूर या शुद्ध लंगूर

हनूमान लंगूर समस्त उत्तरी भारत में पाया जाता है। दक्षिण-पश्चिमी-बंगाल, उड़ीसा से लगा कर बंबई और गुजरात तक यह रहता है। उत्तर में बाह्य हिमालय तक और दक्षिण में बम्बई से दक्षिण तक पाया जाता है। भारत के चार प्रकार के लंगूरों में से हनूमान लंगूर एक प्रकार है। इसके सिर पर बालों की कलंगी सी नहीं होती। हाथों, पैरों के ऊपरी भाग एकदम काले होते हैं। गालों के बाल कानों को नहीं ढकते। इस लंगूर का रंग सिलेटी मिला भूरा होता है, पर चेहरा, कान, हाथ पैर बिल्कुल काले किट्ट होते हैं।

आकार में बड़े हनूमान लंगूर का शरीर ही शरीर–30 इंच का होता है, पर औसतन लंगूर की लम्बाई 25 इंच और पूंछ की लम्बाई 38 इंच होती है।

हनूमान लंगूर की खुराक पत्तियां, नए कल्ले और सब प्रकार के अन्न हैं। स्वभाव में हनूमान लंगूर सीधा होता है और अपने आप आदमी पर आक्रमण नहीं करता। पालतू करके रखने पर उसका स्वास्थ्य बड़ा नाजुक हो जाता है। यह पेड़ पर बैठ कर शेर और बाघ को देख कर 'हू हू' की आवाज देकर शिकारियों को सिग्नल देता है कि शेर या बाघ चल पड़ा। एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाने पर भी एक आनंद की सुरीली सी आवाज करता है। किंवदंती है कि नर और मादा अलग-अलग टोलियों में रहते हैं, पर ऐसी बात नहीं है।

हनूमान लंगूरों की टोलियां कभी-कभी आपस में लड़ती हैं और श्री टी० एच० ह्यूस ने उनकी लड़ाई का आंखों देखा वर्णन इस प्रकार किया है, "मैं सिंगपुर (रीवा, मध्य-प्रदेश) के एक बाग में पड़ाव डाले पड़ा था कि पास के बाग में उत्तेजनापूर्ण शोर-गुल सुना। पास जाकर देखा तो विचित्र दृश्य था। हनूमान लंगूरों की एक छोटी टोली के सामने एक बड़ी टोली थी और आपस में लड़ने के बजाय छोटी टोली का एक बढ़िया नर आगे खड़ा था तथा बड़ी टोली के दो नर खड़े थे। पंद्रह मिनट तक तो वे खींसे दिखाते रहे, पर फिर दो नरों ने एक पर आक्रमण कर दिया, पर छोटी टोली वाले एक हनूमान ने दोनों में से एक को गला फाड़ कर मार डाला। इतने में बड़ी टोली की दो मादा हनूमानें आगे बढ़ी और छोटी टोली के नेता पर टूट पड़ीं। वह नेता तीनों से लड़ा तो खूब, पर एक मादा ने उसे पकड़ ही लिया। अब जब मैंने अकेले को असहाय पाया तब उसको बचाने की खातिर वहां पहुंच गया, पर वह इतना घायल हो गया था कि प्रातःकाल तक मर गया। छोटी टोली के नायक की सहायता के लिए उसके पास कोई नहीं आया, शायद इसके दो कारण थे कि या तो उन्हें नायक की शक्ति का पूरा भरोसा था या फिर वे विरोधी टोली की संख्या से भयभीत थे। फिर इक्के-दुक्के की लड़ाई गुरिल्ला रूप में हुई और छोटी टोली के प्राणियों को गिरफ्तार कर लिया गया। जब कभी गिरफ्तार टोली के सदस्य ने भागने की कोशिश की तब बड़ी टोली के सदस्यों ने रोका और भागने के सब नाके बन्द कर दिए। एक जवान मादा, जिसके पास एक बच्चा था उसका बुरी तरह पीछा किया गया। वह घबरा कर बड़े पेड़ की ऊंची चोटी पर चढ़ गई, पर उसको वहां से पेड़ हिलाकर नीचे गिरा लिया गया, जिससे वह बहुत चोटियल हो गई और सुबह तक मर गई। छोटी टोली इतनी आतंकित हो गई कि उनके बिल्कुल पास जाने पर भी वे नहीं बोले। असल में बड़ी टोली ने छोटी टोली के चरने के स्थान पर अधिकार कर लिया था।"

69–हिमालय का लंगूर

हनूमान लंगूर और हिमालय के लंगूर में केवल आकार का भेद होता है। हिमालय के लंगूर का आकार तनिक बड़ा होता है। वैसे इन दोनों प्रकार के लंगूरों के नरों को देखने से भेद बिल्कुल नहीं प्रतीत होता। हिमालय लंगूर का चेहरा कुछ पीलापन लिए होता है। पैर टांगों की अपेक्षा कुछ अधिक गहरे रंग के होते हैं और कान भी अपेक्षाकृत कुछ अधिक गहरे रंग के और छोटे होते हैं और गाल के बड़े बालों से ढके रहते हैं।

हिमालय का लंगूर भूटान से लेकर कश्मीर तक हिमालय में पाया जाता है। समुद्र-तट से पांच हजार फुट की निचाई तक यह लंगूर नहीं मिलता और सिक्किम में तो बारह हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है। शिमला में और मसूरी से ऊपर देवदार के जंगलों में हिमालय लंगूर उछलता-कूदता यात्रियों को दिखाई पड़ता है। कभी-कभी तो अपनी चीख पुकार से वह शिकारियों के शिकार को भगा देता है, क्योंकि शिकारी को देखकर आतंक सिगनल देता है।

70—मद्रास का लंगूर

मद्रास और लंका में हनूमान लंगूर का स्थान उसी की तरह का एक लंगूर लेता है, जिसे मद्रास लंगूर कहते हैं। मद्रास लंगूर के सिर के ऊपर बालों की एक कलंगी सी होती है तथा हाथों और पैरों के ऊपरी भाग काले नहीं होते। साथ ही मलाबार लंगूर, मलाबार के तट पर जंगलों में ही नहीं, खेतों में भी पाया जाता है और इसके सिर पर जो बालों की कलंगी है वह माथे के एक ही स्थान से प्रारम्भ होती है।

71—नीलगिरि का लंगूर

नीलगिरि लंगूर के माथे पर से निकलते बाल बिना अलग हुए पीछे की ओर को रहते हैं। नीलगिरि लंगूर अपेक्षाकृत छोटा होता है और पूछ को छोड़ कर इसकी लम्बाई 21 से 23 इंच तक होती है। पूंछ की लम्बाई 32 से 35 इंच तक होती है। शरीर के बाल लम्बे, चमकदार और बढ़िया होते हैं। सिर और पिछले भाग को छोड़ कर आमतौर पर रंग काला या काला सिलेटी होता है। नीलगिरी लंगूर के सिर का रंग भूरा मायल पीला और पिछले भाग का रंग राख जैसा होता है। इस लंगूर के बच्चे बिल्कुल काले होते हैं।

ऊपर जिन लंगूरों का वर्णन है, उनसे यह लंगूर कुछ भिन्न होता है और अपनी विशेषताएं रखता है। यह लंगूर नीलगिरि के पर्वत का है और दक्षिण भारत में वाइनाड से लगा कर कन्याकुमारी तक पाया जाता है। ब्लैनफोर्ड के मत से यह बड़ा लजीला और चौकन्ना होता है। यह छोटी-छोटी टोलियों में नीलगिरि तथा अन्य ढलुवां स्थानों में दक्षिण भारत में खूब पाया जाता है। यह लंगूर बड़ा शोर मचाता है। गले से चीख पुकार की लम्बी आवाजें निकालता है।

कुछ जातियों के लोग इस लंगूर के मांस को बड़े शौक से खाते हैं और जितना यह इस खातिर मारा जाता है उतना कोई और बन्दर नहीं मारा जाता।

72—टोपीदार लंगूर

टोपीदार लंगूर असम और भारत के उत्तरी-पूर्वी इलाके में पाया जाता है। इसे नीलगिरि लंगूर से इस प्रकार अलग पहचान सकते हैं कि इसकी खोपड़ी के ऊपर वाले बाल अधिक लम्बे होते हैं जब कि कनपटी पर बाल छोटे होते हैं। इस प्रकार वे बाल टोपी के आकार के प्रतीत होते हैं और इसलिए इसका नाम टोपीदार लंगूर पड़ा है। इस लंगूर

के ऊपरी शरीर का भाग मटमैला सिलेटी से लगा कर भूरा राख जैसा होता है। कभी-कभी खोपड़ी और पीठ का रंग अपेक्षाकृत अधिक गहरा होता है। हाथ और पैर ऊपर से गहरे रंग के या काले होते हैं, जब कि अंगुलियां पीलापन लिए होती हैं। पूंछ गहरे भूरे रंग की, जिसका अंतिम छोर काला होता है। इस लंगूर का चेहरा हमेशा काला होता है, जब कि गरदन और सिर का निचला भाग सुनहरा भूरे रंग का या पीलापन लिए होता है। चेहरे की बगलों का रंग कान के पीछे तक पाया जाता है, इसलिए गरदन के पीछे की पंक्ति टोपी के साथ स्पष्ट हो जाती है।

टोपीदार लंगूर का स्वभाव अन्य लंगूरों से मिलता है और बचपन में पकड़ा गया लंगूर बड़ी आसानी से पल जाता, है पर यदि बड़ी उमर में पकड़ा जाए तो काटता है और जंगलीपन दिखाता है।

73—नील बंदर

यह विचित्र बंदर भारत में केवल कुमारी अंतरीप से मलाबार और पश्चिमी-घाट में पाया जाता है। ट्रावनकोर और कोचीन में तो इसकी संख्या सबसे अधिक है। पश्चिमी-घाट की जंगलों वाली जमीन में यह रहता है और समुद्र-तट से काफी ऊंचाई तक भी मिलता है।

नील बंदर बारह से बीस और कभी-कभी इससे भी अधिक की संख्या में मिलता है। देखने में तो नील बंदर बड़ा डरावना मालूम पड़ता है, पर वास्तव में बड़ा चौकन्ना और



लंगूरों का एक झुण्ड

लजीला होता है। नील बंदर पलते बड़ी कठिनाई से हैं और बड़ी कठिनाई से नकल करने आदि का काम सीखते हैं।

इस बंदर की आकृति बड़ी डरावनी प्रतीत होती है, क्योंकि इसके चेहरे पर सिलेटी रंग की दाढ़ी होती है और चारों ओर बड़े-बड़े बाल होते हैं, जो काले-काले चेहरे को घेरे रहते हैं। माथे पर छोटे-छोटे बाल होते हैं। समूर लंबा होता है। पूंछ के छोर पर सिंह

की पूंछ के समान बालों का गुच्छा होता है। नील बंदर का रंग बिल्कुल काला होता है। इसके घने गलमुच्छे और बाल डरावने बूढ़े साधू की सी आकृति प्रदर्शित करते हैं। दो फुट लंबे नील बंदर के दस इंच लंबी पूंछ होती है।

आदमी से दूर रहना ही नील बंदर को पसंद है। इसकी बोली आदमी की बोली से मिलती-जुलती है। अन्य बन्दरों की तरह नील बंदर भी फल-फूल, अंडे, गल्ला और कीड़े-मकोड़े खाता है। मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।

—:o:—

वनमानुष-वंश (Gibbon)

इस वंश के बन्दरों में केवल एक ही प्रकार का ऊलक बंदर हमारे देश में पाया जाता है। सफेद हाथों वाला ऊलक (White handed Gibbon) कभी कभी हमारे देश की पूर्वी सीमा पर आ जाता है और दूसरा सफेद भौंहों वाला ऊलक (White Browed Gibbon) है, जो हमारे देश का ही प्राणी है। इसलिए भारतीय ऊलक का ही यहां वर्णन दिया जाएगा, पर इससे पूर्व इस वंश की विशेषताएं देना भी आवश्यक है।

ऊलक छोटे वनमानुषों की गणना में आता है। इस वंश के बन्दरों की खोपड़ी आदमी की खोपड़ी से मिलती है, जबड़ा भी काफी विकसित होता है और नर के कृंतक दांत बड़े तीक्ष्ण होते हैं, पर मनुष्यों से खोपड़ी की समानता उसकी केवल दिखावटी ही है, भीतरी नहीं। उसके कुकुरदंत काफी बड़े होते हैं। वनमानुषों के नाखून भी चपटे होते हैं तथा अंगूठा अन्य अंगुलियों से अलग और नाखून चपटे होते हैं। इस वंश के जीवों का रंग काले से पीलापन लिए हुए सफेद होता है। इस वंश के जीवों का स्वभाव कोमल होता है और छोटे पर पकड़े जाने पर वे आसानी से पल जाते हैं।

वनमानुष स्वभाव से पेड़ों पर और जमीन पर रहने वाले जीव हैं। अपनी लम्बी बाहों और अंगुलियों के कारण ये जीव इतनी तेज गति से चलते हैं और दौड़ते हैं कि भारतीय ऊलक तो पिंजड़े में आने वाली चिड़िया को पकड़ लेते हैं। यह स्वभाव इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि चिड़ियां उनकी खुराक हैं। इस वंश के अधिकांश जीव मैदानी जंगलों में पाए जाते हैं, पर इनकी एक जाति ऊलक पहाड़ी इलाकों में रहती है। वनमानुष पचास-पचास और सौ-सौ की टोली में चलते हैं, पर कभी-कभी एकाकी नर-वनमानुप भी देखे गए हैं। अपनी लम्बी भुजाओं के कारण इस वंश के जीव एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर, एक शाखा से दूसरी शाखा पर झूल कर ही पहुंच जाते हैं। जमीन पर भी वे काफी तेज चल लेते हैं, पर फिर भी आदमी उन्हें भाग कर पकड़ सकता है। जमीन पर वे आदमी की तरह खड़े होकर चल सकते हैं।

इस वंश के जीवों की खुराक छोटी चिड़ियां, फल-पत्तियां, नए कल्ले, मकड़े, अंडे और चिड़ियों के छोटे बच्चे हैं। चिड़ियां तो उन्हें बेहद पसंद हैं। सुबह और शाम ये जीव इतना हो-हल्ला करते हैं कि एक डरावना दृश्य उपस्थित हो जाता है। इस वंश के जीवों में भारत का एक ही प्राणी ऊलक आता है, जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

74–ऊलक या हूलक (White Browed Gibbon)

अत्यन्त प्रसिद्ध वनमानुषों में से एक ऊलक है। वनमानुष जाति के छोटे वन्दरों में से यह पुच्छहीन बन्दर है। इसका नाम ऊलक इसलिए पड़ा है, क्योंकि जव यह बोलता है तव 'हूं हक' 'हू हक' 'हू हक' की आवाज इतनी तेजी से करता है कि वातावरण प्रकंपित हो जाता है। आसाम के जंगलों में जव इनकी टोली 'हू हक' करती है तव भयानक दृश्य उपस्थित हो जाता है। प्रायः प्रातः और सायंकाल ऊलक बोलता है। भारतवर्ष में ऊलक असम, सिलहट, कछार और मनीपुर में पाया जाता है। भारत से बाहर ईरावदी नदी की घाटी, चिटगांव और अराकान आदि स्थानों में पाया जाता है।



एक बांस के जंगल में हूलकों का झुण्ड

ऊलक का रंग बिल्कुल काला या हलका पीला सा होता है और भौंहों के ऊपर एक सफेद आड़ी धारी पड़ी होती है, मानो श्वेत-चंदन लगा हो और जान बूझ कर तिलक धारी बना दिया हो। मादा ऊलक का रंग नर की अपेक्षा कुछ अधिक पीलापन लिए होता है। इसकी खोपड़ी मनुष्य की खोपड़ी से मिलती जुलती है। मनुष्य की तरह ही इसके गाल में भी थैली नहीं होती और न ही पूंछ होती है। इसके विषय में एक विशेप वात यह भी है कि वह वहुत जल्दी ही पल जाता है, यहां तक कि वड़ी उमर का ऊलक और भी जल्दी हिल जाता है। स्टर्नडेल ने अपनी एक पुस्तक 'भारत के स्तनपोषी' में लिखा है—

"ऊलक को सवसे अधिक संतोष इस वात से होता है कि कोई मेरे पास वैठे और अपनी बाहें मेरे चारों ओर लपेट ले। यदि उसको मैं अपने पास से हटाता तो वह पूरा प्रयत्न करता कि वह हटाया न जा सके। सफाई की वात जो वंदरों पर लागू नहीं होती इस पर विल्कुल लागू होती थी, वह वड़ा सफाई पसंद था। जिस दिन वह मेरे पास आया मैंने उसे एक कम्वल दिया, पर सुवह क्या देखा कि ओढ़ने की अपेक्षा उसने उसे लपेट कर तकिया वना लिया था। तव उसे दूसरा कम्वल दिया गया।"

प्रातःकाल से प्रातः 9 वजे तक तो ऊलक 'हूप-हू' 'हूप-हू' की आवाज करता रहता है, जिसमें जंगल को प्रकंपित करने के लिए कई टोलियां शामिल हो जाती हैं। यह टोली में रहने वाला जानवर है, पर अकेला भी मिल जाता है। जमीन पर यह आदमी की तरह चलता है। सुवह और शाम इसके शोरगुल से तवियत ऊव जाती है। चिड़ियाघरों में जहां ऊलक रखे जाते हैं मीलों दूर तक उनकी आवाज सुनी जा सकती है।

यह पेड़ों पर रहना ही अधिक पसन्द करते हैं और केवल खाने पीने के लिए नीचे उतरते हैं। ये फल-फूल तो खाते ही हैं, साथ ही साथ अंडे, छोटी चिड़ियों के बच्चे, मकड़ी आदि इनके विशेष प्रिय भोजन हैं।

——:o:——

9—कुतरने वाला वर्ग (Order Rodentia)

इस वर्ग को अंग्रेजी में (Order Rodentia) कहते हैं। इस वर्ग के सब जीवों के दांत तीक्ष्ण होते हैं। इस वर्ग के जीवों की विशेषता उनके जबड़ों के सामने वाले दांतों में है। इनकी दांतों की विशेषता के कारण ही इनका एक अलग वर्ग बनाया गया है। इनके जबड़ों में चारों तरह के दांत न होकर केवल दो ही तरह के दांत होते हैं, कृंतक दांत और दाढ़ें। कृंतक लंबे तथा काफी मजबूत होते हैं और उनके बाहरी भाग पर मजबूत पॉलिश चढ़ी होती है। इसी पॉलिश के कारण तामचीनी के बर्तन की तरह सामने की ओर से घिसने से बचे रहते हैं, पर उन दांतों का भीतरी भाग ऊपर और नीचे के दांतों की रगड़ से घिसता रहता है और दांत हमेशा पैने बने रहते हैं। इस वर्ग के जीवों के ये दांत निरंतर बढ़ते रहते हैं और जितना भाग घिसता रहता है उतना फिर बढ़ जाता है। हां, अगर कोई एक कृंतक दांत टूट जाता है, तब फिर दूसरा बढ़ जाता है और चूंकि वह लगातार बढ़ता रहता है और उसके घिसते रहने के लिए उसका साथी दांत होता नहीं है, अतः बढ़ते-बढ़ते दूसरे जबड़े में घुस जाता है, यहां तक कि वह प्राणी उसके कष्ट से मर जाता है।

इस वर्ग के प्राणियों के पैरों में प्रायः पांच अंगुलियां होती हैं। चलने में इनके पैरों का पूरा तलवा जमीन पर आता है। अंगुलियों में तेज नाखून होते हैं। प्रायः सभी कुतरने-वाले जीवों के हंसली हड्डी होती है। ये जीव घोर ध्रुवी क्षेत्रों को छोड़ कर सब स्थानों में पाए जाते हैं और कदाचित जितने स्तनपोषी इस वर्ग में होते हैं, और किसी वर्ग में नहीं होते। सभी कुतरने वाले जीव अपने भोजन को कुतरते हैं। ये घास-पात, जड़ें, छालें खाते है, पर कुछ सर्वभक्षी भी हैं। ये प्राणी दौड़ने, तैरने, छलांगे मारने के अतिरिक्त पेड़ों पर भी चढ़ने में बड़े सिद्ध होते हैं। इन प्राणियों के शरीर पर बाल होते हैं, पर कुछ ऐसे भी हैं, जिनके शरीर के बाल कांटों के रूप में बदल गए हैं। इस वर्ग को दो भागों में बांट सकते हैं:—

1—एक-दंत उपवर्ग (Sub order Simplicidentata)

2—द्वि-दंत उपवर्ग (Sub order Duplicidentata)

एक-दंत उपवर्ग के प्राणियों के मुंह में ऊपरी जबड़े में आगे की ओर कृंतक दांतों का एक ही जोड़ा होता है। इस उपवर्ग को तीन भागों में बांटा गया है।

1. गिलहरी (गिलहरी वंश और उड़न गिलहरी वंश)

2. चूहा

3. सेही

——:o:——

•गिलहरी-वंश

गिलहरी वंश के प्राणियों से सब लोग परिचित हैं। भारत में लगभग 20 प्रकार की गिलहरियां होती हैं, जिनमें से तीन तो वड़े आकार की हैं। इस वंश के जीव वड़े फुर्तीले और सफाई पसंद करने वाले होते हैं। इनका अधिक समय पेड़ों पर ही बीतता है, पर भोजन की तलाश में जमीन पर भी ये जीव खूब घूमते हैं। इन जीवों के शरीर के वाल चमकीले और मुलायम होते हैं तथा पूंछ झबरी होती है। अपने बच्चों को पालने के लिए ये प्राणी वड़े कोमल और वढ़िया घोंसले बनाते हैं। इनकी मुख्य खुराक फल-फूल, अन्न और जड़ें हैं, पर छोटी चिड़ियां और अंडे भी ये खाते हैं। नीचे भारतवर्ष की कुछ प्रसिद्ध गिलहरियों का वर्णन दिया जाता है।

75—बड़ी गिलहरी या जंगली गिलहरी (Large Indian Squirrel)

जंगली गिलहरी मनुष्यों की आवादी में नहीं आती। वह घने जंगलों में ही रहना पसन्द करती है, इसलिए इसको जंगली गिलहरी कहते हैं। इसका अधिकांश समय जंगल में पेड़ों पर ही बीतता है, जमीन पर यह वहुत कम आती है। लम्बी-लम्बी छलांगें मार-मार कर पेड़ों पर ही घूमती रहती है।

मध्य भारत के सब घने जंगलों में यह जंगली गिलहरी पाई जाती है। इसकी मुख्य खुराक जंगल में पाए जाने वाले फल-फूल, वीज, नरम कल्ले और कलियां हैं, पर साथ ही साथ कीड़े-मकोड़े और चिड़ियों के अंडे भी वड़े स्वाद से खाती है।

आकार में यह $1\frac{1}{2}$ फुट लम्बी होती है और $1\frac{1}{2}$ फुट की ही इसकी पूंछ भी होती है, जो सब गिलहरियों के समान खूब झबरी होती है। जंगली गिलहरी की पीठ का रंग गहरा कत्थई या लाल होता है और कान के सामने से माथे तक एक हलके रंग की लकीर होती है। नीचे का भाग इसका हलका वादामी सा होता है। यह पेड़ की किसी सुरक्षित ऊंची डाल पर टहनियों और पत्तियों का घोंसला बना लेती है। मादा अन्य सब गिलहरियों के समान 3–4 बच्चे देती है।

76—रुकिया (Brown Squirrel)

भारत के दक्षिणी जंगलों में यह रुकिया गिलहरी पाई जाती है। इस गिलहरी की भी सब वातें वड़ी गिलहरी की सी होती हैं। अपना अधिकतर समय रुकिया पेड़ों पर ही विताती है और पेड़ के किसी खोखल में अपना घोंसला वना कर रहती है। जंगली गिलहरी की तरह इसकी मुख्य खुराक भी फल-फूल, वीज, मुलायम कल्ले, चिड़ियों के अंडे और कीड़े-मकोड़े आदि हैं।

रुकिया का आकार जंगली गिलहरी से छोटा होता है। नाक से पूंछ की जड़ तक इसकी लम्बाई एक फुट होती है और एक फुट लम्बी इसकी पूंछ होती है। रुकिया के ऊपरी भाग का रंग कलछौंह सिलेटी होता है तथापि दोनों वगलों और गले का कुछ हिस्सा वादामी रंग का होता है। पेट का रंग सफेद सा होता है।

अन्य गिलहरियों की तरह रुकिया की मादा भी तीन चार बच्चे देती है।

77–शिग शाम (Block Hill Squirrel)

यह गिलहरी हिमालय के पूर्वी भाग में पाई जाती है। चूंकि जहां यह पाई जाती है वहां इसे शिग शाम कहते हैं, इसलिए इसे काली जंगली गिलहरी न कह कर यहां शिग शाम ही कहेंगे।

यह जोड़े में रहने वाली गिलहरी है और बहुत तेज बोलती है। जंगली गिलहरी से शिग शाम कुछ छोटी होती है, पर इसकी पूंछ उससे बड़ी होती है। उसके शरीर का रंग काला होता है, पर पूंछ और चेहरा पिलछौंह से रंग के होते हैं। इन गिलहरियों में भी अनेक रंग होते हैं, पर इसकी झबरी, बड़ी और सुन्दर पूंछ इसको अलग ही पहचनवा देती है। इसकी मादा भी अन्य गिलहरियों की तरह 3-4 बच्चे देती है। यह भी अपना घोंसला पेड़ पर जंगली गिलहरी की तरह बनाती है।

78–गिलहरी (Palm Squirrel)

यह गिलहरी सारे देश में पाई जाती है। छोटी गिलहरियों में सबसे अधिक परिचित यही गिलहरी है। यदि दो शब्दों में इसका स्वभाव बताया जाए तो इसे 'चोट्टी और चंचल' कहना यथेष्ठ होगा। बाग बगीचों, घरों, पेड़ों, सब जगह यह पाई जाती है। पेड़ों के खोखल मकानों के छेद दरारों में यह अपना घोंसला बना लेती है।

यह नाक से पूंछ की जड़ तक 6 इंच लम्बी होती है और इनके छः इंच लम्बी ही झबरी पूंछ होती है। इसकी पीठ का रंग भूरा कलछौंह या सिलेटीमायल भूरा होता है। पीठ पर तीन सफेद धारियां होती हैं। बीच की सफेद धारी पूंछ की जड़ तक होती है। पेट का रंग सफेद होता है। इसके बाल बड़े कोमल और मुलायम होते हैं।

इस साधारण गिलहरी से लोग इतने परिचित हैं कि इसके विषय में अधिक लिखना आवश्यक नहीं है, पर इसकी कभी-कभी धूर्तता और उदंडता बेहद बढ़ जाती है। दो-दो और तीन-तीन गिलहरियां रसोईघर और रसद के सामान से भगाए जाने पर भी फौरन वापस आ जाती हैं। खाने का सामान कितना ही छिपा कर रखा जाए, पर ये उसकी टोह लगा लेती हैं और चुराने का भरसक प्रयत्न करती हैं। यह गिलहरी बड़ी आसानी से पाली जा सकती है।

घोंसला यह पेड़ की किसी शाखा पर या मकानों में किसी स्थान पर बना लेती है। सन, ऊन, रूई या कपड़ा कुतर-कुतर कर रेशे-रेशे अलग करके यह बहुत मुलायम घोंसला बनाती है। बबूल की शाखा पर इसका घोंसला दूर से दिखाई पड़ जाता है। घोंसला इतना बढ़िया होता है कि कितना ही पानी पड़े, भीतर पानी नहीं जाता। कभी-कभी अच्छे ऊनी कपड़े भी कुतर कर चुरा ले जाती है और सन्देह होता है चूहों पर। चौर्य-कार्य में यह बड़ी चतुर है।

फल, मूंगफली और अखरोट को लेकर पिछले पैरों पर बैठ जाती है और अगले पंजों में पकड़ कर खूब खाती है। प्रतिवर्ष लेखक अपने मकान पर देखता है कि 5-6 गौरैया और उनके बच्चे बैठे चुग रहे हैं कि गिलहरी भी आकर वहीं धीरे-धीरे चुगने लगती है और झपट्टा मार कर किसी भी बच्चे को पकड़ ले जाती है। चिड़ियां चटर-चटर करती

है, पर वह किसी पेड़ पर चढ़ बच्चे की गरदन काट कर खून पीकर उसे खा जाती है। चिड़ियों के घोंसलों में से अंडे चुरा-चुरा कर भी खूब खाती है।

धान की पौध जब बोई जाती है तब चिड़ियों से भी अधिक इस गिलहरी से उसकी रक्षा करनी पड़ती है। खेती का भी यह बहुत नुकसान करती है, इसलिए यह हानिकारक है। कूद-फांद भाग-दौड़ में तो यह बड़ी ही तेज होती है। पूंछ उठा कर एकदम भाग खड़ी होती है।

एक बार लेखक ने एक गिलहरी को धामिन सांप के एक फुट लम्बे बच्चे को पकड़ कर खाते देखा। भाग कर गिलहरी ने संपोरे को बीच से पकड़ लिया और अपने कृंतक दांत गड़ा कर उसे बेकार कर दिया। फिर धीरे-धीरे करके उसे खाने लगी। आतंकित होने पर यह गिलहरी 'चिरप चिरप' और 'तिरप तिरप' की आवाज करती है, जिसे सुन कर अन्य गिलहरियां सचेत हो जाती हैं और कभी-कभी घण्टे भर तक विभिन्न स्थानों से इनके 'तिरिप' 'तिरिप' आतंक सूचक सिग्नल सुनाई पड़ते रहते हैं। आवाज करने में इनकी पूंछ ऊपर उठ कर नीचे गिर जाती है। बिल्लियां, कुत्ते और बाघ इनकी टोह में लगे रहते हैं। सुन्दर और साफ होने पर भी यह बाग-बगीचों के लिए बड़ी हानिकारक है।

—:o:—

• उड़न गिलहरी-वंश

उड़न गिलहरी का वंश बहुत बड़ा नहीं है। इसमें केवल वे थोड़ी सी गिलहरियां पाई जाती हैं, जिनकी बगलों की खाल दोनों और इतनी बढ़ी होती है कि वे इसे झिल्ली की तरह फैला कर एक पेड़ से हवा में कूद कर दूसरे पेड़ तक हवा में ही तैरती चली जाती हैं। इस वंश के सब प्राणियों की आदत गिलहरी वंश के अन्य प्राणियों से मिलती है।

भारतवर्ष में उड़न गिलहरी वंश के कई जीव पाए जाते हैं, पर हम नीचे एक ही प्रकार दे रहे हैं—

79—उड़न गिलहरी (Brown Flying Squirrel)

उड़न गिलहरी से तात्पर्य यह नहीं है कि उसके पंख होते हैं वरन उसकी अगली और पिछली टांगे एक झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। इसी झिल्ली के सहारे वह किसी ऊंची शाखा से कूदती है और झिल्ली के संतुलन रखते हुए पचास-पचास, साठ-साठ गज तक एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक तैरती चली जाती है। भारत की बड़ी उड़न गिलहरी बड़ी प्रसिद्ध गिलहरी है। इन उड़न गिलहरियों के कई प्रकार सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं, पर मध्य भारत के घने जंगलों में पाई जाने वाली उड़न गिलहरी सबसे आकर्षक है। उड़न गिलहरियों का रंग और बाल, स्थान विशेष के अनुसार ऊनी, घने और बड़े छोटे होते हैं।

बड़ी उड़न गिलहरी की लम्बाई 16 इंच होती है और पूंछ की लम्बाई 18 से 22 इंच तक होती है। गंगा नदी के दक्षिणी भाग में पाई जाने वाली उड़न गिलहरी की लम्बाई 16 से 18 इंच तक तथा पूंछ की लम्बाई 24 या 25 इंच होती है, पर हिमालय के पास पाई जाने वाली उड़न गिलहरी का रंग भी भिन्न होता है और आकार भी और

बाल भी घने होते हैं। एक छोटे आकार की उड़न गिलहरी भी भारतवर्ष में पाई जाती है, जिसकी लम्बाई केवल 5 से 12 इंच तक होती है। इनकी पूंछ छोटी और चौड़ी होती है, पर हम यहां भारतवर्ष की साधारण उड़न गिलहरी का ही वर्णन कर रहे हैं।

उड़न गिलहरी जंगलों में रहती है, पर कभी-कभी गांवों के करीब के आम तथा अन्य फलों के बागों में भी मिल जाती है। यह $1\frac{1}{2}$ फुट लम्बी होती है और इतनी ही लम्बी इसकी पूंछ होती है। इसके शरीर के काले और सफेद मिले हुए बाल मिलेटी जैसे प्रतीत होते हैं। पूंछ काली और नीचे का भाग सफेद होता है। उड़न गिलहरी के आगे की टांगें पीछे की टांगों से एक झिल्ली द्वारा जुड़ी रहती हैं। एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर तो यह हवा में उड़ कर जा सकती है, पर जमीन पर से नहीं उड़ सकती।

यह रात में ही घूमने-फिरने वाली है और दिन भर किसी पेड़ के छेद या खोखल में घुसी रहती है। ऊंचे-ऊंचे पेड़ों वाला स्थान इसे बहुत पसंद है, क्योंकि जमीन पर तो यह कूद-कूद कर चलती है, जिसमें परेशानी होती है। फल-फूल, मूंगफली, पेड़ों की खालें, कीड़े-मकोड़े आदि खाती है, पर अन्न नहीं खाती। साधारण गिलहरी की भांति यह चंचल नहीं होती।

उड़न गिलहरियां पाली तो आसानी से जा सकती हैं, पर उनका जीवित रखना बड़ा मुश्किल होता है। मादा उड़न गिलहरी पेड़ के खोखल में बच्चे देती है।

——:o:——

• मूषक वंश (Family Muridae)

चूहा मूषक वंश का प्रमुख प्राणी है और मनुष्य तथा खाद्यान्न को सबसे अधिक हानि पहुंचाने वाला है। चूहे के शत्रु भी अनगिनत हैं, पर उन सबके होने पर भी वह बड़े ठाठ और चतुराई से रहता है। चूहे प्राय: दिन में सोते हैं और रात में अपने खाने की खोज में निकलते हैं। घरों में खाद्यान्न की चोरी और खेतों में फसल बिगाड़ना ही चूहों का काम है। चूहों के भीतरी अवयवों की बनावट ऐसी होती है कि विटामिन 'डी' बिना सूरज की गर्मी के ही उन्हें स्वत: ही मिलता रहता है।

मूषक वंश विश्वव्यापी है। कुछ को छोड़ कर अधिकांश इस वंश के प्राणी जमीन में बिल बना कर रहते हैं। इस वंश के सब प्राणियों की अगली और पिछली टांगों में कोई विशेष अंतर नहीं होता। इनकी पूंछ में बाल नहीं होते। इस वंश में चूहे, चुहियां, छछूंदर आदि शामिल हैं। कृंतक दांत इस वंश के प्राणियों के पतले होते हैं। इस वंश के विभिन्न प्राणियों के दांत काफी भिन्न-भिन्न होते हैं। पर सबके अगले पैरों की पहली अंगुली केवल निशान मात्र ही होती है।

इस वंश के इतने प्रकार और इतनी जातियां हैं कि उनके पूरे वर्णन के लिए एक अलग ग्रंथ ही चाहिए। इसलिए मूषक वंश के केवल उन थोड़े से प्राणियों का ही वर्णन किया जाएगा, जो भारतवर्ष में पाए जाते हैं।

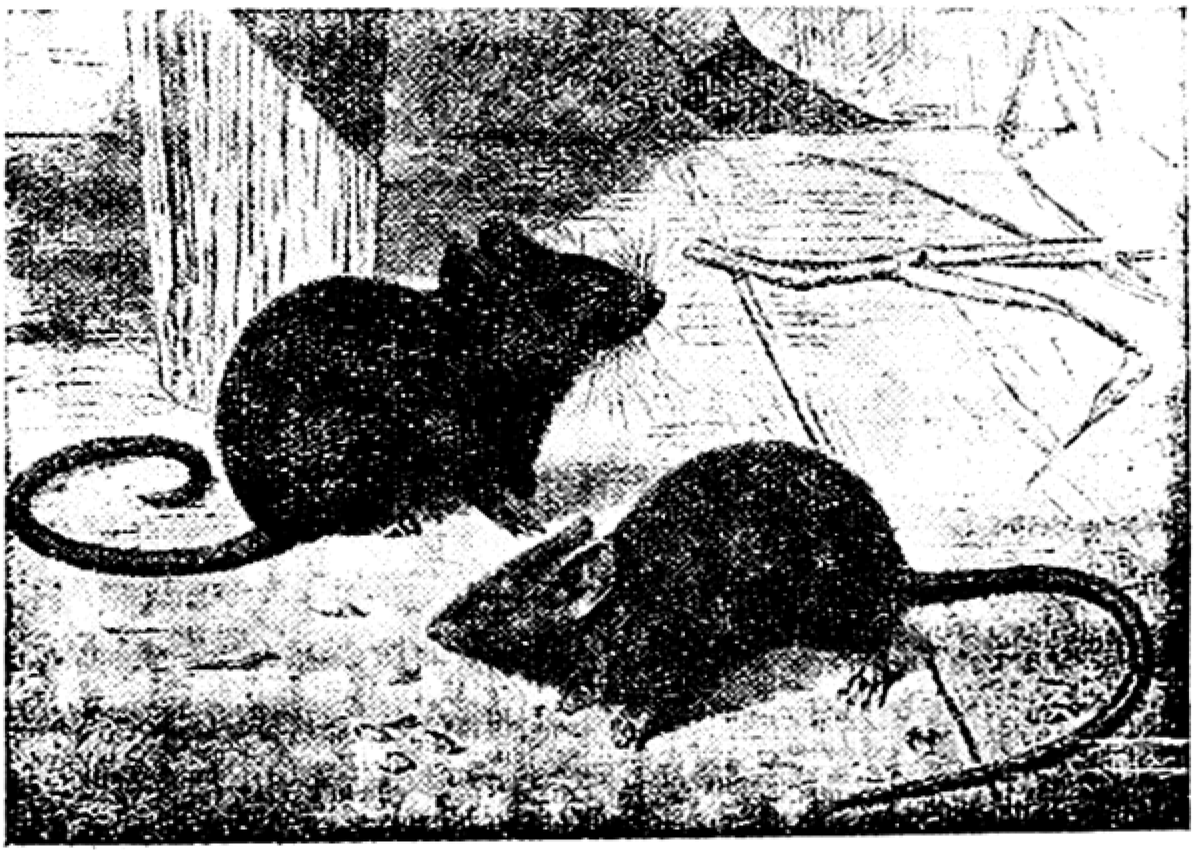
चूहों की वृद्धि का कुछ ठिकाना नहीं। केवल 3 मास की आयु होने पर मादा बच्चे देने लगती है और प्रतिवर्ष 3 बार से लगाकर 5 बार तक बच्चे देती है। एक बार में बहुत बच्चे होते हैं, पर यदि तीन बच्चे भी एक बार में हों और एक वर्ष में 3 बार भी हों, तब भी एक जोड़े चूहों से उनकी संतान-संख्या तीन वर्ष में 2,01,55,392 तक पहुंच

जाएगी । ऐसे बहुसंतानी जीव से मनुष्य की कितनी हानि हो सकती है इसका अनुमान करना भी कठिन है। प्रत्येक चूहा मनुष्यों के भोजन में से हिस्सा बंटाता है। अगर एक चूहा एक वर्ष में एक सेर भी गल्ला खा जाए तब भी एक करोड़ चूहों के लिए एक वर्ष में 2,50,000 मन गल्ला आवश्यक होगा।

80–घर की चुहिया

घर में पाई जाने वाली छोटी चुहिया का रंग भूरा होता है। शरीर के आकार के अनुपात से इसके कान और पूंछ बड़े होते हैं। पेट पर अपेक्षाकृत पीलापन होता है। घर

घर का चूहा



की चुहिया अधिकतर आदमियों के निकट रहना ही पसंद करती है। एक प्रकार से चुहिया सर्वभक्षी होती है। घर का बड़ा चूहा और चुहिया साथ-साथ रहते हैं, खलिहानों और मकानों में बड़े मेल से रहते पाए गए हैं।

खाद्यान्न को तो यह बहुत क्षति पहुंचाती है। कपड़े, किताबें, कोई भी चीज़ इनसे नहीं बच सकती। कागज और कपड़े तो ये अपने बच्चों के लिए कोमल और गुदगुदी जगह बनाने के लिए कुतरती हैं। मादा एक साल में 3 से 5 बार तक बच्चे देती है और एक बार में तीन से लगाकर आठ तक बच्चे होते हैं। जन्म के समय लाल-लाल बच्चों की आंखें बन्द होती हैं। चुहिया की घ्राणशक्ति बड़ी तीव्र होती है। तेल और घी की यह बहुत शौकीन होती है।

81–घर का बड़ा चूहा

घर के बड़े चूहे को काला चूहा भी कहते हैं, क्योंकि उसका रंग कालिमा लिए होता है। घर का बड़ा चूहा सबसे अधिक संतति वृद्धि करने वाला होता है। मादा 3 मास की आयु में ही बच्चे देने लगती है। एक बार में 14 तक बच्चे दे देती है और साल में 3 से 6 बार तक बच्चे देती है।

इसकी पूंछ शरीर की लम्बाई से बड़ी होती है। यह सर्वभक्षी होता है और बहुत हानि पहुंचाता है। इसकी पूंछ गंजी होती है, रंग कलछौंह और घ्राणशक्ति बड़ी तीव्र।



काला चूहा

भारतीय चूहा तो पेड़ों पर, दीवारों पर भी बड़ी आसानी से चढ़ जाता है। चालाकी का तो इसका कोई ठिकाना नहीं। एक बार पिंजड़े में अगर कोई चूहा फंस जाता है तो उसकी गंध से फिर दूसरे चूहे उसमें फंसते ही नहीं हैं। यही बात जहर की भी है। बेरियम कारबोनेट या अन्य जहरों को रखा जाए, तो शुरू में तो थोड़ा सा खा लेते हैं, फिर नहीं खाते, इसलिए जहरों को बदली हुई चीजों में रखना चाहिए।

गत द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भारत में होने वाली चूहों से हानि के विषय में एक सुप्रसिद्ध डाक्टरी पत्र में डाक्टर मेजर कुन्हार्ड ने अपने अनुमान लिखे थे। उन्होंने लिखा था "गत बीस वर्षों में भारतवर्ष को चूहों के द्वारा 12 अरब 42 करोड़ 50 लाख रुपए की आर्थिक हानि हुई। इसका ब्यौरा इस प्रकार है:—

1. मूल्य खाद्य पदार्थ, जो चूहों ने खा डाले या नष्ट कर दिए—6,00,00,0000 रुपए।
2. प्लेग महामारी से अकाल मृत्यु या रोगी होने से काम के अयोग्य हो जाने से आर्थिक हानि—6,03,00,00,000 रुपए।
3. प्लेग से जनता को बचाने के उपायों में व्यय हुआ—39,50,00,000 रुपए।

सारांश यह कि 20 वर्षों में जितना व्यय भारत की सारी सेना पर हुआ उससे दूना चूहों पर करना पड़ा।*

दो चूहे मिलकर चीजों को सीढ़ियों के नीचे बड़ी सरलता से उतार ले जाते हैं। एक चूहा एक सीढ़ी नीचे उतर जाता है तो पिछले पैरों पर खड़ा होकर ऊपर वाले से हाथों में

---

*सन् 1962 के हिसाब से यह मूल्य उस समय के हिसाब से चौगुना हो गया अर्थात कुल हानि 49,70,00,00,000 रुपए था।

चीज पकड़ लेता है, तब ऊपर वाला निचली सीढ़ी पर पहुंच जाता है। बोतलों में रखा तेल भी वे पी जाते हैं। एक चूहा बोतल पर चढ़कर अपनी लम्बी पूंछ बोतल में डाल देता है और निकाल कर दूसरों को चूसने को दे देता है। बारी-बारी से इसी तरह बोतल खाली कर दी जाती है।

यह चूहा बड़ा सहायक मित्र होता है। जब एक स्थान पर अन्न का अभाव हो जाता है तब चूहों के दल के दल उस स्थान को छोड़ जाते हैं और किसी अनुकूल क्षेत्र को चले जाते हैं। मार्ग में खेतों को नष्ट करते जाते हैं और अपने अंधे बूढ़े असहायों को बड़ी सहानुभुति से ले जाते हैं।

82–काला चूहा

यह घर के बड़े चूहे से छोटा और कमजोर होता है। समुद्रतट पर यह नारियल के पेड़ों पर रहता है और बहुत नुकसान करता है। काले चूहे के बाल बड़े होते हैं और मुंह कुछ पतला और लम्बा होता है। इस चूहे में यह विशेपता होती है कि इसके पिछले पैर घूम कर पीछे लौट जाते हैं और दीवारों पर ऊपर नीचे खूब उतर सकता है। खुराक, स्वभाव और बच्चे इसके अन्य चूहों की तरह ही होते हैं।

83–खेत का सफेद चूहा (Field Rat)

खेतों में रहने वाला चूहा सफेदी और भूरापन लिए होता है, तथापि इसकी पूंछ पर बालों का गुच्छा-सा होता है। किसी-किसी वर्ष तो खेतों में इनका इतना प्रकोप होता है कि फसल को बोते समय से ही ये उसे उजाड़ना शुरू कर देते हैं। फसल के दिनों में मेड़ों से हट कर ये चूहे अपने बिल खेतों में ही बना लेते हैं और वहीं गेहूं, ज्वार आदि के पौधे काट-काट कर इकट्ठे करते रहते हैं। जंगली बिल्ली और लोमड़ी इन्हें खूब खाते हैं, फिर भी इनकी संख्या में कमी नहीं होती। रबी की फसल के दिनों में तो इन्हें अपने प्रधान शत्रु गोह और सांपों का तो भय ही नहीं रहता, क्योंकि वे शीत निद्रा में होते हैं। बस दिल खोल कर बेधड़क हो, ये फसलों को नष्ट करने में जुटे रहते हैं। सरकार की ओर से इन्हें मारने के लिए बिलों में जहर डालने की व्यवस्था की गई है। इनकी सब आदतें चूहों की तरह होती हैं।



खेत का सफेद चूहा

84–दक्षिण का खेत का चूहा

यह चूहा हलके लाल रंग का साढ़े पांच इंच लम्बा होता है। इसके कान बड़े और थूथन पतली होती है। उत्तर भारत में भी यह पाया जाता है, पर यहां इतना इनका प्रकोप नहीं है, जितना दक्षिण में। खेतों का यह भयंकर विनाश करता है। दक्षिण भारत की काली मिट्टी की दरारों में, जो गर्मियों में जमीन में हो जाती है उसमें वह अपना घर बना लेता है और वर्षा होने पर कभी-कभी जब दरारें बन्द हो जाती हैं तब ये चूहे काफी संख्या में मर जाते हैं। इसकी सब आदतें तथा बच्चे अन्य चूहों के समान होते हैं।

85–घूंस

घूंस चूहों का लकड़दादा है। इसके शरीर की लम्बाई दस इंच और पूंछ की लम्बाई बारह इंच होती है। वजन इसका डेढ़ सेर होता है। आजकल घूंस दक्षिण भारत में बहुतायत से मिलता है। अब से पचास वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश में घूंस की संख्या बहुत थी और बस्तियों तथा गल्ले के गोदामों में घूंस दो-दो सौ फुट नीचे से सुरंग बनाते थे। बिल्ली तो घूंस को पकड़ नहीं सकती और नेवले को तो घूंस गिनता ही नहीं, खूब लड़ता है, पर सौभाग्य से उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाकों में घूंस अब नहीं मिलता। तराई के इलाकों में यह अब भी पाया जाता है और खेतों को भयंकर रूप से हानि पहुंचाता है। आलू, ईख और शकरकंद का यह बड़ा दुश्मन है।

—:0:—

● सेही वंश

सेही वंश में अनेक प्रकार की सेहियां होती हैं। सेही वंश के जीवों की एक विशेष बात यह है कि इनके शरीर पर कड़े कांटे होते हैं। ये कांटे तेज और नुकीले होते हैं तथा आत्मरक्षा के लिए इस वंश के जीव उनका प्रयोग करते हैं। भारतवर्ष में केवल एक ही जाति की सेही पाई जाती है।

86–सेही (Porcupine)

सेही हमारे देश का एक विचित्र जानवर है। प्रत्येक जानवर के पास अपनी रक्षा के लिए एक साधन विशेष होता है। हिरन अपनी रक्षा तेज गति से भाग कर, शत्रु को सूंघ कर और उसकी गति देख कर करता है। शेर और बाघ के पास तेज कान, नख और दांत हैं। भैंसे के पास सींग और ताकत है। लोमड़ी और सियार के पास मक्कारी तथा घ्राणशक्ति है। सेही को परमात्मा ने एक ऐसा कवच दिया है, जिससे वह आत्मरक्षा करने में सफल होती है।

सेही के शरीर की लम्बाई 26 से 28 इंच होती है और पूंछ 4-5 इंच लम्बी होती है, परन्तु 7-8 इंच की प्रतीत होती है, क्योंकि उस पर कांटे लदे रहते हैं। सेही की पूंछ के कांटे खोखले होते हैं, जिनमें चाहने पर वह हवा भर लेती है, पर पीठ के कांटे बड़े और कड़े होते हैं। सेही का शरीर भूरे काले रंग का होता है तथा सिर और थूथन पर भी कड़े



सेही

बाल होते हैं, जिन्हें आतंकित होने पर वह खड़ा कर लेती है और उनसे एक प्रकार की खर-खराहट की आवाज पैदा होती है। सेही के कांटे बड़े सुन्दर काले और सफेद गड़रियों से भरे रहते हैं, पर किसी-किसी स्थान पर बिल्कुल सफेद कांटे होते हैं और किसी-किसी स्थान पर बिल्कुल काले होते हैं।

यह रजनीचर है और नालों, ऊबड़-खाबड़ स्थानों तथा घास के एकांत स्थानों में अपनी मांद बनाती है। मांद से बाहर जाने के कई मार्ग होते हैं और भीतर 15 फुट तक चौड़ा स्थान होता है। बीच में एक बड़ा-सा चबूतरा बना रहता है। बिलों से पानी द्वारा उसे भले ही निकाला जा सके, खोद कर निकालना आसान काम नहीं है।

सेही नए आम और कटहल की जड़ें तथा वक्कल शकरकंद और आलू की जानी दुश्मन है। कुतरने वाले जानवरों में यह सबसे अधिक खेती का नुकसान करती है। वैसे स्वभावतः सेही बहुत सीधी है और आदमी से डरने वाली है। दिन भर तो सेही गुफाओं में, बिलों में छिपी पड़ी रहती है, पर अपने भोजन के लिए रात में निकलती है। बागों में जहां तक उसकी पहुंच होती है वह फल और साग-सब्जी बिगाड़ती है।

यूरोप में तो सेही जोड़ों में रहती है, पर भारत में वह टोली में रहती है। मादा दो से चार तक बच्चे देती है। ये बच्चे एक छोटे से घोंसले में रख कर पाले जाते हैं, जो पत्तियों, घास और जड़ों के रेशे से बना होता है। बच्चों की आंखें जन्म के समय खुली होती हैं और उन पर बड़े ही कोमल लचीले कांटे होते हैं, जो पैदा होने के बाद हवा लगने से कड़े हो जाते हैं।

सेही के दांत बड़े मजबूत होते हैं और जबड़ा भी पुष्ट होता है, अतः चबाने का काम करने में सेही बड़ी दक्ष होती है। भारतवर्ष में तो हाथी के गिरे हुए दांतों को भी सेही जंगल में से उठाकर खा लेती है।

लोगों का भ्रम है कि सेही आक्रमण किए जाने पर शरीर से कांटे फेंकती है। जब सेही पर कोई आक्रमण करता है—शेर तक—तब वह कांटे फुलाकर पूंछ को इधर-उधर हिलाती हुई आक्रमणकारी से अपना पिछला भाग टकरा देती है। उसके कांटों की बनावट

ऐसी होती है कि लगते ही आक्रमणकारी के चुभ जाते हैं और सेही के शरीर से उखड़ कर अलग हो जाते हैं। एक बार एक सेही को मार कर लेखक ने कांटे गिने तो केवल 16 सौ तक गिन सका। इन 15-16 सौ छोटे-छोटे भालों की सहायता से ही वह अपने शत्रुओं का मानमर्दन करती है। उसके कांटों की एक विशेषता यह भी होती है कि वे गलते नहीं हैं। जिस जानवर के घुस जाते हैं, उसके जहरवाद हो जाता है। शेर और बाघ, सेही को इसलिए उसके चेहरे पर थाप मार कर मारते हैं। अगर असावधानी हो जाए या इधर-उधर थाप पड़ जाए तो फिर उनका वह अंग बेकार हो जाता है और ऐसी दशा में शेर और बाघ आदमखोर हो जाते हैं। एक बार सड़क पर रात में लेखक ने जीप से सेही को घेरा, तो सेही ने जीप के पहिए में कांटे घुसाने की चेष्टा की।

सेही के पंजों के खोज आदमी के छोटे बच्चे के खोज जैसे होते हैं, जिससे सेही की चोरी पकड़ी जाती है। उसके शिकार के लिए उसकी मांद की खोज करनी चाहिए। माद देखने से पता चल जाता है कि वह भीतर गई है या नहीं। जब पूरा भरोसा हो जाए कि सेही भीतर है, तब मांद के मुंह पर खूब कांटे ठूंस-ठूंस कर भर देने चाहिए। अंधेरा होते ही सेही निकलने के लिए अपना रास्ता बनाती है और कांटों की बगल से निकलने की कोशिश करती है। सुबह तक वह दरवाजे के मुंह के पास आ पाती है और उस समय उसे आदमी मार सकता है। लेखक ने कई सेहियां इस तरह मारी हैं। सेही मारने का दूसरा तरीका यह है कि जब उसकी मांद मालूम हो जाए, तब आधी रात के बाद बिलों को बंद करके वहीं बैठा जाए। सेही रात में चर कर अंधेरा रहते ही सुबह से पूर्व जब लौटती है, तब वह मारी जा सकती है। सेही को पकड़ने के लिए पिंजड़ा भी रखा जाता है। हमारे देश के कंजर कुत्तों की मदद से उसे बड़ी आसानी से मार लेते हैं। कंजरों के कुत्ते सेही की गंध पर सिखाए जाते हैं। रात में कंजर सेही के निकलने के आसपास पड़ाव डाल देते हैं और रात में सेही के मिलते ही पकड़ लेते हैं। सेही का मांस बड़ा स्वादिष्ट होता है, खास तौर से पिछले भाग का, जिस पर चर्बी की मोटी तह होती है।

गीदड़ और सेही की लड़ाई लेखक ने दो बार देखी है। एक बार एक अकेले गीदड़ ने सेही को पकड़ना चाहा, पर सेही पूंछ हिला कर उसकी ओर खड़ी हो गई। गीदड़ शायद नासमझ था। उसने मुंह मारा और गांव की ओर भाग गया। उसकी आंखों, गरदन और टांगों में कांटे चुभे थे। एक दूसरी बार लेखक ने दो गीदड़ों को सेही का शिकार करते देखा। सेही पूंछ हिला कर पीछे से टक्कर मारना चाहती थी, पर गीदड़ पीछे से बचते थे। सेही अपना मुंह बचाती थी। अवसर पाकर एक गीदड़ ने सेही का मुंह पकड़ लिया, तो मार कर ही छोड़ा। तब तक दूसरा गीदड़ चुपचाप खड़ा रहा। सेही के मर जाने पर उसके कांटे शरीर पर गिर गए। तब दूसरे गीदड़ ने उसमें मुंह मारा।

द्वि-दंत उपवर्ग में दो वंश हैं:—

(अ) खरगोश वंश (Family Leporidae)

(ब) रंगदुनी वंश (Family Ochotonidae)

ऊपरी जबड़े में दांतों की दुहरी जोड़ी होने के कारण इसे द्वि-दंत उपवर्ग कहा गया है और चूहों तथा गिलहरियों से इसे अलग कर दिया गया है।

• खरगोश वंश

खरगोश वंश की सारे संसार में अनेक जातियां हैं। कुतरनेवाले द्वि-दंती वर्ग का यह प्रमुख वंश है और खरगोश इस वंश का प्रमुख प्राणी है। इस वंश के जीवों के मुंह में ऊपरी जबड़े में दूध की दाढ़ों के तीन जोड़े होते हैं और नीचे के जबड़े में दो जोड़े होते हैं। आंखें बड़ी-बड़ी और भरी-भरी होती हैं, तथापि पलक नहीं होते। इस वंश के प्राणियों के सामने की टांगों में पांच-पांच अंगुलियां होती हैं और पिछली में चार-चार। मादा की छाती और पेट दोनों पर थन होते हैं।

इस वंश के कान लम्बे होते हैं और ये बड़े ही निरीह तथा डरपोक होते हैं। उत्तरी भारत के खरगोश, जो खुले में रहते हैं उनके बचाव के लिए बड़े कानों की आवश्यकता होती है, ताकि वे छोटी से छोटी आवाज सुन सकें। 'रैबिट' के बच्चों की आंखें जन्म के समय बन्द होती हैं और 'हेयर' के बच्चों की खुली।

87–खरगोश

खरगोश फारसी का शब्द है। 'खर' का अर्थ है गदहा और 'गोश' का अर्थ है कान। इसलिए खरगोश का अर्थ हुआ, गदहे जैसे कान वाला। वैसे, गांव वाले इसे कहीं 'खरहा' कहते हैं और कहीं 'चौगड़ा'। कहीं कहीं इसे 'लमहा' तथा 'ससा' भी कहा जाता है। प्रकृति ने प्रत्येक जीव को अपने बचाव के लिए कुछ विशेष साधन दे रखे हैं। शेर के पास नखों और दांतों के अतिरिक्त सुनने तथा देखने की प्रचुर शक्ति है, तो भालू के पास सूंघने और नाखूनों की ताकत है। खरगोश की पिछली टांग अगली टांगों की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है, इसलिए जब वह दौड़ता है, तब उसकी पिछली टांगें जमीन से उठ सी जाती हैं। खरगोश के बड़े-बड़े कान लाउडस्पीकर की तरह दूर-दूर की आवाज़ पकड़ने के लिए हैं। जब वह बैठ जाता है तब उसके कान इधर-उधर हिला करते हैं और दो-दो सौ गज तक के खटके की आवाज वह सुना करता है।



'हाप लाप' खरगोश

भारत में तीन प्रकार के खरगोश पाए जाते हैं। क्षेत्र विशेष के हिसाब से उसके आकार और रंग में भेद हो जाता है। खरगोश की लम्बाई 18 इंच और पूंछ की लम्बाई 3-4 इंच होती है। मादा का आकार नर से कुछ बड़ा होता है। साधारण भारतीय खरगोश हिमालय से गोदावरी नदी तक और पंजाब से असम तक पाया जाता है।

इस खरगोश के शरीर का रंग ऊपरी हिस्से में हलका खैरा होता है, जो पीठ के ऊपर थोड़ा कालापन लिए हो जाता है। सीने और टांगों पर ललाई होती है। गले का कुछ भाग तथा पेट और नीचे का सारा शरीर सफेद होता है। मुंह कलछौंह होता है। इसका वजन दो-ढाई से लगाकर तीन सेर तक होता है।

खरगोश की खुराक घास या नरम कल्ले है। अतः खेती को खरगोश बहुत हानि पहुंचाता है। यह तितरे-बितरे जंगल, झाड़ी-घास के मैदान और नदियों के खारों में रहना पसन्द करता है। उत्तरी भारत का खरगोश अपने लिए भीटा भी बना लिया करता है।

दूसरे प्रकार का खरगोश पहाड़ी क्षेत्र में होता है, जिसका रंग अपेक्षाकृत सफेद होता है। तीसरे प्रकार का काला खरगोश होता है, जो हिमालय की तराई में गोरखपुर से असम तक पाया जाता है। इसका रंग कालेपन पर होता है और कान चौड़े और छोटे होते हैं। टांगे छोटी और मोटी होती हैं।

खरगोश बहुत ही निरीह प्राणी होता है और सीधा भी। तेज भागने के कारण ही यह अपने शत्रुओं से बच पाता है, क्योंकि इसका मांस भी खाया जाता है। भागते समय लम्बी-लम्बी छलांगे मारता है और कभी-कभी चक्कर काट कर भागता है। पानी में भी वह खूब तैरता है और कभी कभी गीदड़, भेड़िया और कुत्तों से बचने के लिए पानी में छिप कर बैठ जाता है। उस समय वह अपनी नाक पानी से बाहर रखता है। गीदड़, भेड़िए और चरख उसको मार कर खा जाते हैं। खरगोश खेती का बहुत नुकसान करता है, जितना खाता है उतना ही कुतर-कुतर कर फेंकता है।

अंग्रेजी में खरगोश के लिए दो शब्द हैं। एक 'हेयर' और दूसरा 'रैबिट' दोनों में बड़ा अंतर यह है कि हेयर के बच्चों की आंख जन्म के समय खुली रहती है और रैबिट के बच्चों की बन्द होती हैं। इसके अतिरिक्त, रैबिट भीटे बनाकर रहता है और हेयर झाड़ी तथा घास में रहता है। पालतू खरगोश तो सबने देखे होंगे, वे रैबिट होते हैं, हमारे देश में इनकी संख्या बढ़ रही है।

—:O:—

• रंगदुनी वंश

रंगदुनी वंश में कुतरनेवाले वर्ग के अनोखे प्राणी हैं। ये बहुसंतानी हैं और जमीन में बिल खोद कर रहते हैं। ये जीव खरगोश से छोटे और निरीह डरपोक प्राणी होते हैं। घास-पात ही इनकी खुराक है। भारतवर्ष में इनका एक प्रमुख प्रकार पाया जाता है।

88—रंगदुनी

यह पुच्छहीन छोटा हिमालय का खरगोश है और जमीन में भीटा बना कर या चट्टानों में रहता है। चौकन्ना और डरपोक तो इतना होता है कि आदमी के अनुमान मात्र से या तो छिप जाता है या विद्युत गति से भाग खड़ा होता है, जिससे शिकारी निशाना भी नहीं लगा पाता। रंगदुनी सफेद खरगोश से भी छोटा होता है। इसके कान भी छोटे होते हैं। अगली और पिछली टांगे छोटी तो होती हैं, पर वे बराबर होती हैं। इसके दोनों

जबड़ों में तीन दाढ़ों के अतिरिक्त दूध की दाढ़ों में दो जोड़े भी होते हैं। इसका समर बड़ा मुलायम और घना होता है तथा पैर के तलवों पर भी बाल होते हैं।

भारत में पाए जाने वाले रंगदुनी का नाम हिमालय का रंगदुनी है। इसकी लम्बाई 9 से 9½ इंच तक होती है। इसका ऊपरी भाग कत्थई भूरे रंग का होता है, जिसमें कभी कभी सिलेटी रंग की झलक होती है। नीचे पेट का भाग सफेद जैसा होता है और दोनों बगलों के हिस्से पूरे भूरे होते हैं। कानों के चारों ओर सफेद होता है। पैर पीले होते हैं। हिमालय क्षेत्र में भी रंगदुनी के आकार में भेद होता है। साधारण रंगदुनी, जो हिमालय में 11 हजार फुट से 14 हजार फुट तक की ऊंचाई तक मिलता है, केवल 6½ इंच लम्बा होता है, पर 15 हजार फुट से 19 हजार फुट तक रहने वाला रंगदुनी बड़े आकार का होता है। जिसे लद्दाख का रंगदुनी कहते हैं वह 9 इंच लम्बा होता है। पूर्वी हिमालय में रंगदुनी चीड़ के ढलुए जंगलों में रहता है। रंगदुनी ठंडे इलाके का ही प्राणी है। वह स्वभाव से रात में ही चरनेवाला जीव है, पर वह दिन में भी निकलता है। घास-पात और पेड़-पौधे इनकी खुराक हैं, जिसको कि जाड़ों में खाने के लिए वह इकट्ठा कर लेता है। रंगदुनी शीतनिद्रा में तो नहीं जाता, पर फिर भी कभी-कभी महीनों तक बरफ में ढंका पड़ा रहता है। हिमालय में रंगदुनी जोड़ों में भी रहता है, पर स्वभावतः वह टोली में रहने वाला प्राणी है और कभी-कभी तो ये टोलियां काफी बड़ी भी होती हैं।

रंगदुनी बहुत कम पानी पीते हैं। ग्रीष्मकाल में तो जो थोड़ी बहुत वृष्टि होती है उसी से काम चलाते हैं और जाड़ों में पानी का काम बरफ से लेते हैं, पर किन्हीं-किन्हीं स्थानों में पतझड़ में जब ओस की भी बूंद नहीं मिलती तब बड़ी परेशानी होती है।

मादा रंगदुनी गर्मियों के प्रारम्भ में लगभग 6 बच्चों को जन्म देती है। बच्चों के शरीर पर बाल नहीं होते। छोटे बच्चों की मां बड़ी सावधानी से देखभाल करती है।

रगदुनी बेचारे के दुश्मन भी बहुत होते हैं। स्याहगोश, बड़े बाज, पहाड़ का बड़ा उल्लू और बाघ आदि इसे खाने को तैयार रहते हैं।

10–कर पक्ष वर्ग (Order Chiroptera)

कर पक्ष वर्ग के वर्गीकरण में प्राणि-शास्त्रियों को बड़ी उलझनें हुईं और वानर वर्ग, मांसाहारी वर्ग और कीट भक्षी वर्ग से क्रमशः हटा कर अन्त में शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से कर पक्ष वर्ग में रखा गया है। कर पक्ष वर्ग के दो उपवर्ग हैं और अनेक वंश तथा उपवंश हैं पर इस वर्ग की मूल विशेषताएं समान ही हैं। यों इस वर्ग में कीट भक्षी, मांसाहारी, फलभक्षी आदि अनेक जीव आ जाते हैं।

इस वर्ग के जीवों में डैने नहीं होते, लेकिन इनके हाथों की अंगुलियां एक प्रकार की झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। अपनी झिल्ली के कारण आकाश में तो ये प्राणी पक्षियों के समान ही उड़ते हैं, पर पृथ्वी पर उन्हें घसीट-घसीट कर चलना पड़ता है। अगर वे एक बार जमीन पर गिर पड़ें तो फिर एकाएक आकाश में उड़ भी नहीं सकते। झिल्ली ही से इन प्राणियों में स्पर्श-ज्ञान होता है। इस वर्ग में अनेक वंश हैं, पर यहां हम भारत में पाए जाने वाले गादुरवंश के कुछ गादुरों और चमगीदड़ वंश के उन कुछ चमगीदड़ों का ही वर्णन करेंगे।

• गादुर वंश (Family Pteropodidae)

सब चमगीदड़ों में सबसे बड़े चमगीदड़ होते हैं गादुर या उड़नलोखरी (Flying fox या Fruit bats) ये सब फलाहारी हैं और पुरानी दुनिया के ग्रीष्म प्रधान क्षेत्रों में रहते हैं। गादुर वंश के प्राणी अपने वर्ग के अन्य जीवों से फलाहारी होने के कारण तथा विशेष जीवन-क्रिया-कलाप में भिन्न होते हैं। इसी दृष्टि से उनकी शरीर-रचना भी भिन्न होती है। गादुरों की संख्या भी बहुत होती है, और आकार में भी वे अपने वर्ग के अन्य वंश वालों से बड़े होते हैं। ये बागों के डाकू कब अपने उपनिवेश को वापस जाते है यह पता नहीं चलता।

स्वभाव और शरीर-रचना की दृष्टि से गादुर वंश अपने वर्ग के अन्य वंश वालों से इतने भिन्न होते हैं कि प्राणि-शास्त्रवेत्ता उनको एक अलग उपवर्ग में ही रखना ठीक समझते हैं। उनके लिए 'मेगाचिरोप्टेरा' या बड़े चमगीदड़ कहना उचित मानते हैं। इस गादुर वंश की एक विशेषता यह है कि एक तो उनका आकार बड़ा होता है और दांत भी विचित्र ढंग के होते हैं। साथ ही साथ झिल्ली, कान और पूंछ में भी गादुर वंश अपने वर्ग के जीवों से भिन्न होते हैं। उनकी दाढ़ों का ऊपरी सिरा सपाट होता है और पीछे से आगे की ओर बढ़ा हुआ होता है तथा आड़ीधारियों से खानों में विभाजित होते हैं। इस प्रकार के दांत वास्तव में गूदेदार फल को खरोंच कर खाने में बहुत सहायक होते हैं, जब कि अन्य चमगीदड़ों के दांत गूदादार फल खाने के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त हैं। झिल्ली की तर्जनी में भी गादुर वंश के तीन जोड़ होते हैं, जबकि अन्य चमगीदड़ों के एक या दो जोड़ होते हैं। झिल्ली की दूसरी अंगुली में एक पंजा (Claw) होता है। अन्य चमगीदड़ों को तो केवल अंगूठे में ही यह सुविधा प्राप्त है। गादुर वंश के जीवों के कान की जड़ का घेरा एक पूरा घेरा होता है। गादुर वंश के कान अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। गादुर वंश की पूंछ अत्यन्त छोटी या यों कहना ठीक होगा कि नहीं के बराबर होती है, जो पिछली टांगों के बीच में झिल्ली के नीचे होती है और झिल्ली का पूंछ से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

अन्य अनेक भेद भी गादुर वंश तथा इसके वर्ग के अन्य वंशों में है, पर वे ऐसे भेद हैं, जिन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। नीचे भारत में पाए जाने वाले गादुरों का वर्णन किया जाता है।

89–उड़न लोखरी या गादुर (Fruit Bat or Flying Fox)

गादुर को अंग्रेजी में 'फ्लाइंग फाक्स' या 'फ्रूट बैट' कहते हैं। गादुर भी कई प्रकार के होते हैं। गादुर का सिर बिल्कुल लोमड़ी-जैसा ही होता है। इसलिए इसे 'उड़न लोखरी' कहते हैं। गादुर की विशेषता है उसके 34 दांत, जिसमें से दो जोड़े तो कुकुर दंत के और 3 दूध की दाढ़ें प्रत्येक जबड़े में होती है। सारे भारतवर्ष में गादुर पाए जाते हैं। गादुर भारत के बाहर भी कई देशों में पाया जाता है, पर भारतवर्ष का गादुर अपनी एक विशेषता रखता है और इसलिए प्रसिद्ध है। भारतीय गादुर के बिना बालों वाले और नुकीले कान होते हैं।

समस्त भारत में पाया जानेवाला गादुर एक फुट लम्बा होता है, पर झिल्ली के तनाव की लम्बाई एक छोर से दूसरे छोर तक 4 फुट होती है। देखने में गादुर कत्थई और काले से होते हैं, पर असल में सिर और गरदन लाली लिए हुए भूरे और नथुने इससे अधिक गहरे रंग के होते हैं। ऊपरी गरदन और कंधा गादुर का सुनहरा-सा और दोनों ओर की झिल्ली भूरापन लिए काले रंग की होती है। गादुर स्तनपोषी है। कानों पर तो गादुर के बाल नहीं होते, पर उनकी गरदन पर ऊन का सा समर होता है। दांत भी बड़े पैने होते हैं।



गादुर

गादुर फलाहारी होता है। नींबू, नारंगी और कड़े छिलके वाले फलों को छोड़ कर सब प्रकार के फल खाता है। केला, अमरूद और मीठे गूदेदार फल का तो यह जानी दुश्मन होता है। इतना ही नहीं गादुर, गूलर, पीपल और पाकड़ जैसे जंगली फलों को भी खा जाता है। यहां तक कि ताड़ और खजूर के पेड़ पर लटकते छल्लों में से गादुर ताड़ी भी

पी जाता है। किसानों के लिए गादुर बड़ा ही हानिकारक है। फलाहारी होने के कारण बीस-बीस और पच्चीस-पच्चीस मील तक शायद और भी अधिक पचास मील तक का धावा बोलता है। अमरूद, केला, पपीता, आम, बेर, कदम के फल, गूलर, बरगद और पिपरौदा (पीपल का फल) पर तो वह जान देता है। रात-रात भर किसान बाग की रखवाली करते हैं। अगर तनिक भी असावधानी हो जाए तो गादुर बागों का सफाया कर देता है।

गादुर किसी ऊंचे पेड़ पर अपना उपनिवेश बनाते हैं। बरगद, पीपल, इमली और रबर के पेड़ों पर उनका उपनिवेश रहता है, जिस पर वे दिन में उल्टे लटके रहते हैं और नाखनों से पकड़ कर एक शाख से दूसरी पर चले जाते हैं। सूर्यास्त को गादुर-उपनिवेश से इक्का-दुक्का गादुर उड़ता है और बात की बात में एक-एक करके सब गादुर अपने बसेरे के स्थान को छोड़ देते हैं और निश्चित दिशा में वे उड़ते हैं। अमरूद, आम, कदम के फल, तथा अन्य फलों की खोज में वे बागों और पेड़ों पर धावा बोलते हैं और अपने पैने दांतों से फलों को खाते हैं और यदि ठीक तौर से रखवाली न की जाए तो बाग के बाग उजाड़ देते हैं। जिन पेड़ों से फल खाते हैं वहीं वे बीट भी करते हैं। बागवान कनस्तर बजा-बजा कर हो-हल्ला करके बाग के कोनों पर जाल लगा कर गादुरों से मुक्त होने का सफल पर असफल प्रयास करते हैं। गादुर इतने ढीठ होते हैं कि यदि बागवान कम शोर करे तो वे चुपचाप बैठे खाते रहते हैं और कभी भी पूरा फल नहीं खाते। किसी में से, आधा, किसी में से चौथाई, थोड़ा सा खाकर छोड़ देते हैं, शायद फल के पकने की दृष्टि से उतना ही खाकर छोड़ देते हैं।

उषाकाल में सूर्य की प्रथम किरण से पूर्व ही गादुर अपने चौर्य-कार्य को त्याग बसेरे की ओर उड़ते हैं। उड़ने में वे आवाज नहीं करते, क्योंकि पंख तो उनके होते नहीं, केवल झिल्ली होती है। बसेरे के पेड़ पर सूर्योदय के बाद तक गादुरों की चीख पुकार और लड़ाई से एक कुहराम मच जाता है। मनोवांछनीय स्थान पर लटकने की खातिर गादुर एक दूसरे से लड़ते हैं। एक गादुर एक स्थान पर लटका हुआ है तो दूसरा गादुर या तो उसी स्थान पर या उसके करीब ही लटकना चाहता है और विरोध में एक दूसरे को काटते हैं। स्थान न मिलने पर या एक स्थान से हटाए जाने पर गादुर पेड़ का पूरा चक्कर ऐसे काटता है मानो बसेरे के पेड़ की प्रदक्षिणा कर रहा हो। बहुत देर तक यह लड़ाई चलती है। कभी-कभी तो दिन में भी एक दूसरे के छू जाने से या अन्य किसी कारण से लड़ाई हो जाती है। प्रातःकाल लगभग दस बजे तक गादुर उपनिवेश में लड़ाई, झगड़ा और कुहराम का वातावरण रहता है। जिन शाखाओं पर वे लटकते हैं उनकी पत्तियों का तो सफाया ही हो जाता है, क्योंकि उनकी लड़ाई में नाखून, और मुंह से पत्तियां ध्वस्त हो जाती हैं।

गादुर प्रायः एक पंक्ति में ही एक दूसरे के पीछे उड़ते हैं, गौरैया आदि की तरह झुंड में नहीं। उड़ने का मार्ग भी गादुरों का निश्चित होता है और जिस खेत या पेड़ के ऊपर होकर वे निकलते हैं प्रायः प्रतिदिन उसी स्थान से गुजरते हैं। अगर दो सौ गज के बीच उनका मार्ग है तो एक ही पंक्ति में नहीं वरन कई पंक्तियों में भी निकलते हैं। लेखक ने उनकी पंक्ति बिगाड़ने के लिए अपने फार्म पर दस-बीस गादुरों को मारा। तब 4-5 दिन बाद लगातार ऐसा होने पर 4 फर्लांग की दूरी पर उन्होंने मार्ग तो बदल दिया, पर दिशा वही रखी। जो गादुर घायल होकर गिरे, उन्होंने घसिट कर अंडी के पेड़ या बबूल के पेड़ का सहारा लिया और ऊपर चढ़ कर लटक गए और जब तक मर नहीं गए वहीं लटके

रहे, क्योंकि गादुर न तो जमीन पर ठीक से चल सकता है और न बैठ सकता है। पानी भी वह उड़ते में ही पीता है।

डा० एन्डरसन ने 23 अगस्त 1869 को अपने अनुभव गादुरों के विषय में लिखा है, वे आज भी ज्यों के त्यों हैं। डा० एन्डरसन ने लिखा है, "सूर्यास्त के ठीक बाद गादुरों को कलकत्ते में कई दिनों से उत्तर से दक्षिण को उड़ते मैंने देखा है। जहां तक दृष्टि पहुंचती थी वहां तक पूर्व से पश्चिम तक का आकाश उनसे भरा था अर्थात उनकी चौड़ाई देखी नहीं जा सकती थी। वे किसी निर्दिष्ट भोजन के स्थान की ओर जा रहे थे। एक मिनट में ढाई सौ गज की दूरी के फैलाव में लगभग सत्तर गादुर उड़े। सिर के ऊपर होकर गादुर आधे घंटे तक उड़ते रहे, पर पूर्व से पश्चिम तक उनकी चौड़ाई का छोर दिखाई नहीं पड़ता था, केवल ढाई सौ गज ही दिखाई पड़ता था। यही नहीं, जब मैं बोटेनिकल गार्डन्स कलकत्ते में था, तब भी गादुरों का मैंने निरीक्षण किया। सूर्यास्त के बाद आकाश इन गादुरों से आच्छादित हो जाता था। उनकी उड़ान से स्पष्ट था कि वे किसी निर्दिष्ट स्थान की ओर जा रहे थे, उन पक्षियों की भांति जो ऋतुओं के अनुसार अपना स्थान परिवर्तित किया करते थे। मैंने हुगली नदी के दोनों ओर से उनका निरीक्षण किया है। मैंने यह भी देखा कि अधिकांश तो अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर उड़ते रहते थे, पर कुछ एक फलदार वृक्षों से आकर्षित हो वहीं रुक जाते थे, कई रातों तक लगातार मैंने उनका निरीक्षण किया, पर वापसी में मैं गादुरों को नहीं देख पाया।"

मादा गादुर एक बार में एक ही बच्चा देती है और जब तक बच्चा बड़ा नहीं हो जाता तब तक वह भी अपनी मां के पेट पर उल्टा लटका रहता है।

90—पुच्छल गादुर (Tailed Fox Bat)

पुच्छल गादुर साधारण गादुर के अति निकट है, पर पुच्छल गादुर साधारण गादुर से छोटा होता है। पुच्छल गादुर भारतवर्ष, बरमा, मलायन टापू, ईरान की खाड़ी, अफ्रीका, इजराइल और मैडागास्कर में पाया जाता है।

अपनी जाति के गादुरों से यह इस बात में भिन्न होता है कि इसकी पिछली दोनों टांगों के बीच में एक छोटी सी पूंछ होती है जो झिल्ली से जुड़ी रहती है। पुच्छल गादुर का रंग भी गादुर से कम चमकदार होता है और गरदन का समूर भी शरीर के अन्य भागों के बालों से जरा भी बड़ा नहीं होता।

पुच्छल गादुर पेड़ों की अपेक्षा गुफाओं और ऊजड़ इमारतों में रहते हैं। साधारण गादुर के समान ही पुच्छल गादुर अपनी खुराक की तलाश में मीलों जाता है और वापस आता है। प्रतिदिन की भोजन की तलाश की यह यात्रा सोलह मील तक भी होती है।

91—लघु नासिका गादुर (Short nosed Fruit Bat)

लघु नासिका गादुर भी कई प्रकार के होते हैं, पर यह गादुर पूर्वी इलाकों का ही प्राणी है और केवल भारत से लगाकर फिलिपीन तक पाया जाता है।

अन्य गादुरों और लघु नासिका गादुर में भेद यह है कि इसका छोटा और गोल चेहरा होता है। चेहरे पर हलके-आड़े खाने होते हैं। साथ ही आकार भी इन गादुरों

का छोटा होता है। अन्य गादुरों की अपेक्षा इसके दांतों की संख्या भी कम होती है, जो प्राय: बत्तीस होते हैं, पर कभी-कभी जब किसी लघु नासिका गादुर के नीचे के जबड़े में दो कुक्कुर दांत नहीं होते तब दांतों की संख्या केवल तीस ही रह जाती है। लघु नासिका गादुर की पूंछ पिछली टांगों में छोटी सी होती है और झिल्ली से सम्बन्धित रहती है।

भारत में पाया जाने वाला लघु नासिका गादुर अपनी जाति का एक प्रसिद्ध गादुर है और वह बड़ा भुक्खड़ भी होता है। यह सारे भारतवर्ष में पाया जाता है और प्राय: पेड़ों पर ही रहता है, पर कभी कभी चट्टानों की दरारों और गुफाओं में भी रहता है।

आम और केला इस गादुर को बड़े पसंद हैं, इसलिए यह बड़ा हानिकारक है। इसकी भूख का पता इस बात से चलता है कि जिस भूखे गादुर का वजन एक औंस था, उसका खाने के तीन घंटे फौरन बाद का वजन साढ़े तीन औंस हो गया।

92–दीर्घजीभी गादुर (Long Tongued Fruit Bat)

अब तक जिन गादुरों का वर्णन किया गया है वे सब साधारण जीभ वाले हैं, पर सात जाति ऐसे गादुरों की हैं, जिनकी जीभ अपेक्षाकृत लम्बी होती है, जिसके कारण उन्हें दीर्घ-जीभी कहा जाता है। साथ ही इस गादुर की दाढ़ छोटी होती है और मुश्किल से ही मसूढ़ों के बाहर निकलती है। इन गादुरों के चेहरे लम्बे और नुकीले से होते हैं।

दीर्घजीभी गादुर भारतवर्ष से लगाकर मलाया, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, सोलोमनद्वीप तक फैले हुए हैं। गादुरों की अपेक्षा इनके आकार छोटे होते हैं। लम्बी जीभ से वह मुलायम फलों को चाट कर खा लेता है, क्योंकि दाढ़ें तो उसकी छोटी होती हैं।

इस गादुर का एक और प्रकार है, जो बहुत छोटा होता है। यह गादुर भी उत्तर भारत से, बरमा, आस्ट्रेलिया और न्यू आयरलैण्ड तक फैला हुआ है।

सब प्रकार के फल इसकी खुराक हैं और अपने वजन के अनुपात से यह अधिक खाता है।

—:o:—

● चमगादड़ वंश

93–कीटभक्षी चमगादड़

कीट भक्षक चमगादड़ अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें हमें उन चमगादड़ों को भी शामिल करना होगा, जिन्होंने फल खाने का भी स्वभाव बना लिया है और साथ ही अपने से बड़े स्तनपोषी जीवों का खून भी चूसते हैं। गादुरों की अपेक्षा कीट भक्षक चमगादड़ छोटे होते हैं और प्राणि-शास्त्र के अनुसार इन्हें 'माइक्रोचि-रोप्टेरा Microchiroptera कहते हैं।

आकार में छोटे होने के अतिरिक्त कीट भक्षक चमगादड़ों की दाढ़ों पर पैने उठाव होते हैं। दांतों के अतिरिक्त सामने के हाथों की तर्जनी में भी भेद होता है। इन चमगादड़ों



लम्बकर्ण चमगादड़

की तर्जनी में दो जोड़ों से अधिक जोड़ नहीं होते और आम तौर से एक ही जोड़ होता है। कीट भक्षकों की तर्जनी में नाखून का चंगुल नहीं होता। कीट-भक्षक चमगादड़ के कानों की जड़ें भी पूरे घेरे में नहीं जुड़ी होतीं। इन चमगादड़ों की पूंछ स्पष्ट दिखाई देती है और लम्बी होती है। पूंछ किल्ली में होती है, जो पिछली टांगों को जोड़ती है।

कीट भक्षक चमगाड़ दो उपभागों में विभाजित हैं, प्रथम तो वे, जिनकी पूंछ पिछली टांगों के बीच में किल्ली में ही शामिल होती हैं। दूसरा भेद यह है कि कीलों का भीतरी जोड़ बहुत बड़ा नहीं होता और बीच में एक दूसरे से अलग होते हैं। कीट भक्षक चमगादड़ों की एक विशेष बात यह और है कि तीसरी या बीच की अंगुली में दो जोड़ होते हैं।

94–अश्वउपानह और पर्णनासिका चमगादड़

(Horse Shoe and Leaf nosed Bat)

पर्णनासिका चमगादड़ तो हमारे देश की पूर्वी सीमा पर ही पाया जाता है, पर अश्व-उपानह चमगादड़ भारतवर्ष में होता है और पहाड़ी इलाकों में पाया जाता है। यह पूर्वी चमगादड़ों में विशेष प्रसिद्ध है। इसका रंग नितान्त काला होता है। यह चमगादड़ टोली के वजाय जोड़ों में रहता है और बड़ी गुफाओं तक में इसके अनेक जोड़े नहीं रहते। यह अपनी उड़ान तड़के ही प्रारम्भ करता है और जमीन से केवल 20-25 फुट ऊपर ही उड़ता है। इसकी गति धीमी और भारी होती है। अश्वउपानह चमगादड़ की अनेक जातियां होती हैं।

इस चमगादड़ के कान बड़े-बड़े होते हैं और 32 दांत होते हैं, जिसमें से कृंतक दांत तो $\frac{1}{2}$ और गाल के दांत $\frac{5}{6}$ दोनों जवड़ों में होते हैं।

95–दिखावटी रक्त चूसक चमगादड़ (The false Vampire)

दिखावटी रक्त चूसक चमगादड़ों का अपना एक अलग ही वंश है। इनके कान बेहद वड़े होते हैं, जो लम्बाई में भीतर की ओर से आपस में किनारों पर काफी दूर जुड़े रहते



चमगादड़



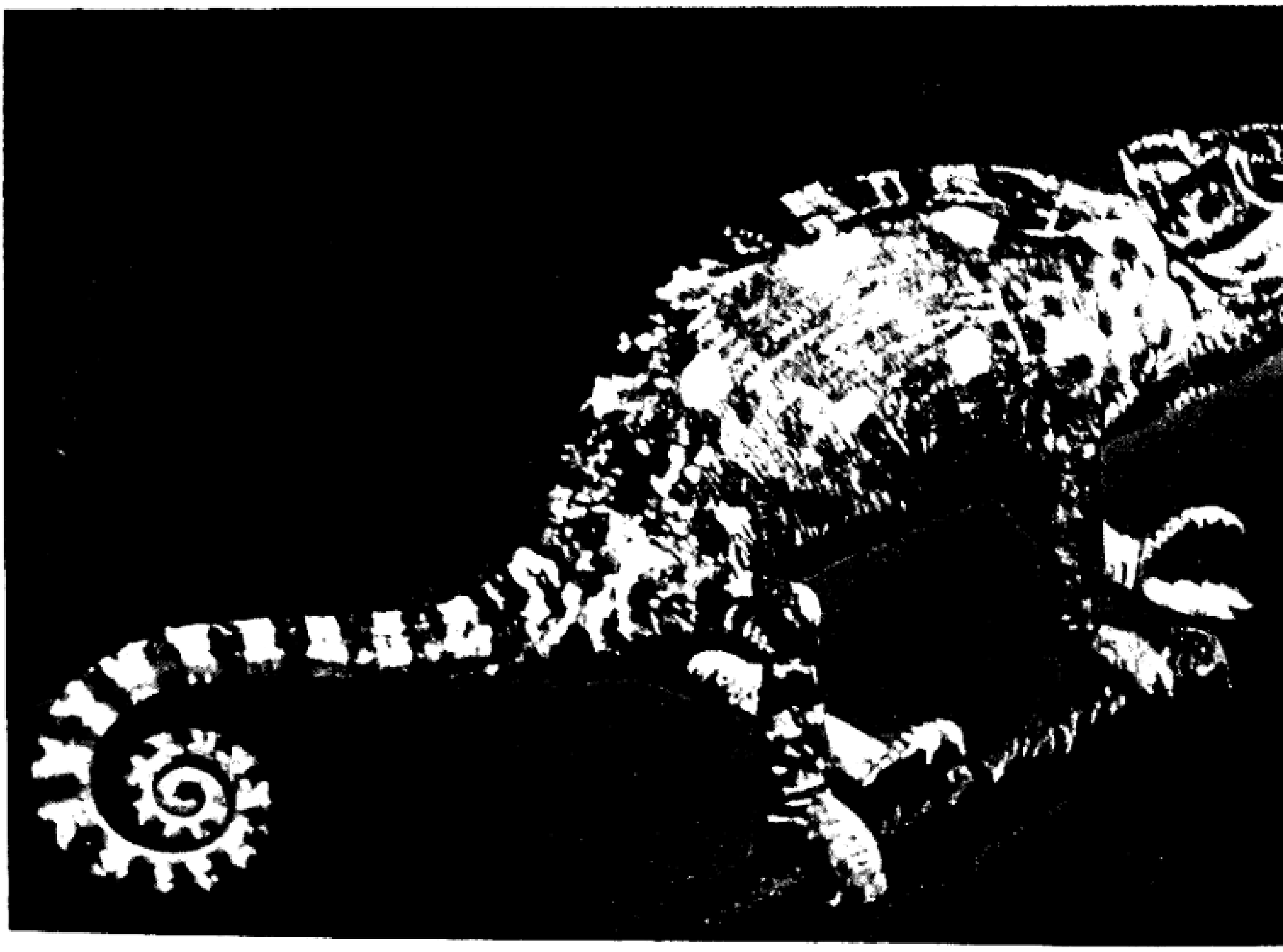
भालू

सेही





गोह





नागराज

हैं। इन चमगादड़ों की पूंछ इतनी छोटी होती है कि दिखाई भी नहीं पड़ती। इस वंश के चमगादड़ों के ऊपरी जबड़ों में कुकुर दांत नहीं होते। इस प्रकार इस वंश के जीवों के 28 या 26 दांत होते हैं, जिनमें से दोनों जबड़ों में कृंतक दांत $\frac{0}{2}$ कीले $\frac{1}{1}$ और गाल के दांत $\frac{5}{3}$ या $\frac{4}{5}$ होते हैं। इस वंश में पांच प्रकार के जीव हैं, जिनकी सात मन्य जातियां भी हैं।

दिखावटी रक्त चूसक चमगादड़ों में जो सबसे प्रसिद्ध चमगादड़ है वह भारतीय है और वह सारे भारतवर्ष में कश्मीर से दक्षिण तक पाया जाता है। इसके रक्त चूसक होने का पक्का प्रमाण ब्लिथ को मिला जब उन्होंने देखा कि यह रक्त चूसक चमगादड़ अपने मुंह में एक-दूसरे चमगादड़ को लिए हुए उनके मकान में उड़ आया। पीछा किए जाने पर उसने छोटे चमगादड़ को गिरा दिया। खून की कमी से छोटा चमगादड़ काफी कमजोर हो गया था और जब अगले दिन उसे रक्त चूसक के पास रखा गया तब उसने फौरन उसे कान के पीछे से पकड़ लिया और खा लिया।

भारतीय रक्त चूसक चमगादड़ की पूंछ दिखाई नहीं पड़ती है और उसकी झिल्ली की लम्बाई एक सिरे से दूसरे सिरे तक 14 से 19 इंच तक होती है। इसकी खुराक में अखफुट्टे, मेंढक, झींगुर हैं। मेंढक को तो ये बड़े स्वाद से खाते हैं। कीट भक्षक चमगादड़ों और रक्त चूसक चमगादड़ के जबड़ों में बहुत अन्तर होता है। ये बेहद खुराक खाते हैं।

● साधारण चमगादड़

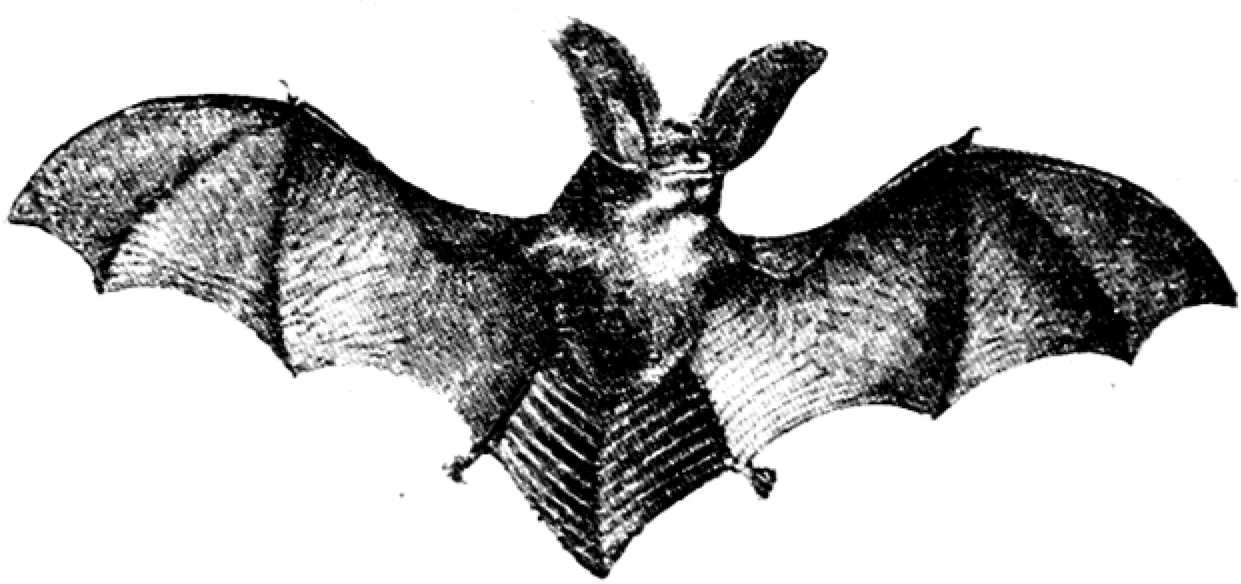
साधारण चमगादड़ों का अपना एक अलग वंश है। इनकी पूंछ लम्बी होती है और थूथन के अन्त में मुंह की जगह चन्द्राकार छेद होता है। ऊपरी जबड़े के कृंतक दांत अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। कभी एक जोड़ा कृंतक दांत होते हैं तो कभी दो जोड़े, पर नीचे के जबड़े में हमेशा तीन जोड़े कृंतक दांत होते हैं। ऊपर और नीचे के जबड़ों में दोनों ओर छः-छः या पांच-पांच दांत होते हैं।

साधारण चमगादड़ों के लगभग एक सौ पचास प्रकार हैं। इस वंश में इतने अधिक चमगादड़ हैं कि उनमें से कुछ प्रसिद्ध की चर्चा ही उपयुक्त है। भारतवर्ष में पाए जाने वाले कुछ चमगादड़ों की नीचे चर्चा की जा रही है :

96—लम्बकर्ण

लम्बकर्ण चमगादड़ के कान बहुत बड़े होते हैं। यह रजनीचर है, वैसे शाम को भी निकल आता है और उसे मक्खियों तथा अन्य कीड़ों का पीछा करते देखा जा सकता है। इसका क्षेत्र बड़ा विशाल है और यूरोप, अफ्रीका आदि में भी पाया जाता है। यह आयरलैण्ड से भारतीय हिमालय तक सारे क्षेत्रों में होता है।

इसके 36 दांत होते हैं, जिनमें से दोनों जबड़ों में $\frac{2}{3}$ दोनों ओर कृंतक दांत और $\frac{5}{6}$ गालों के दांत तथा $\frac{2}{3}$ दूध की दाढ़ें होती हैं। इसके कान सिर की लम्बाई से दुगुने लम्बे होते हैं और बीच का भाग आपस में जुड़ा रहता है। आराम करते समय लम्बकर्ण



लम्वकर्ण

अपने लम्बे कान को झपका लेता है, क्योंकि वे बड़े कोमल होते हैं और उसके कान का भीतरी भाग खड़ा रहता है, तब ऐसा प्रतीत होता है मानो यह छोटे कान वाला कोई प्राणी है।

लम्वकर्ण अपेक्षाकृत छोटा प्राणी है और इसके सिर तथा शरीर की लम्वाई केवल 2 इंच होती है और केवल कान $1\frac{1}{2}$ इंच लम्बे होते हैं। फैली हुई झिल्ली की लम्वाई 10 इंच होती है। इसका रंग ऊपर तो भूरा सिलेटी होता है, पर नीचे पीला सा होता है। लम्वकर्ण के छिपने का स्थान ऊजड़ मकानों की दरारें, छतों के नीचे सोटें और पुरानी इमारतें हैं।

रात में इसको, इसकी स्पष्ट और धीमी चीख से पहचाना जा सकता है।

97–हिमालय का वार्वसट्रेली

यह चमगादड़ है तो साधारण चमगादड़ों के ही वंश में, पर यह लम्वकर्ण से कुछ भिन्न होता है और अपने यूरोपीय बन्धुओं से थोड़ा भिन्न होता है। इसके फूले से गालों पर काले बाल होते हैं। इसके कान छोटे होते हैं पर यूरोप के चमगादड़ों से बड़े होते हैं। चट्टानों और दरारों में बड़ी आसानी से चला जाता है। इसके सिर और बदन की लम्बाई 2 इंच होती है तो कान केवल आधी इंच के ही होते हैं। यह धीमे-धीमे बेकार सा घूमता सा प्रतीत होता है और आदमी के बहुत करीब से निकल जाता है।

98–पिपिस्ट्रैली

शुद्ध पिपिस्ट्रैली यूरोप में पाया जाता है, पर एशिया के समशीतोष्ण भागों में होता है। भारत में यह कश्मीर की घाटी में होता है, पर पिपिस्ट्रैली की एक जाति, जो भारतीय पिपिस्ट्रैली कहलाता है सारे भारत में होता है। यह आदमियों के साथ रहना पसन्द करता है। अपने छिपाव के स्थान से जल्दी निकलता और देर से छिपने जाता है। यह बहुत तेज उड़ता है और तेजी से मोड़ लेता है और चक्कर काटता है। यह पुराने मकानों की दरारों में रहता है। यह कीड़े, मक्खी, पिस्सू आदि खूब खाता है। अगर इसको पालतू बना कर रखा जाय तो आसानी से मांस खाने लगता है।

इसका ऊपरी रंग गहरा भूरा या काला होता है, नीचे राखी होता है। भारतीय पिपिस्ट्रेली को सब जानते हैं, क्योंकि वह शाम को सर से पास ही पास उड़ता है, पर टकराता नहीं है और मच्छर आदि खूब खाता है।

99–सेरोटिन

यह चिरोपेंट्रा वर्ग का चमगादड़ है और पुरानी दुनिया से नई दुनिया में पहुंचा। उड़ने में यह बड़ा प्रवीण है। भारतवर्ष में यह केवल हिमालय की घाटी में पाया जाता है।

100–नली नासिका (Tube nosed)

नली नासिका चमगादड़ तिब्बत, भारत, मलाया द्वीपसमूह और जापान में ही पाया जाता है। अन्य कीट भक्षक चमगादड़ों से इसकी पहचान नली जैसी नासिका से की जा सकती है। इसके दांत केवल 34 होते हैं। झिल्ली का पिछला भाग बालों से ढंका रहता है। नली नासिका चमगादड़ों के भी भारत में कई प्रकार हैं। हिमालय के नली नासिका का रंग सिर पर सुनहरी होता है। हिमालय का होने के कारण इसके समूर ज्यादा होते हैं।

101–लाल सिलेटी

लाल सिलेटी जाति में अनेक प्रकार के चमगादड़ हैं, जिसमें भारतीय रंगीन चमगादड़ (Indian Painted Bat) भी प्रसिद्ध है। अत्यन्त सुन्दर रंगों के कारण इसे चमगादड़ न कह कर रंगीन तितली भी कह सकते हैं। इसका ऊपरी समूर गहरा नारंगी सा होता है। नीचे पीला सा होता है। झिल्ली काली होती है, जिस पर नारंगी रंग के चित्ते पड़े होते हैं। टांगों के बीच की झिल्ली बिल्कुल नारंगी होती है तथा अंगुलियां नारंगी होती हैं।

● मुक्त पुच्छ कीटभक्षक चमगादड़

(The Free Tailed Insectivorous Bat)

मुक्त पुच्छ कीटभक्षक चमगादड़ों की मुख्य विशेषताएं हैं कि इनके पूंछ तो है पर उसका अन्तिम भाग पीछे काफी दिखाई पड़ता है या पिछले भाग से काफी दूर होती है। इनके ऊपरी जबड़े के कृंतक दांतों का जोड़ा काफी बड़ा होता है और दांत पास-पास होते हैं। तीसरी बात यह है कि इसकी झिल्ली की तीसरी अंगुली आराम करते समय झिल्ली को साधने वाली हड्डी पर आ जाती है। इस वंश में अनेक प्रकार और जातियों के चमगादड़ हैं, पर अगले पृष्ठ में केवल भारत में पाए जाने वाले प्रसिद्ध चमगादड़ों का वर्णन है :—

102–कब्रधारी (The Tomb Bat)

इसका यह नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि इसका पता सबसे पहले फांसीसियों ने मिस्र के कब्रिस्तान में लगाया और इन चमगादड़ों के सर पर कब्र सी बनी होती है। इनके नीचे के जबड़े में दो जोड़े कृंतक दांत होते हैं। जांघ और पूंछ की जड़ में इन चमगादड़ों के चर्बी की ग्रन्थियां होती हैं, जो शीत निष्क्रियता के दिनों में भोजन का काम देती हैं।

ये दरारों में पुराने मकानों में रहते हैं, पर इसका ही एक भारतीय प्रकार का चमगादड़ वृक्ष पर भी पाया गया है।

103–लम्ब पुच्छ (The long Tailed Bat)

यह उत्तरी अफ्रीका से लगाकर सारे भारत और बरमा तक पाया जाता है। इसके 28 दांत होते हैं। इसकी सबसे अच्छी पहचान है लंम्बी और पतली पूंछ, जो झिल्ली की सीमा से काफी दूर निकली रहती है। इसकी तर्जनी में दो जोड़ होते हैं। भारतवर्ष के इस लम्ब पुच्छ चमगादड़ की पूंछ और जांघों की जड़ के पास चर्बी का जमाव इतना अधिक होता है कि कभी-कभी तो अकेली चर्बी का वजन शरीर के वजन से भी अधिक हो जाता है।

लंब पुच्छ दरारों और पुराने मकानों में रहता है। कच्छ में तो यह अन्धे कुओं में भी रहता है। आगरे के ताज की दरारों में और इलाहाबाद के पुराने मन्दिरों में खूब रहता है।

—:o:—

11–कीट भक्षी वर्ग (Order Insectivora)

कीट भक्षी वर्ग के सब प्राणी रजनीचर होते हैं और इनके नाखून या पंजे बहुत तेज तथा महीन होते हैं। इस वर्ग के जीवों के शरीर पर किसी के तो बहुत नरम बाल होते हैं तो किसी के कांटे जैसे तेज। भारत में इसके दो प्रसिद्ध वंश हैं:— छछूंदर वंश और कांटा चूहा वंश।

• छछूंदर वंश (Family Soricidae)

कीट भक्षक वर्ग के उपवर्ग में छछूंदर वंश आता है और भारतवर्ष में एक ही प्रकार की छछूंदर है, जिसे अंग्रेजी में Grey Musk Shrew कहते हैं। यह वंश बहुत बड़ा है, जिसके जीवों का सिर चपटा और थूथन चूहों से लम्बी होती है। इस वंश के जीवों के शरीर पर कोमल बाल होते हैं और आंखें इतनी छोटी तथा दृष्टि इतनी कमजोर होती है कि सूर्य की रोशनी में ये जीव अपनी आंखें नहीं खोल सकते। इस वंश के जीवों की दोनों बगलों में एक-एक ग्रन्थि होती है, जिसमें से तीव्र बदबू आती है।

इस वंश के जीवों के ऊपर वाले जबड़े में बीच के दोनों कृंतक दांत बड़े और हुक के समान नीचे झुके होते हैं। इनकी दाढ़ों पर गांठें होती हैं और पैरों में पांच-पांच अंगुलियां होती हैं, जिनके बड़े तेज नाखून होते हैं। ये प्राणी निशिचर होते हैं और दिन भर कहीं किसी कूड़े-करकट में छिपे रहते हैं तथा रात होते ही भोजन की तलाश में निकल पड़ते हैं।

104–छछूंदर (Grey Musk Shrew)

छछूंदर भारतवर्ष में सब स्थानों में पाई जाती है। चूंकि यह रात को ही निकलती है, इसलिए दिखाई कम पड़ती है। नालियों में से रात को घरों में घुस आती है और 'चिट-चिट-चिट' की आवाज करती है।

अचानक दूर से देखने में यह चूहे जैसी लगती है और लोग इसे चूहा समझ भी लेते हैं, परन्तु इसकी तेज दुर्गन्ध और दीवार के सहारे-सहारे चलने की क्रिया से यह तत्काल जानी जा सकती है। इसके शरीर की लम्बाई 6–7 इंच और पूंछ की लम्बाई 4 इंच होती है। थूथन नुकीली और सिर लम्बा होता है और नथुने के दोनों ओर के भाग सूजे-सूजे से होते हैं। इसका रंग हल्के सिलेटी जैसा होता है, जिसमें नीली सी झलक मारती है। सारे शरीर पर कोमल बहुत छोटे-छोटे बाल होते हैं। छोटे बच्चों का रंग गहरा होता है। दोनों बगलों की ग्रंथियों से एक तरह का दुर्गन्ध युक्त तरल पदार्थ निकलता रहता है और जोड़ा बांधने के दिनों में तो उसकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है। इन दिनों छछूंदरों में से बड़ी तेज बदबू आती है। जब छछूंदर डर जाती है तब विशेष रूप से यह बदबूदार गाढ़ा पदार्थ निकलता है और इस प्रकार छछूंदर के शत्रु उसकी इस गन्ध से उसके वश में हो जाते हैं। शत्रु तो उस बदबू के कारण उसे पकड़ नहीं पाते और कीड़ों-मकोड़ों को वह बड़ी आसानी से पकड़ लेती है, यहां तक कि सांप भी छछूंदर की इस तीव्र गन्ध के कारण भाग जाता है।

छछूंदर के विषय में यह कहा जाता है कि वह केवल कीट भक्षक है, पर ऐसी बात नहीं है। छछूंदर कीड़े-मकोड़े, मनुष्यों का उच्छिष्ठ भोजन, घी, रोटी, चूहे और मेढ़क आदि बड़े शौक से खाती है। इसकी तेज गन्ध के कारण बिल्ली जब इसके मुंह मारती है, तो एकदम पीछे हट जाती है। घरों में कीड़ों की तलाश के लिए ही वह दीवार के सहारे चलती है। लेखक ने एक बार रात के नौ बजे अपने बगीचे में मेढक की दुखभरी आवाज सुनी मानो उसे सांप ने पकड़ लिया हो। टार्च से जो देखा तो एक छछूंदर मेंढक पर आक्रमण कर रही थी। पीछे हट कर कूद कर वह अपने दांत मेंढक में मारती तब मेंढक फूल कर टांय-टांय की आवाज करता। मेंढक की आवाज से प्रतीत होता था कि वह उसका पीछा कर रही थी, पर जब उसने मेंढक को पकड़ लिया तब उसकी बगलों को फाड़ डाला और खाने लगी।

सांप और छछूंदर का आंखों-देखा हाल तो किसी ने नहीं लिखा, पर सम्भवतः सांप उसे पकड़ता ही नहीं। अगर पकड़ लेता होगा तो न छोड़ने का कारण है कि सांप के दांत भीतर को मुड़े होते हैं और पकड़ लेने पर फंसाव बढ़ता ही जाता है, पर यह किंवदंती बड़ी पुरानी है कि सांप यदि छछूंदर को पकड़ कर छोड़ दे तो अन्धा हो जाता है

और खा ले तो कोढ़ी हो जाता है। छछूंदर लड़ने-भिड़ने में बड़ी ही शक्तिशाली होती है। लोगों की यह धारणा बिल्कुल गलत है कि जब छछूंदर गाय या भैंस के ऐन को सूंघ जाती है तब थन सूज जाते हैं। वास्तव में दुधारु गाय के ऐन के दबने से नस फट जाती है और कभी-कभी थन पक कर मारा भी जाता है।

मादा छछूंदर एक बार में कई बच्चे देती है। बच्चों की आंखें जन्म के समय बन्द होती हैं।

—:o:—

•कांटा चूहा वंश

कीट भक्षी उपवर्ग का ही कांटा चूहा एक वंश है, पर इस वंश में छछूंदर वंश की अपेक्षा कम प्राणी हैं। इन प्राणियों की विचित्रता यह है कि इनके शरीर पर कोमल बालों के स्थान पर छोटे-छोटे कांटे होते हैं। इस वंश के प्राणियों की थूथन छछूंदर वंश के समान लम्बी नहीं होती और नाखून ही जमीन खोदने के योग्य होते हैं। बस इनमें और छछूंदरों में एक समता है कि इनको भी कम दिखाई देता है और ये आलसी भी होते हैं।

इस वंश के प्राणियों की टांगें और पूंछ छोटी होती हैं, पर चूहों को पकड़ने में ये बड़े तेज होते हैं। कांटा चूहा की कई जातियां हैं, पर भारत में पाई जाने वाली एक जाति की नीचे चर्चा की जा रही है :—

105--कांटेदार चूहा (Hedge Hog)

चूहों की सी शक्ल-सूरत के कारण इसे कांटेदार चूहा कह देते हैं। भारत में पंजाब और उत्तर प्रदेश में यह बहुत होता है। वैसे भारत में इसकी अनेक जातियां हैं, पर फिर भी उनमें थोड़ा सा ही भेद है।

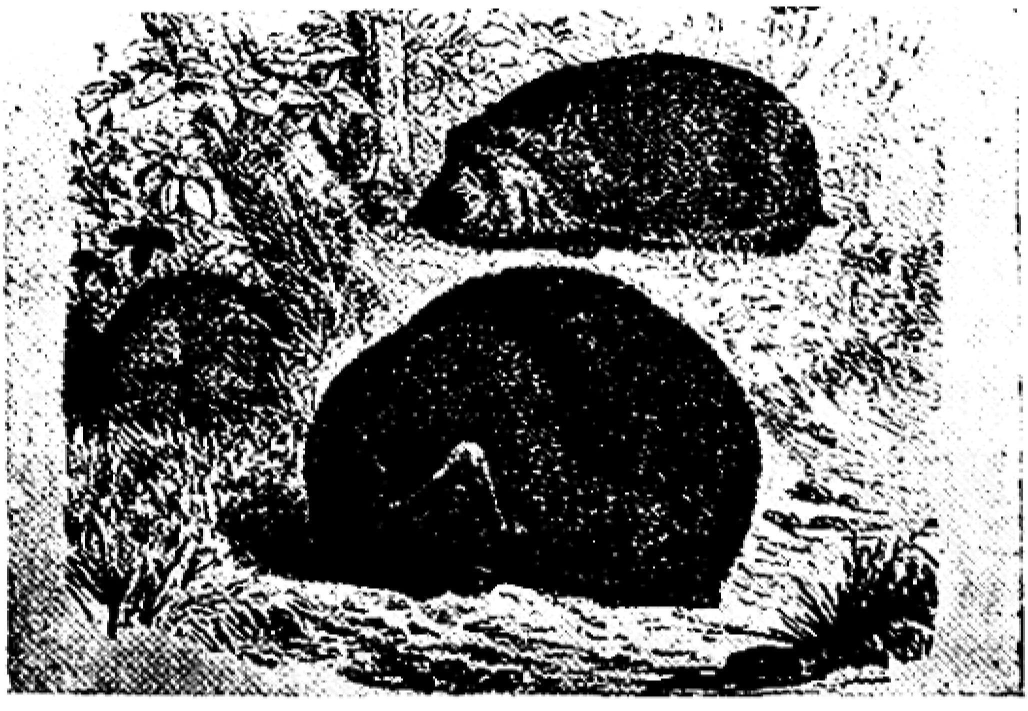


कांटेदार चूहा अपने दो नवजात बच्चों के साथ

इसके शरीर पर बालों की जगह छोटे-छोटे कांटे होते हैं। यह छोटा सा जीव केवल 8-9 इंच लम्बा होता है, टांगें छोटी और पंजों में लम्बे नख होते हैं। कीट भक्षी जीवों की थूथन जितनी लम्बी होनी चाहिए उतनी इसकी नहीं होती। इसके बदन का ऊपरी भाग कलछौंह होता है, पेट और पैर का रंग कलछौंह या कत्थई होता है, मुंह सिलेटी भूरा रहता है। ठोड़ी सफेद होती है। इसके बदन के कांटों का रंग सफेद होता है, पर उनकी नोकें काली होती हैं। काले हिस्से में सफेद छल्ला होता है। इसके कांटों के नीचे मोटे-मोटे बाल भी होते हैं और इसकी पीठ पर कुछ ऐसे पुट्ठे होते हैं, जिनके द्वारा वह कांटा को खड़ा कर सकता है। कांटेदार चूहा अपने शरीर को गेंद के समान गोल लपेट लेता है। मुंह थूथन और पंजे सब पेट के नीचे छिप जाते हैं और तब गोलमोल कांटेदार चूहा केवल कांटों ही कांटों का दिखाई पड़ता है। ये कांटे इनके लिए बड़े काम के होते हैं, क्योंकि जब कोई शत्रु उन पर आक्रमण करता है तब वह कांटे ही कांटे ऊपर कर देता है और मुंह छिपा लेता है। ऐसी दशा में शत्रु का साहस नहीं होता कि इसे पकड़े। गीदड़ या लोमड़ी मुंह मारे तो कांटे चुभ जाते हैं, पर यदि इस पर पानी डाला जाए तो फौरन मुंह निकाल कर चलने लगता है। गीदड़ और लोमड़ी इसे कभी-कभी धकेल कर पानी के पास ले जाते हैं और पानी के छूते ही यह जैसे ही चलने लगता है, वे इसे पकड़ लेते हैं।

इसके दांत इस प्रकार होते हैं :—

कृंतक दंत $\frac{3\text{-}3}{3\text{-}3}$ दूध दाढ़े $\frac{4\text{-}4}{2\text{-}2}$ दाढ़े $\frac{3\text{-}3}{3\text{-}3} = 36$



आमतौर पर पाए जाने वाले कांटेदार चूहे

यह बड़ा सुस्त, आलसी और कीड़े-मकोड़े खाने वाला जीव है। जिस घर में कांटेदार चूहा घुस जाता है वहां से घर के चूहे चुहियां भाग जाती हैं, क्योंकि यह चूहों को बिल्ली से भी अधिक तीव्रता से पकड़ता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह सांप को भी खा जाता है। सांप जब मुंह मारता है तब कांटेदार चूहा बिजली

की गति से कांटे खड़े करके उससे लिपट जाता है। सांप के विष का भी कांटेदार चूहे पर कोई असर नहीं होता। इसकी खुराक में सांप, चूहे और कीड़े-मकोड़े तो हैं ही, पर साथ ही साथ जमीन पर अण्डा देने वाली चिड़ियों के अण्डे भी बड़े स्वाद से खाता है।

यह अपने रहने के लिए बिल नहीं बनाता, वरन यों घास, पत्ते आदि, झाड़ियों में एकत्रित करके उन्हीं पर पड़ा रहता है। बालू में बिल के समान गड्ढा सा कर लेता है और कभी-कभी बिल के बाहर सोता है। जरा छू देने से एकदम गोल गेंद-सा हो जाता है।

कांटेदार चूहे की मादा एक बार में 3-4 तक बच्चे देती है। बच्चों के शरीर पर जन्म के समय कांटे नहीं होते, पर धीरे-धीरे जैसे-जैसे बच्चों की आयु बढ़ती जाती है कांटे निकलते आते हैं और 8-9 मास की आयु होने तक उनका सारा शरीर कांटों से भर जाता है और वे पूर्ण युवा कांटेदार चूहा बन जाते हैं।

पंजाब और उत्तर प्रदेश में मिलने वाले कांटेदार चूहे के कान कुछ अधिक लम्बे होते हैं और दक्षिण भारत में नीलगिरि पर्वत पर इनकी एक विशेष जाति मिलती है पर रंगरूप में थोड़ा ही भेद होता है अन्यथा अन्य सब आदतें एक सी होती हैं।

—:o:—

12–मेंढक वर्ग

मेंढक उभयचर समुदाय में मेंढक वर्ग का प्राणी है। इस वर्ग के प्राणी पानी और खुश्की दोनों में समान रूप से रहते हैं, पर फिर भी वे पानी से अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ सकते। इस वर्ग के प्राणी की मादा समय आने पर किसी जलाशय में हजारों ही अण्डे देती है और नर उन अण्डों पर एक प्रकार का रस फैला देता है। ये अण्डे मालाकार जुड़े रहते हैं और लसीले पदार्थ के कारण पानी का कोई असर उन पर नहीं पड़ता। समय आने पर टैडपोल अण्डों से निकल आते हैं, जिनका बड़ा सा शार्क मछली जैसा सर और लम्बी पूंछ होती है। इस समय वे मछली के समान होते हैं और गलफड़ों से सांस लेते हैं। धीरे-धीरे पूंछ गायब हो जाती है और अगले पैर निकल आते हैं। इस रूपान्तर के बाद वे मेंढक के रूप में आ जाते हैं, और खुश्की में भी रह सकते हैं। टैडपोलों के इस रूपान्तर में पांच सप्ताह तक लग जाते हैं।

मेंढक वर्ग के पिछले पैर लम्बे होते हैं। इसीलिए ये प्राणी उछल-उछल कर चलते हैं और टांगे फैलाकर तैरते हैं। सबसे मजेदार बात यह है कि इन प्राणियों के गरदन नहीं होती तथा माथा तिकोना, आंखे उभरी होती हैं। कान का छेद गोल-सा होता है, जिस पर झिल्ली चढ़ी रहती है। मेंढक वर्ग की जिह्वा की बनावट भी बड़ी आश्चर्यजनक होती है और आगे की तरफ जुड़ी होती है, जीभ पर चिपचिपा पदार्थ रहता है, जिसमें से कीड़ों का एक बार फंस कर निकलना सम्भव नहीं होता। इस वर्ग के किसी-किसी प्राणी में निचले जबड़े में दांत नहीं होते, पर किसी-किसी प्राणी के ऊपरी जबड़े में भी नहीं होते। किसी-किसी वंश के मेंढकी की खाल पर ग्रन्थियां सी होती हैं, जिनसे लसीला पदार्थ निकल-निकल कर शरीर को नम रखता है। मनुष्य जैसे लगातार मुंह और नाक बन्द करके रखने से मर

जाता है, ठीक उसी तरह लगातार मुंह खुले रखने से मेंढक मर जाते हैं, क्योंकि मेंढकों के शरीर में पसलियां नहीं होतीं और उनको मुंह में हवा भर कर फेफड़े की तरफ ढकेलनी पड़ती है और मुंह से ही बाहर निकालनी पड़ती है। पानी में रहने वाले प्राणी अपनी खाल से भी हवा खींचते हैं। अत: जाड़ों में जब वे शीत निद्रा में रहते हैं तब त्वचा से ही सांस लेते हैं।

प्रसन्नता और जोड़ा बांधने के समय मेंढक खूब बोलते हैं। बोलते समय मेंढ़की का मुंह नहीं खुलता, क्योंकि फेफड़ों की हवा मुंह में और मुंह की हवा फेफड़ों में ले जाने की क्रिया ही वह आवाज उत्पन्न कर देती है। मेंढकों की दृष्टि भी मंद होती है।

मेंढकों का रंग उनके रहने के स्थान के अनुरूप ही हरा, काला, पिलछौंह या काठ के से रंग का हो जाता है, क्योंकि मेंढकों की खाल के नीचे ऐसे कोष होते हैं, जो ऊपरी त्वचा का रंग पास-पड़ोस के रंग के अनुरूप बदल देते हैं।

मेंढ़क मरे कीड़े नहीं खाते। सांप और छिपकलियों की तरह उनके शरीर से भी केंचुल निकलती है, जिसे वे स्वयं खा जाते हैं। मेंढ़क वर्ग में हमारे देश में दो वंश हैं :—

1—दादुर वंश (Family Ranidae)

2—भेक वंश (Faimily Butonidac)

—:o:—

●दादुर वंश

मेंढकों के इस वंश में अनेक प्रकार के मेंढक हैं, जिनके रहन-सहन और स्वभावों में बहुत अन्तर है। पर इन सबमें उन मेंढक की संख्या अधिक हैं, जो खुश्की पर रहते हैं और पानी में अण्डे देते हैं। इसके चार मुख्य मेंढक हैं :— मेंढक, मेंढकी, मेचकुर और मदोवर।

106—मेंढक (Bull Frog)

हमारे देश में यह मेंढक हिमालय से लेकर सारे भारत में पाया जाता है। इसकी पीठ का रंग भूरा गंदा होता है। रीढ़ के ऊपर पीले रंग की एक धारी होती है। हमारे देश के सब मेंढ़कों में यह बड़ा होता है। पुराने बड़े मेंढक जो नालियों में रहते हैं, वे तो चिड़ियां तक खा जाते हैं। नर मेंढक के गले की स्वर ग्रन्थियां लाल से रंग की होती हैं।

107—मेंढकी (Slime Frog)

रंग रूप में मेंढक के समान होने पर भी मेंढकी आकार में मेंढक से छोटी होती है। इसके शरीर का ऊपरी भाग हरेपन पर होता है, जिस पर गहरी चित्तियां होती हैं। खास तौर से ये पानी भरे धान के खेतों में रहते हैं।

108—मेचकुर (Water Skipping Frog)

मेचकुर मेंढक भारत के सब जलाशयों में रहते हैं, केवल ढाई इंच की लम्बाई में भी मेंढक बड़े मेंढ़क के बच्चे से लगते हैं। इसके भूरे या जैतूनी रंग पर चित्तियां सी होती हैं और जांघों के पिछले भाग पर दो काली सी धारियां होती हैं।

109–मदोवर (Fat Frog)

मदोवर खुश्की पर रहने वाला मेंढक है । हमारे देश में यह सब स्थानों में पाया जाता है, पर मिट्टी में दबा पड़ा रहने के कारण दिखाई नहीं देता । इसका छोटा और फला हुआ सिर होता है तथा चिकनी खाल पर दाने से उभरे रहते हैं । यह केवल ढाई इंच लम्बा होता है और अधिकांशतः चीटियां खाता है ।

—:o:—

●भेक वंश

भेक वंश के मेढकों का रंग काला होता है और आवाज बड़ी कर्कश होती है, जिससे इस वंश के मेंढ़कों को 'टर' भी कहते हैं । इनकी खाल खुरदरी होती है और महीने में दो बार केंचुली बदलते हैं । ये कीड़े-मकोड़े बहुत खाते हैं । अतः किसान को इनसे बहुत लाभ होता है । भेक वंश के मेंढकों की मादा दुहरी पंक्ति में अण्डे देती है । इस वंश में अनेक मेंढक हैं, पर सबके स्वभाव समान हैं । अतः केवल एक का वर्णन दिया जाता है ।

110–भेक (टर) (Toad)

भेक हमारे देश में सब स्थानों में मिलता है, यहां तक कि हिमालय में 10 हजार फुट की ऊंचाई तक भी पाया जाता है । भेक की विशेपता है कि यह सदा पानी में रहना पसन्द नहीं करता, वरन उसे खुश्की अधिक पसन्द है । भेक आकार में मेंढक से छोटा होता है और इसकी कुल लम्वाई टांगों को छोड़कर 6 इंच होती है ।

भेक के दांत नहीं होते । भेक का रंग कलछौंह होता है और निचले भाग पर चकत्ते होते हैं । नर की स्वर-ग्रन्थि काफी स्पष्ट होती है । भेक की थूथन छोटी और दबी-दबी सी होती है और सिर के दोनों ओर लकीर सी होती है । भेक की अगली टांगों की अंगुलियां जुड़ी नहीं होतीं और न यह कूद-कूद कर चलता है, वरन धीरे-धीरे चलता है ।

यह इतनी 'टर्र' 'टर्र' करता है कि रात को इसके शोर के कारण सो सकना असम्भव ही होता है । समय पाकर इनकी पुरानी खाल-केंचुल पीठ के पास फट जाती है, जिसको अगली टांगों से निकाल-निकाल कर वे खा जाते हैं । भेक का मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं ।

—:o:—

13–नक्र वर्ग (Order Crocodilia)

सरीसृप श्रेणी के नक्र वर्ग में विश्व के सभी प्रकार के नक्र-घड़ियाल, मगर और एलीगेटर आदि आ जाते हैं । भारतवर्ष में मिस्र और अमेरिका से कुछ भिन्न प्रकार के जीव हैं । पर वर्ग उन सबका एक है । इस वर्ग के प्राणियों की विशेपता यह है कि वे सदा अपना नीचे का जबड़ा चलाते है और मालूम यह पड़ता है कि ऊपर का जबड़ा उठा रहे हैं । इस वर्ग के प्राणियों का आकार बड़ा, मुंह छिपकली का सा और पूंछ आरीनुमा होती है । इस वर्ग के प्राणियों के गले की नली में एक परदा सा होता है, जो मुंह खोलने पर इस

तरह पड़ जाता है कि पानी हलक के भीतर नहीं जाता। नथनों पर भी परदा होता है। इन प्राणियों के मस्तिष्क छोटे होते हैं। भारत में इस वर्ग में एक ही प्रसिद्ध वंश है।

—:o:—

● नक्र वंश

(Family Crocodilidae)

नक्र वंश, नक्र वर्ग का एक प्रमुख वंश है। भारत में प्रमुख जीव इस वंश के मगर और घड़ियाल हैं। मगर तो अन्य देशों में भी हैं, पर घड़ियाल केवल भारत में ही पाया जाता है। मगर और घड़ियाल की शारीरिक रचना, स्वभाव आदि तो एक दूसरे से मिलते हैं, पर शकल सूरत में थोड़ा भेद होता है। मगर की थूथन छिपकली की सी होती है, पर घड़ियाल की थूथन बहुत लम्बी होती है और नाक पर एक गोल कुब्बा सा उठा होता है।

नक्र वंश के प्राणी बहुत लम्बी आयु वाले होते हैं, कभी-कभी तो 700–900 वर्ष तक इनकी उमर पहुंच जाती है। ये प्राणी जलचर हैं, पर आवश्यकता पड़ने पर खुश्की में भी भाग लेते हैं। समुद्री मगरों की लम्बाई नदियों के मगरों की अपेक्षा अधिक होती है। इनके मुंह में एक प्रकार की झिल्ली होती है, जिससे मुंह खोलने पर पानी भीतर नही जाता। इस वंश के प्राणियों की आंखें और नथने ऊपर को उठे होते है, अत: अपने सारे शरीर को पानी के भीतर रख कर केवल आंखें बाहर निकाले रहते है और अपने शिकार को पकड़ लेते हैं। ये प्राणी एक बारगी ही अपने शिकार को नहीं खाते, वरन खोहों में ठूंस देते हैं, सड़ जाने पर नोंच-नोंच कर खाते रहते हैं।

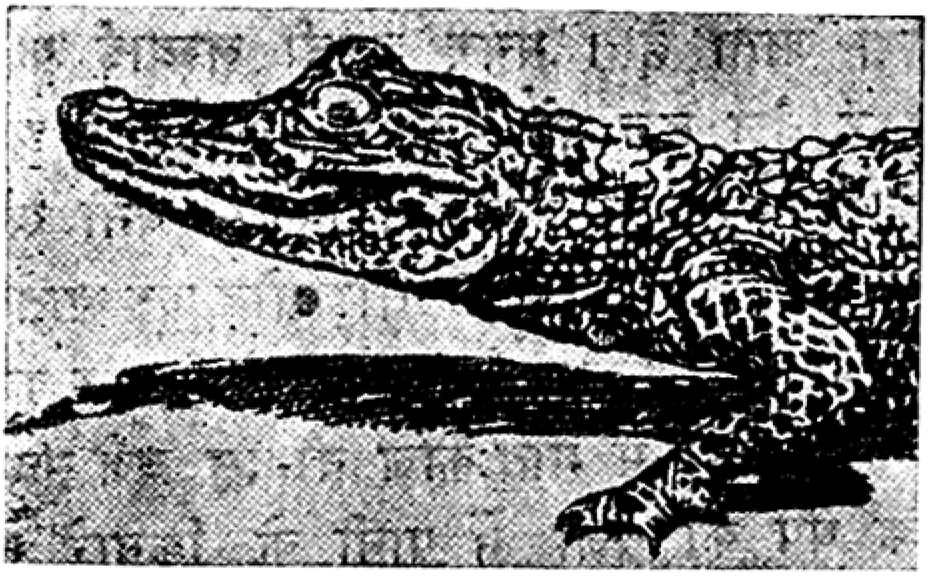
ये प्राणी बड़े चालाक होते हैं, और इनकी पाचन-शक्ति भी बड़ी प्रबल होती है। हड्डियां तक इनके पेट में समय पाकर गल जाती है। पाचन-शक्ति को बढ़ाने के लिए इस वंश के जीव छोटे-छोटे पत्थर भी निगल लेते हैं। मगर की जांघों के पास ग्रन्थियां होती हैं, जिससे तेज गंध निकलती है। इस ग्रन्थि को ताकत के लिए लोग खाते हैं।

नक्र वंश के प्राणी अंडज हैं। सफेद गोल अण्डों को मादा रेत में रख देती है और समय पर डिम्बदंत से अण्डा तोड़ कर बच्चे बाहर निकल आते हैं। डिम्ब दांत कुछ समय बाद गिर जाता है। समुद्री मगरों को छोड़कर इस वंश के तीन प्राणी भारत में पाए जते हैं **(1) मगर (2) घड़ियाल (3) दलदल का छोटा मगर।**

111–मगर (Crocodile)

हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के विभिन्न जिलों में इसके विभिन्न नाम है, इसलिए सुविधा और जानकारी के लिए इसके विषय में हम कुछ लिखेंगे।

मगर का थूथन लम्बा न होकर बिल्कुल छिपकली जैसा होता है। हां, छिपकली के दांत नहीं होते, पर मगर के बड़े-बड़े दांत होते हैं और थूथन के नीचे के बड़े दांत ऊपरी



मगर

थूथन में बने छेदों में सट जाते हैं। मगर का शरीर मुटापा लिए हुए होता है और गरदन काफी चौड़ी होती है। मगर का रंग गंदा, हरा या जैतूनी होता है। इसके मुंह में दोनों ओर 29 तक दांत होते हैं। जबड़े का पांचवां दांत सबसे बड़ा दांत होता है और नीचे के जबड़े का चौथा दांत ऊपरी जबड़े में बने छेद में बैठ जाता है। इसीलिए किसी जानवर को पकड़ने के बाद जब मगर अपना मुंह बन्द कर लेता है तब फिर वह खोला नहीं जा सकता। मगर के शरीर पर बड़े शल्क होते हैं। पीठ के शल्कों के नीचे हड्डी होती है। गरदन पर चार चौड़े शल्क होते हैं। पानी में पड़े मगर का रंग भीगे लोहे-जैसा प्रतीत होता है, पर नीचे पेट का रंग पीलापन लिए सफेद होता है। मगर इतने मारे गए हैं कि अब 10-12 फुट के भी मगर नहीं मिलते। अब तो सात फुट के भी मगर मिल जाएं यही बहुत हैं। अंग्रेजी के 'स्नब नोज्ड़' या चपटे थूथन वालों को ही मगर कहते हैं और इसे कहीं 'भोट' कहीं 'नाका' कहा जाता है।

भारत की नदियों के सब मगर सब बड़ी नदियों, दलदलों और तालाबों में रहते हैं। नदियों में जहां दह बन जाते हैं वहीं मगर अपने रहने का स्थान बना लेते हैं। इनकी खुराक में सब प्रकार के जीव हैं। अपनी लम्बाई के अनुपात से मगर आदमी से लेकर बैल तक को पकड़ कर मार लेता है। जब मगर किसी जानवर को पकड़ता है, तब बिजली की गति से आक्रमण करता है। मुंह से पकड़ कर कांटेदार पूछ इतनी जोर से मारता है कि जानवर के पैर उखड़ जाते हैं और वह गिरने को होता है। बस, मगर उसे पानी में खींच ले जाता है। फिर अपने शिकार को पानी में डुबो कर मार कर नदी किनारे बनी खोह में ठूंस देता है। बाद में उसे सड़ा कर मांस तोड़-तोड़ कर खाता रहता है। सड़ा मांस मगर को बेहद पसंद है। खुश्की में निकल कर तो वह-गोबर भी खूब खाता है।

जाड़ों में प्रातःकाल नौ-दस बजे सुबह से चार बजे शाम तक धूप की तेजी में पानी के किनारे मगरों का दल पड़ा सिकता रहता है और तनिक-सा भी खटका अगर हो तो वे झट पानी में सरक जाते हैं। हालांकि मगर की बनावट ऐसी नहीं होती जैसी अधिकांश मछलियों की होती है और वे बिना पानी के ऊपर आए सांस लेती रहती हैं, पर फिर भी आवश्यकता पड़ने पर मगर बिना सांस लिए भी घंटों पानी के भीतर बना रहता है।

मार्च और अप्रैल के महीनों में पानी के किनारे के नदी की रेत में मादा मगर सुरंग-सी बना कर अंडे देती है और उन्हें छोड़ देती है। धूप और बालू की गर्मी से वे अंडे वारिश से पूर्व ही तैयार होकर फूट जाते हैं। बच्चे बाहर आ जाते हैं, जो बिल्कुल छिपकली-जैसे होते हैं, बस मुंह में दांत होने के कारण भिन्न मालूम पड़ते हैं।

मगर के विषय में एक धारणा यह है कि उसकी पीठ की खाल इतनी कड़ी होती है कि उस पर गोली का कोई असर नहीं होता, पर यह बात बिल्कुल गलत है। भारी राइफल तो क्या उसकी पीठ को 22 बोर जैसी छोटी राइफल भी छेद देती है। यह दूसरी बात है कि 22 बोर राइफल की गोली लगने से वह मरेगा नहीं। हो यह जाता है कि समतल से गोली चलाने पर गोली प्रायः रपट कर निकल जाती है। पहले तो मगर मारने की खातिर उसकी पीठ पर निशाना लिया ही नहीं जाता, अगर लेना भी हो तो ऊंचे स्थान से निशाना लेना चाहिए। लेखक ने कई बड़े मगरों और घड़ियालों को 30 बोर रैमिन्टन स्प्रिंगफील्ड राइफल से पीठ पर अगली दो टांगों के बीच निशाना लेकर मारा है। वैसे मगर या घड़ियाल को मारने के लिए सबसे अच्छा निशाना अगली टांगों के पीछे बगल में गोली मारने का है, जिससे गोली दिल को फाड़ती है। अगर किसी तरह दिल पर न पड़े तो गरदन को बेकार कर ही देती है। गोली पेट की ओर पड़ जाए और मगर मुंह फाड़ने लगे तो फौरन ही दूसरी गोली उसकी पिछली टांगों के बीच कमर तोड़ने के लिए चलानी चाहिए, अन्यथा मुंह फाड़ने के थोड़ी देर बाद ही मगर पानी में सरक जाता है। गरदन हिलते ही जहां मगर ने पानी छुआ और पूंछ में गति हुई नहीं कि वह पानी में चला जाता है और फिर जाड़ों में दो एक दिन बाद और गर्मियों में घंटों बाद लाश मिलती है। पानी में मछलियां और कछुए उसे परेशान करते हैं। मगर यदि तनिक निचाई पर हो तो माथे पर गोली लगने से फौरन मर जाता है। लेखक ने 10–15 फुट की दूरी से 16 फुट लम्बे घड़ियाल को इसी प्रकार मारा था। मगर की पीठ की खाल किसी काम नहीं आती। सूट केस, जूते आदि पेट की खाल के बनते हैं। गरदन से पूंछ तक जितना भाग जमीन से लगा रहता है, वही मुलायम होता है और उतने भाग की ही खाल साबुत उतार ली जाती है, पेट चीर कर नहीं उतारी जाती।

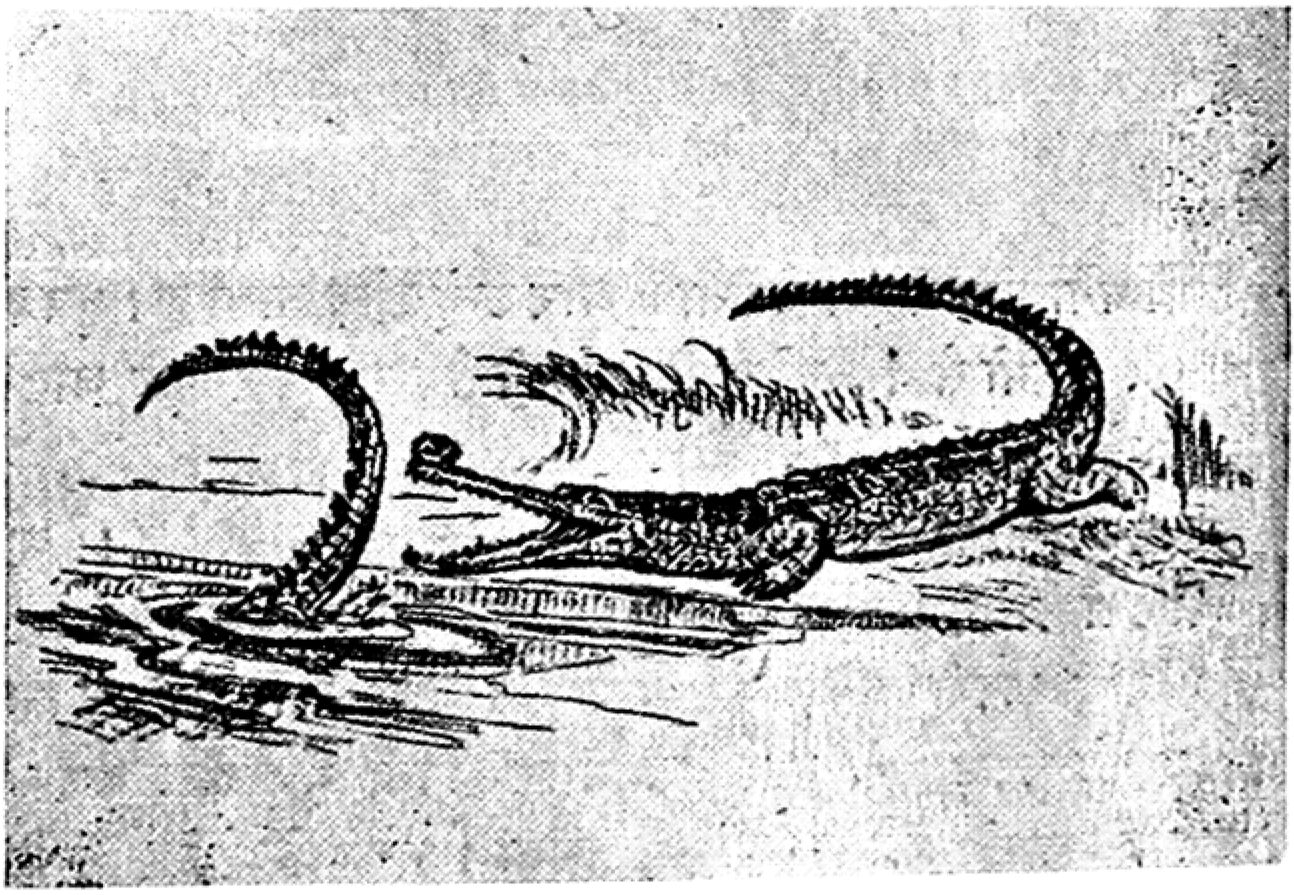
लोगों का यह खयाल कि कोई आदमी मगर से पकड़े जाने और पेट में रखे जाने पर चाकू से पेट फाड़ कर निकल सकता है, बिल्कुल गलत है। यह बात असम्भव है, क्योंकि मगर के भयंकर विशालकाय जबड़ों की पकड़ में एक बार आते ही आदमी बेहोश हो जाता है। फिर, मगर किसी भी प्राणी को जीवित तो सटकता ही नहीं है। पहले पानी में दबोच लेता है और मगर की पकड़ तथा पानी में दबोचने की क्रिया से जिन्दा बचने का प्रश्न ही नहीं है।

मगर तालाबों में भी पाए जाते हैं और जब तालाब सूखने लगते हैं, तब वे मीलों की दूरी को रातों-रात पार करके अन्य तालाबों में चले जाते हैं और यदि इन्हें कहीं जाने का अवकाश नहीं मिलता या निकट ही कोई जलाशय नहीं होता, तो कीचड़ में अपने आपको दाब कर पड़े रहते हैं, क्योंकि बिना कुछ खाए बहुत दिनों तक जीवित रहने की उनमें क्षमता है और रोग तो उन्हें कोई होता ही नहीं है।

112–घड़ियाल

भारतवर्ष में घड़ियाल की एक ही जाति मिलती है और वह हमारे देश की गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, महानदी, और उसकी सहायक नदियों में रहती है ।

घड़ियाल की पीठ और पेट पर चारखाने की शक्ल के शल्क होते हैं । ऊपरी भाग के सेहरों के नीचे हड्डियों की आंखें भी उभरी होती हैं और पारदर्शी झिल्ली से ढकी रहती हैं । पानी में आंखें खोलने पर पानी भीतर नहीं जाता । घड़ियाल की नीचे की अंगुलियां एक-तिहाई और बाहर की दो-तिहाई भाग तक आपस में जुड़ी होती हैं । घड़ियाल का रंग जैतूनी होता है, जिस पर भूरी चित्तियां या धारियां होती हैं, पर सबसे विशेष बात जो मगर और घड़ियाल में भेद करती है वह है—घड़ियाल की लम्बी थूथन और थूथन के सिरे पर गोल तूंबा सा होता है । पर यह तूंबा-सा केवल नर घड़ियाल की थूथन पर होता



घड़ियाल

है । मादा घड़ियाल के नहीं होता । जब नर नदी में चलता है, तब उसमें से सीटी-सी बजती है और विशालकाय घड़ियाल टारपीडो के समान जाता हुआ बड़ा शानदार लगता है । नर घड़ियाल के यह तूंबा एक आयु-विशेष में जब वह आठ-नौ-दस फुट लम्बा हो जाता है, तब निकलता है । गंगा, महानदी, ब्रह्मपुत्र और सहायक नदियों में खाल के लालच में घड़ियालों का इतना विनाश हुआ है कि उत्तर प्रदेश सरकार को तो अपने यहां इसे संरक्षण देना पड़ा ।

घड़ियाल की लम्बाई 20-25 फुट तक हो जाती है और बहुत बड़ा घड़ियाल तो 30 फुट तक हो जाता है, पर घड़ियाल इतने मारे गए हैं कि 14-15 फुट लम्बा घड़ियाल भी मिल जाए तो बहुत बड़ी बात होती है । लेखक ने 16 फुट तक का घड़ियाल देखा और मारा है ।

घड़ियाल के विषय में कुछ लोगों का यह मत है कि वह केवल मछली खाता है, क्योंकि उसका थूथन बहुत लम्बा और पतला सा होता है। अंग्रेजी की बड़ी प्रामाणिक पुस्तक 'दि रायल नेचुरल हिस्ट्री' तक में घड़ियाल के विषय में लिखा है कि वह केवल मछली खाता है। इस बात के लिए कारण भी यह लिखा है कि उसका थूथन केवल मछली पकड़ने के लिए बना है, पर जिन नदियों में घड़ियाल पाए जाते हैं, उनके निकटवर्ती गांव वाले जानते हैं कि घड़ियाल मगर से कहीं अधिक खतरनाक होता है। लेखक ने घड़ियाल को बैल और बकरी पकड़ते देखा है। ऐसे आदमियों से लेखक मिला है, जो घड़ियाल के चंगुल से बचे थे और उनकी पीठ पर दांतों के खरोंच थे। घड़ियाल बड़ी मछली को नदी में से थूथन की टक्कर देकर उछाल कर फिर मुंह में गपक कर खाता है। बहुत बड़ी मछली को वह इतनी जोर से किनारे पर पटकता है कि उसके अंजर-पंजर ढीले हो जाते हैं, और हड्डी से मांस छूट जाता है।

एक बार एक घड़ियाल ने इसी तरह से पानी पीते हुए एक आदमी को खाना चाहा। आदमी को थूथन की ठोकर से इतनी जोर से उसने ऊपर फेंका कि वह नदी के एक बहुत ऊंचे कगार पर जा गिरा और आदमी को गपक जाने को तैयार बैठा घड़ियाल टापता रह गया। मगर और घड़ियाल अपने बड़े शिकार को एकदम सटक कर नहीं खाते हैं, वे तो मांस सड़ा कर नोंच-नोंच कर खाना पसंद करते हैं। इसलिए यह सवाल उठता ही नहीं कि घड़ियाल की थूथन की बनावट केवल मछली खाने योग्य है।

113–दल-दल का छोटा मगर

दल-दल का छोटा मगर 3 फुट लम्बा होता है और छोटे-छोटे तालाबों की दल-दल में पाया जाता है।

14–कच्छप वर्ग (Order chelonia)

इस वर्ग में जल और थल दोनों में रहने वाले कछुए रखे गए हैं। यह वर्ग उरंगम समुदाय में है। शरीर-रचना और स्वभाव से एक से होने पर भी कछुओं को दो भागों में बांटा जा सकता है:—स्थल कच्छप (Land Tortoises) और जल कच्छप (Sea Tortoises)। नदियों और तालाबों के कछुओं की अंगुलियां बत्तखों की तरह जाली से जुड़ी होती हैं, पर समुद्री कछुओं के पैर आरीनुमा होते हैं। कछुओं का शरीर डिब्बे में बंद ढांचा-सा होता है, जिसमें से चारों पैर और गरदन इच्छानुसार बाहर निकल आते हैं। पीठ तो एक गोल उलटी टोकनी सी खपड़ा सी होती है, पर पेट का भाग चिकना होता है। कछुओं की गरदन लम्बी और लचीली होती है। और सिर चपटा तथा तिकोना होता है, पर मुंह में दांत नहीं होते। दांतों के स्थान पर एक कड़ी हड्डी के मसूढ़े से होते हैं, जिनसे वे मांस बड़ी आसानी से काट-काट कर खाते हैं।

कछुओं के छोटे और मजबूत पैर पानी में तैरने और सूखे में चलने में कितने ही कारगर हों, पर जब वह उलटा हो जाता है, तब वे बेकार हो जाते हैं। तिकोनी थूथन पर नाक के दो छेद स्पष्ट होते हैं, जिनसे वह आस-पास के पदार्थों को सूंघ लेता है। सबसे आश्चर्य

की बात तो यह है कि कि कछुओं की छोटी-छोटी आंखों पर तीन पलक होते हैं। कान के छेद जवड़ों के समीप होते हैं। कछुए फेफड़ों द्वारा सांस लेते हैं, पर साथ ही प्रकृति ने इन्हें पानी से प्राण-वायु खींच लेने की क्षमता भी दी है, इसलिए वे काफी देर तक पानी में रह लेते हैं। स्थल के कछुए मिट्टी में दबे पड़े रहते हैं तो साधारण आदमी उन्हें चूहे का विल समझता है।

कच्छप वर्ग के सब प्राणी अंडज हैं। मादा समय आने पर बालू में लम्बोतरे या गोल या दूध जैसे सफेद अण्डे देती है और उन्हें दबा देती है। गीदड़ इन अण्डों को बड़े स्वाद से खाते हैं। समय आने पर वे अण्डे धूप की गर्मी से फूट कर सेये जाते हैं।

मीठे पानी के कछुए प्रायः मांस भक्षी होते हैं। स्थल पर रहने वाले प्रायः सब कछुए शाकाहारी होते हैं। कुछ कछुए मेढ़क, मछलियां, कीड़े—मकोड़े और मुर्दार भी खाते हैं। जब आदमी पर वे आक्रमण कर वैठते हैं तो उस स्थान का मांस ऐसे नोच ले जाते हैं, जैसे किसी ने बड़े तेज चाकू से काट दिया हो। वे कभी नदियों में खड़ी भैंसों के थन काट ले जाते हैं।

खुश्की के कछुए खेतों को काफी हानि पहुंचाते हैं।

हमारे देश के प्रसिद्ध कछुओं को तीन वंशों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **स्थल कच्छप वंश** (Family Testudinidae)
2. **जल कच्छप वंश** (Family Trionychidae)
3. **समुद्री कच्छप वंश** (Family chelonidae)

——:o:——

• स्थल कच्छप वंश

स्थल कच्छपों में कुछ तो ऐसे हैं, जो पानी में रहना विल्कुल पसन्द नहीं करते। दूसरे स्थल कच्छप ऐसे हैं, जो पानी और खुश्की दोनों में रहना पसन्द करते हैं। इस वंश के कुछ कछुए ऐसे भी हैं, जो विल्कुल पानी में ही रहना चाहते हैं। इस वंश में तीन प्रकार के प्रसिद्ध कछुए हैं:— साल कछुआ, छतुआ कछुआ, वैष्णव कछुआ।

114—साल कछुआ (Red Streaked Kachuya)

यह कछुआ गंगा, गोदावरी, कृष्णा इत्यादि नदियों में पाया जाता है और अपने वंश के अनुरूप शाकाहारी है। इसके खोपटे की लम्बाई 16 इंच तक होती है। साल कछुए का ऊपरी भाग भूरा और नीचे का पिलछौंह होता है। गरदन भूरी होती है, जिस पर लाल सी धारियां पड़ी होती हैं। साल कछुए के पैर आड़े-आड़े होते हैं। खेती का यह नुक्सान करता है, पर इसका मांस भी लोग वड़े स्वाद से खाते हैं।

115—छतुआ कछुआ (Starred Tortoise)

यह एक प्रकार से विल्कुल खुश्की का कछुआ है। इसके खपड़े पर कुब्बड़ से छत की तरह उठे रहते हैं। यह शाकाहारी है और मझोले आकार का है। मिट्टी में छिपा पड़ा रहता है और खेती का तो वहुत नुक्सान करता है।

116–वैष्णव अथवा रामानन्दी कछुआ

यह कछुआ गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु की सहायक नदियों में पाया जाता है। 9 इंच के खपड़े वाला यह सुन्दर कछुआ है, जिसके माथे पर तिलक जैसा चिह्न होता है और खपड़े पर झालर सी होती है। यह भी शाकाहारी है। इसकी पीठ का रंग जैतूनी और नीचे का रंग नारंगी होता है।

• जल कच्छप वंश

जल कच्छप सब मांस भक्षी होते हैं और कीचड़ तथा पानी में रहते हैं। इनके शरीर चपटे और गोल होते हैं और खपड़े पर मुलायम खाल चढ़ी होती है। श्मशान की निकटवर्ती नदियों में ये काफी पाए जाते हैं। यदि जीवित मनुष्य पानी में गिर जाए तो दो चार चोटों में ही उसे नोच कर मार डालते हैं। मछलियों के भी ये बड़े शत्रु हैं। इनके मुख्य तीन प्रकार हैं :

117–सेवार कछुआ (Ganges Soft Shell Tortoise)

गंगा, जमुना, महानदी और सिन्धु की नदियों का यह प्रसिद्ध कछुआ है। यह नदियों का सबसे बड़ा कछुआ है। इसकी लम्बाई ढाई फुट तक होती है। सेवार कछुए की पीठ का रंग गंदा हरा होता है और हरे से सिर पर काली धारी होती है। यह भयंकर मुर्दाखोर है। मछलियों का यह बड़ा दुश्मन है। इसका मांस नहीं खाया जाता।

118–दक्षिण का चिकना कछुआ (Southern Soft Shell Tortoise)

यह सेवार कछुए से मिलता-जुलता होता है, बस आकार में छोटा होता है। स्वभाव भी सेवार से मिलता है। भारत में यह गंगा तथा अन्य बड़ी नदियों में पाया जाता है। पानी के अन्य कछुओं की तरह इसका खपड़ा भी पतली खाल से ढका रहता है। यह भी बड़ा भयंकर मुर्दाखोर है।

119–पंक कछुआ (Mud Turtle)

इसका नाम पंक कछुआ इसलिए पड़ा है, क्योंकि शीत काल में यह कीचड़ में दबा पड़ा रहता है। आकार में केवल 9 इंच तक होने के कारण कछुई भी कहलाता है। भारत के सब तालाब और नदियों के पास यह मिलता है गर्मियों में धूप सेकते इन्हें देखा जा सकता है। सबसे विशेष बात यह है कि यह कछुआ घास-पात और मांस मछली सब खाता है।

——:o:——

• समुद्री कच्छप वंश

इस वंश के कच्छप आकार में बहुत बड़े बड़े 5 फुट तक होते हैं। धूप लेते हुए उल्टी बाद से पड़े दिखाई पड़ते हैं। खपड़ों और मांस के लिए इनका शिकार होता है।

ये सारे समय पानी में ही रहते हैं। सब गरम देशों के समुद्रों में इनका निवास है। इनके दो प्रकार हैं :—

120—हरा कछुआ (Green Sea Turtle)

यह हमारे देश के सब समुद्रों में पाया जाता है और अण्डमान द्वीप समूह के निकट अधिक हैं। बंगाल में यह बड़े स्वाद से खाया जाता है। यह चार-पांच फुट का बड़ा भारी कछुआ है। यह शाकाहारी है और समुद्री वनस्पति से पेट भरता है। पीठ का रंग गंदा, हरा और नीचे का रंग पीला सा होता है, जिस पर काले चित्ते होते हैं।

121—बाज चंचु कछुआ (Hawk's Beak Turtle)

आकार में हरे कछुए से छोटा यह कछुआ हमारे देश के समुद्रों में मिलता है। इसकी थूथन बाज पक्षी की तरह मुड़ी होती है। इसीलिए यह नाम इसका पड़ा है।

——:o:——

15—गोधा वर्ग (Order Squamata)

मगर की शकल-सूरत वाले किन्तु आकार में बहुत छोटे अनेक प्राणी इस वर्ग में आते हैं। इनमें से अनेक तो ऐसे होते हैं, जिनके सर पैर और पूंछ सांप के से नहीं होते, पर कुछ प्राणियों को देखने से वे सांप-जैसे प्रतीत होते हैं। सब प्रकार की छिपकलियां, गोहें, गिरगिट तथा कोतरी इस वर्ग में सम्मिलित हैं। छिपकलियों की तो ढाई हजार के लगभग जातियां संसार में पाई जाती हैं, पर हमारे देश में केवल ढाई सौ प्रकार की ही छिपकलियां होती हैं। छिपकलियां निशिचर होती हैं और रात में ही कीड़े-मकोड़े खाती हैं। जब ये अपनी कटोरी जैसी अंगुलियों को दीवार पर दबा कर चलती हैं, तब उनके नीचे की हवा निकल जाती है और वे दीवार पर चिपकी रह जाती हैं।

बम्हनी भी छिपकली की सी होती है। बस इसके पैर छोटे और पीठ चिकनी होती है, पीठ पर धारियां होती हैं और जिह्वा सांप की तरह फटी होती है। हमारे कूड़े-करकट में से कीड़े-मकोड़े खाकर यह अपना गुजारा करती है।

बम्हनी से तनिक बड़े आकार की कोतरी होती है। कोतरी की पूंछ कोमल, पीठ कत्थई रंग की, ऊपरी भाग शल्कों से युक्त होती है। इनका भोजन भी कीड़े-मकोड़े हैं और कूड़ा-करकट पत्तों तथा पेड़ों पर ये रहती हैं। कुछ पानी में भी रहती हैं।

कोतरी से भी बड़ा आकार होता है सांडा का। सांडा शाकाहारी होता है। सांडा की पूंछ छिपकलियों की सी न होकर कांटेदार होती हैं, जिससे वे अपने शत्रु को मार देते हैं। ये सूखे रेगिस्तानी खेतों में रहते हैं।

गिरगिट से सभी परिचित हैं। ये अपना रंग बदल लेते हैं तथा पेड़ों पर ही अधिक समय व्यतीत करते हैं। नर का सर मुकुट जैसा उभरा होता है। गले के नीचे एक थैली सी होती है। गिरगिट के सिर पर शल्क होते हैं और कभी-कभी कांटे से उभरे रहते हैं। गिरगिट कई प्रकार के होते हैं—कुछ सर्वभक्षी, कुछ मांसाहारी, कुछ शाकाहारी।

रंग बदलने के हिसाब से गिरगिट की ही तरह का एक और भी प्राणी होता है जिसे बहुरूपी कहते हैं। बहुरूपी पेड़ों पर ही रहता है। इसकी पूंछ लम्बी होती है और पैरों की अंगुलियां दो भागों में बंटी होती हैं। वह आलसी प्राणी होता है और वहीं बैठा-बैठा अपनी जिह्वा पर लगे चिपचिपे पदार्थ से कीड़े-मकोड़े पकड़ता रहता है। इसकी विशेषता यह है कि जहां यह रहता है, वहां के वातावरण के अनुरूप ही अपना रंग कर लेता है।

इस वर्ग के कुछ प्राणी गोह भी हैं, जो अपेक्षाकृत भारी शरीर वाले होते हैं। ये विभिन्न प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ को तो पानी में रहना अच्छा लगता है और कुछ को स्थल पर, पर जल और थल दोनों पर ये समानरूप से सक्रिय रहते हैं। नाक के भीतर की नली इन जीवों की काफी फैली होती है, जिसके कारण ये काफी समय के लिए पर्याप्त वायु नाक में रोक कर पानी में डुबकी मार जाते हैं। थल पर रहने वाले गोह के शरीर की बनावट चपटी और जल में रहने वाले गोह की बनावट गोल-सी होती है। गोह की गर्दन लम्बी, अंग मजबूत और सर पर शल्क होते हैं। जिह्वा सांप की-सी चिकनी, लम्बी और दुहरी, आंख की पुतली गोल और पलकें मोटी होती हैं। क्रोधित होने पर गोह पूंछ और पंजों का प्रहार करता है तथा दांतों से भी काटता है। गोह मांसाहारी होता है और अंडे, सांप, मेंढक, चिड़ियां खाता है।

गोधा वर्ग के प्राणियों में से अनेक पेड़ों पर रहते हैं, अनेक पानी में रहते हैं, तथापि अनेक सूखे पर रहते हैं। सूखे में जमीन पर रहने वालों का शरीर ऊपर से चपटा होता है और पेड़ पर रहने वालों का दोनों ओर से पिचका-सा होता है। पानी वालों के शरीर गोल बनावट के होते हैं। इस वर्ग के प्राणियों की खाल सांप की खाल की-सी होती है, पर सांप की तरह इन जीवों की खाल पूरी केंचुली की तरह नहीं उतरती, वरन टुकड़ों में उतरती है।

इस वर्ग के प्राणी जहरीले नहीं होते, सिवाय एक प्रकार के जीव के, जो भारत में नहीं होता। भारत में गोह के बच्चे को विषखपरा कहते हैं और भ्रमवश उसे जहरीला बता देते हैं। विषखपरों की जिह्वा सांप की-सी बीच में चिरी होती है, पर गोधा वर्ग के प्राणियों का वर्गीकरण उनकी जिह्वा को ही आधार बना कर किया गया है।

गोधा वर्ग के जीवों के दांत दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के दांत तो जबड़े की हड्डी के भीतर की तरफ को होते हैं और दूसरी प्रकार के दांत जबड़े के सामने के भाग में होते हैं। किन्हीं जीवों की जिह्वा कोमल होती है तो किन्हीं की खुरखुरी, परन्तु पानी पीने का तरीका सबका एक-सा होता है और जीभ बाहर निकाल-निकाल कर चाट-चाट कर पानी पीते हैं। इनकी जिह्वा में स्पर्श ज्ञान होता है और अपनी जीभ से छूकर ही ये जीव अपने अंडे आदि पहचान लेते हैं। गोधा वर्ग के प्राणियों की आंखों की बनावट भी एक विशेष प्रकार की होती है और उन पर एक पारदर्शी झिल्ली-सी रहती है, जिसके भीतर पुतलियां घूमती रहती हैं।

गोधा वर्ग के प्राणियों में अधिकांश जीव अंडे ही देते हैं, केवल बहुत थोड़े-से ही जीव ऐसे हैं जो बच्चे देते हैं। अंडों में से निकलते समय बच्चों की थूथन पर

एक तेज दांत होता है। इस विषय में मतभेद है कि अंडे से बाहर बच्चा, थूथन के दांत डिम्ब दंत से अंडा तोड़ कर आता है या पंजों से अंडा तोड़ कर आता है। बच्चों का रंग खूब गहरा चमकदार होता है, जो बड़ी उमर पाकर बदरंग हो जाता है। जोड़ा बनाने के दिनों में रंग फिर चमकदार हो जाता है, जिसमें से नर का रंग तो और भी अधिक सुन्दर हो जाता है।

एक बार गिर जाने पर पूंछ फिर निकल आती है। पूंछ जब भी गिरती है तब कभी भी बीच में टूट कर नहीं गिरती। सदा जड़ से गिरती है, क्योंकि जड़ पर बहुत कोमल हड्डी जुड़ी रहती है। दूसरी पूंछ पहली जैसी गड़रियोंदार न होकर चिकनी होती है। अब रही इनके भोजन की बात, सो कोई एक प्रकार का भोजन इस वर्ग के जीव नहीं करते। जो शाकाहारी हैं, वे सड़ी पत्तियां, नरम कल्ले और फल आदि खाते हैं, पर अधिकांश मांसाहारी हैं, जो मेंढक, कीड़े-मकोड़े, मछली, अंडे सब खा जाते हैं।

इस वर्ग के प्राणियों का व्यापारिक और आर्थिक उपयोग भी हमारे लिए कम नहीं है, क्योंकि सुन्दर चौखानेदार चमड़ा, छोटे बैग और अन्य विभिन्न प्रकार की चीजों के लिए बड़ा कीमती तो होता ही है, साथ ही साथ मजबूत भी होता है। विदेशों में इनकी खालों की बड़ी मांग रहती है। सबसे अधिक मांग गोह की खाल की होती है, क्योंकि वह बड़ी होती है।

इस वर्ग को छः मुख्य वंशों में बांटा गया है :—

1. छिपकली वंश (Family Geekkonidae)
2. कोतरी वंश (Family Scincidae)
3. बम्हनी वंश (Family Laceridae)
4. गोह वंश (Family Veramidae)
5. गिरगिट वंश (Family Agamidae)
6. बहुरूपी वंश (Family chamaeliontidae)

—:०:—

• छिपकली वंश

गोधा वर्ग के इस वंश में संसार की समस्त प्रकारों की छिपकलियां आती हैं। छिपकलियां संसार के सब गरम देशों में पाई जाती हैं। इस वंश के जीवों के आकार छोटे, खाल कोमल और आंखों पर पारदर्शी झिल्ली होती है। पैरों के नीचे का भाग कोमल गद्दी जैसा होता है, जो दीवार पर एकदम चिपक जाता है और नीचे की हवा निकल जाती है। इनकी पूंछ बड़ी नाजुक होती है और तनिक से धक्के या झटके से टूट जाती है, पर फिर दुबारा निकल आती है। इस वंश के कुछ प्राणी तो गूंगे होते हैं, पर कुछ हलकी चिट-चिट की आवाज करते हैं। इस वंश के देखने में गंदे घिनौने प्राणी हमारे लिए बड़े उपयोगी हैं, क्योंकि वे कीड़ों-मकोड़ों, पतंगों, मक्खियों, झींगुरों आदि को खाते रहते हैं और हमारे घरों को

साफ करते रहते हैं। इस वंश के सब प्राणी अंडज होते हैं और एक बार में मादा दो अंडे कहीं किसी छिपाव के स्थान में दे देती है। भारत में इनकी 70 जातियों का अब तक पता चला है, पर नीचे गर्मियों में दिखाई पड़ने वाली घरों में रहने वाली छिपकली का वर्णन दिया जाता है :—

122–छिपकली (House Lizard)

भारत में छिपकलियों की 70 जातियां हैं, पर यह छिपकली घरों में दीवारों पर दिखाई पड़ने वाली छिपकली है। भारत में यह सब जगह भरी पड़ी है। इसका ऊपर का रंग हलका भूरा या पिलाई लिए हुए होता है, जिस पर चकत्ते-से पड़े होते हैं। आंख के दोनों ओर गहरी धारी सी होती है। पेट का रंग गंदा सफेद होता है। इसका सिर गोलाई लिए हुए, थूथन लम्बी, माथा दबा हुआ और शारीरिक बनावट सुडौल होती है। पूंछ गोलाई लिए हुए चपटी होती है, तथापि नर की जांघों के पास दाने और छोटे-छोटे छेद होते हैं।

छिपकलियां गोल कड़े छिलके वाले दो अंडे देती हैं। दिन में भी ये शिकार करती हैं, पर स्वभावतः निशिचर हैं और शीत-निन्द्रा में भी रहती हैं। काली, भूरी कई रंगों की होने पर भी सब छिपकलियों के स्वभाव और भोजन एक से ही होते हैं।

—:o:—

कोतरी वंश

कोतरी वंश के अनेक प्राणी भारत में पाए जाते हैं और छिपकलियों की अपेक्षा इनमें कुछ विशेष बातें हैं। किसी के तो पैर छोटे हैं, पर किसी-किसी जीव के पैरों के केवल निशान मात्र होते हैं। इस वंश के जीवों की पीठ पर शल्कों के नीचे कड़ी प्लेटें सी होती हैं। कोतरी वंश के जीवों की पूंछ चिकनी होती है और जिह्वा बम्हनी की तरह सांप की सी होती है। इसके प्राणी भी कीड़े-मकोड़े खाते हैं और सबसे विचित्र बात यह है कि भारतवर्ष की कोतरी अंडे न देकर बच्चे देती है।

123–कोतरी (Skink)

कोतरी भी हमारे देश में सब जगह पाई जाती है और बम्हनी से बहुत मिलती जुलती है। मय पूंछ के कोतरी की लम्बाई 12 इंच होती है। कोतरी का सुडौल शरीर गोल मोटी सी बनावट का होता है।

कोतरी के भूरे या जैतूनी रंग पर सिलसिलेदार काली खड़ी धारियां होती हैं। बगलें गहरे रंग की होती हैं और जोड़ा बांधने के दिनों में आंखों के पास से दोनों ओर लाल धारी सी दिखाई पड़ने लगती है, पर कोतरी अंडे नहीं देती। इसके अंडे पेट में ही तैयार होकर फूट जाते हैं, और वह बच्चे देती है। कोतरी कीड़े-मकोड़े खाती है।

—:o:—

• बम्हनी वंश

सुन्दर शरीर वाले बम्हनी वंश की भी 20—25 जातियां भारतवर्ष में पाई जाती हैं। इस वंश के जीवों की जीभें सांप की तरह बीच से चिरी होती हैं। इसलिए इन्हें लोग जहरीला समझते हैं, पर किसी के भी जहर नहीं होता। इस वंश के जीव निरीह होते हैं।

इस वंश के जीवों के सिर, धड़ और पूंछ एक ही में मिले से रहते हैं और पीठ चिकनी तथा रंगीन होती है। पैर बहुत छोटे हैं। कीड़े-मकोड़े ही इनके भोजन हैं।

124—बम्हनी

बम्हनी भारत में उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश तथा पंजाब में पाई जाती है। बम्हनी को लोग वामनी भी कह देते हैं और कहते हैं कि यह सब प्रकारों के सापों की ब्राह्मण है, इसलिए इसे बड़ा पवित्र मान कर कोई भी हिन्दू नहीं मारता है।

बम्हनी छिपकली से छोटी होती है, पर सर चपटा होता है। दोनों ओर के जुड़े पलकों पर पारदर्शी झिल्ली होती है। बम्हनी सुन्दर रंग और चपटे शरीरवाली, भूरी सी होती है, जैसे तांबे का सा रंग हो। दोनों ओर काले हाशिए वाली सुनहरी लकीरें होती हैं। भीतरवाली लकीरें भौहों के ऊपर से पूंछ तक होती हैं। लकीरों के बीच में काली चित्तियां होती हैं।

———:०:———

• गोह वंश

इस वंश के प्राणी बहुत लम्बे आकार के होते हैं। किन्हीं-किन्हीं जीवों की लम्बाई तो 10 फुट तक होती है। गोह वंश के प्राणी कुछ तो पानी में रहते हैं और कुछ स्थल पर। इन प्राणियों की पूंछ बड़ी मजबूत होती है। गोहों की जीभें भी सांप की तरह होती हैं, पर ये जीव जहरीले बिल्कुल नहीं होते, परन्तु जब ये प्राणी नाराज हो जाते हैं, तब अपनी पूंछ से बड़ा से बड़ा भयंकर हमला करते हैं।

इस वंश के प्राणियों के रंगों में भेद होता है। कोई चित्तीदार होते हैं तो कोई भूरे से। भारतवर्ष में गोहों की छः जातियां पाई जाती हैं, परन्तु हम नीचे तीन प्रमुख का ही वर्णन करेंगे। स्वभाव सब गोहों के एक से ही होते हैं। गोह वंश के सब प्राणी मांसाहारी होते हैं और अंडे देते हैं। गोहों के बच्चों को ही भारत में विषखपरा कहते हैं। हमारे देश की तीन प्रमुख गोहें हैं :—

1—साधारण गोह 2—चंदन गोह 3—कबरी गोह।

125—साधारण गोह

साधारण गोह सारे भारत में पाई जाती है। इसकी लम्बाई 5—6 फुट होती है। इसके पैर बहुत मजबूत होते हैं। गोह के दांत नुकीले, थूथन ऊपर को उठा और पूंछ के

ऊपरी भाग में कंगूरे से होते हैं। कान के छेद तिरछे होते हैं, पैरों की अंगुलियां मजबूत और लम्बी होती हैं। पीठ का रंग पिलछौंह भूरा होता है, जिस पर काली चित्तियां होती हैं।



चंदन गोह

गाल पर एक काली धारी होती है। गोह की गरदन लम्बी और आगे की ओर बढ़ी हुई होती है। क्रोधित होने पर वह पूंछ से बड़ी जोर से चोट करती है और काट भी खाती है।

गोह के रहने की जगह कोई सूखी जगह, छेद आदि हैं। मांस भक्षी गोह की खुराक छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तु और अंडे आदि हैं। मादा गोह 25-30 अंडे सितम्बर महीने में देती है। कंजर लोग गोह का मांस बड़े स्वाद से खाते हैं।

कहा जाता है कि चोर और सेना के कुछ विशेष आदमी इसे इसलिए रखते थे, ताकि इसकी कमर में रस्सा बांध कर दीवार के ऊपर फेंक दें और जब यह पंजों से दीवार पकड़ ले, तब रस्से के सहारे ऊपर चढ़ जाएं। कहते हैं कि एक किले को जीतने में शिवाजी की मदद गोह ने इसी तरह की थी। गोह किसानों की तो बड़ी हितैषी है, क्योंकि यह मेढक, चूहे और कीड़े-मकोड़े खाती है।

उत्तर भारत में इसके बच्चे को विषखपरा कहते हैं। उसके विषय में किंवदन्ती है कि वह सांप से भी अधिक जहरीला होता है। कहते हैं कि कि जब वह काट ले तब फौरन पेशाब से स्नान करना चाहिए, अन्यथा अगर उसने पहले पेशाब में स्नान कर लिया, तो काटे गए व्यक्ति की खैर नहीं, पर लेखक ने लोगों को दिखाने को गोह से अपने को कटवाया है। भारत में कोई भी विषैली गोह नहीं होती। गोह के बच्चे भी गोह की तरह ही निर्विष होते हैं। गोह का चमड़ा बड़ा मुलायम और मूल्यवान होता है। उसके मनीबेग, जूते आदि बनते हैं और उन्हीं की खातिर गोह बरसात में बहुत मारी जाती हैं। विदेशों में इसकी खाल की बहुत मांग है।

126–चंदन गोह

चंदन गोह उत्तर भारत में ही पाई जाती है और बरसात आने पर उसका रंग पीला-सा हो जाता है। इसलिए उसका नाम चंदन गोह है। वारिश के बाद चंदन गोह का रंग मटमैला-सा हो जाता है। चंदन गोह की लम्बाई 4-5 फुट होती है और शरीर का ऊपरी भाग पिलछौंह होता है, जिस पर आड़ी-आड़ी लकीर होती हैं। पूंछ और पीठ पर भूरी और लालपन लिए पटरियां सी दिखाई देती हैं। बरसात में जब रंग पीला हो जाता है, तव ये पटरियां खूब चमकदार दिखाई पड़ती हैं। चंदन गोह की थूथन उभरी और छोटी होती है।

रहन-सहन, खुराक और स्वभाव में ये गोह भी साधारण गोह के समान होती हैं।

127–कबरी गोह

कबरी गोह उत्तर भारत में बंगाल के आसपास पाई जाती है, क्योंकि पानी और दल-दल इसे बहुत पसंद है। हमारे देश की सबसे लम्बी गोह यही है। इसकी लम्बाई 7 फुट या इससे अधिक होती है। इस गोह के दांत नुकीले, थूथन का सिरा चपटा और पूंछ चपटी होती है। सिर दबा हुआ सा और अंगुलियां साधारण लम्बाई की होती हैं।

कबरी गोह के शरीर का रंग भूरा या कालापन लिए होता है, जिस पर पीले रंग की बुंदकी सी होती है। आंख और गरदन तक पीले हाशिए की पट्टी होती है। नीचे का भाग पीला होता है। मादा गोह बरसात के प्रारंभ में किसी विल या छेद में 15-20 अंडे देती है। छोटे वच्चों के शरीर पर बिंदियां, चित्तियां और छल्ले बहुत चमकदार और स्पष्ट होते हैं। लोग कबरी गोह के अंडे तो बहुत शौक से खाते हैं, पर इसका मांस भारतवर्ष में नहीं खाया जाता।

यह गोह अपना काफी समय पानी के भीतर बिता सकती है। वह पेड़ों पर भी चढ़ सकती है और वहां भी काफी समय विता सकती है। पानी में रहने के कारण ये गोहें विशेष तौर पर कीड़े-मकोड़े मछली, मेंढक, केंकड़े खाती हैं। इसकी सब आदतें साधारण गोह के समान ही होती हैं।

——:o:——

● गिरगिट वंश

गिरगिट वंश के हमारे देश में 70 प्राणी हैं। इस वंश के कुछ प्राणी पेड़ों पर रहते हैं और कुछ जमीन पर। जमीन पर रहने वाले जीवों का शरीर ऊपर से चपटा रहता है, जबकि पेड़ों पर रहने वाले जीवों का शरीर दोनों ओर से दबा रहता है। इस वंश के अधिकांश प्राणी रंग बदलते हैं। जोड़ा बांधने के दिनों में तो नरों के रंग बहुत लाल हो जाते हैं।

भारतीय गिरगिटों के सिर पर थोड़ा उभार-सा होता है, जो गरदन तक चला जाता है। सिर और पीठ पर शल्क होते हैं, जो एक के ऊपर एक होते चले जाते हैं। नरों के सिर पर मुकुट सा और गले में एक थैली सी लटकती है।

इस वंश के प्राणी अपनी इच्छानुसार रंग बदलते हैं। इस वंश के प्राणी अपने आसपास की वस्तुओं के अनुरूप रंग नहीं बदलते हैं। धूप और गर्मी के कारण इनके रंगों में परिवर्तन होता है।

गिरगिट वंश के जीवों के शरीर और पैर बहुत मजबूत होते हैं। पंछ भी बहुत लम्बी और मजबूत होती है। जीभ मोटी होती है। इस वंश के कुछ जीव फलाहारी हैं और कुछ सर्व-भक्षी हैं। इनका भोजन कीड़े-मकोड़े हैं। इस वंश के प्राणी अंडे देते हैं।

128–गिरगिट (Garden Lizard)

गिरगिट हमारे देश का एक प्रसिद्ध जीव है। इसको केटिया, गिदगिदा या गिद्दा भी कहते हैं। हमारे देश में यह पेड़ों और झाड़ियों पर रहता है, अतः सब



इससे परिचित हैं। भारत में यह सब जगह पाया जाता है। गिरगिट का सिर बड़ा और ऊपर को उठा होता है और शरीर की बनावट दबी-दबी सी होती है। इसकी पीठ के बीच में उठे-उठे कांटों की संख्या 35 से 47 तक होती है। गिरगिट की लम्बी पूंछ उसके बाकी के शरीर की लम्बाई से दूनी से भी अधिक होती है। थूथन छोटी और नुकीली होती है और कान के छेद खुले रहते हैं। गिरगिट का रंग पिलछौंह होता है, और आड़ी धारियां तथा चित्तियां होती हैं। नरों में ये धारियां हलकी सी होती हैं। पर मादा और बच्चों में खूब चमकती हैं। अपनी एक फुट लम्बी पूंछ को मिला कर गिरगिट की कुल लम्बाई 16-20 इंच तक होती है। गिरगिट कीड़े-मकोड़े खाता है और उनकी ताक में लगा पेड़ों पर बैठा रहता है। कीड़े-मकोड़े इसकी विशेष खुराक हैं, पर झींगुर और बिच्छू तक को गिरगिट नहीं छोड़ता। इसके बारे में यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि इसकी जीभ 12-13 इंच लम्बी होती है और नोंक पर एक चम्मच-सा होता है, जिस पर लसदार पदार्थ होता है। इसीलिए यह अपने शिकार को बड़ी दूर से बिजली की गति से पकड़ता है और शिकार चिपका चला आता है। हमने कई बार बड़े-बड़े बिच्छू

डोरे से बांध कर बबूल पर छोड़ दिए। गिरगिट आया और बिच्छू से सामने बैठ कर इस तेजी से उसे पकड़ा कि सबका-सब बिच्छू उसके मुंह में चला गया, केवल डंक और दो गड़ेरे बाहर रह गए। धीरे-धीरे उसने बिच्छू निगलना शुरू कर दिया। आधे घंटे में वह सारा बिच्छू खा गया और डंक कतर कर फेंक दिया। केवल एक बिच्छू ही एक बार डंक मार सका और डंक के आघात से तिलमिला कर गिरगिट भाग गया।

गर्मियों में गिरगिट सिर की ओर काला और लाल हो जाता है और सिर हिलाने से उसकी गर्मी और बढ़ जाती है। नर ही रंग बदलता है और जोड़ा बांधने के दिनों में मादा को रिझाने के लिए लाल पोशाक पहनना उसके लिए बड़े काम का होता है। जब गिरगिट बहुत लाल हो जाते हैं तब गांव वाले जान जाते हैं कि बारिश आने वाली है।

मादा गिरगिट अंडे देती है और सफेद गोल अंडों को जमीन में गाड़ देती है, सेती नहीं है। गिरगिट पानी में भी खूब तैर लेता है।

129—सांडा (Spiny tailed Lizard)

सांडा की तरह के जीव भारतवर्ष में इसके अतिरिक्त और नहीं पाए जाते। सांडा को ऊसर की सी जमीन अधिक पसन्द होती है, इसलिए पश्चिमी उत्तर प्रदेश और भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्रों में वह मिलता है।

उसका सिर चपटा, थूथन चौड़े और सिर के शल्क शरीर के शल्कों से बड़े होते हैं। पैर छोटे और पुष्ट होते हैं। पिछले पैरों पर छोटे-छोटे कांटे से होते हैं। सांडा की पीठ का रंग बालू के रंग का सा होता है और गंहरे चकत्ते पड़े होते हैं। जांघों में भी चकत्ते होते हैं। नीचे का रंग सफेदीपन लिए हुए होता है। मजबूत पूंछ पर कांटे-कांटे होते हैं, जिसे मार कर सांडा अपनी सुरक्षा में सफल होता है।

मय पूंछ के सांडा की लम्बाई एक फुट होती है। सांडा जमीन में रहता है और शाकाहारी होता है।

•बहुरूपी वंश

इस वंश में अब तक के जीवों की अपेक्षा विचित्र प्रकार के ही जीव पाए जाते हैं। अपने अनोखेपन के कारण ही इनको बहुरूपी कहा गया है। क्या शिकार करने का ढंग, क्या पैर की बनावट सब ही तो निराली बातें हैं। इस वंश के जीवों की लम्बी पूंछ, सिर पर मुकुट और लम्बी जीभ होती है। ये प्राणी पेड़ों पर चुपचाप बैठे रहते हैं और लम्बी जिह्वा से कीड़े को उसमें चिपका कर सटक जाते हैं।

बहुरूपी वंश के जीव अपना रंग अपनी इच्छानुसार बदलते हैं और मौसम तथा धूप के तापमान और पास-पड़ोस के रंग के अनुरूप अपना रंग कर लेते हैं।

बहुरूपी वंश में एक अकेला बहुरूपी ही है।

130–बहुरूपी (Chamaeleon)

इसको बहुरूपी नाम जल्दी-जल्दी रंग बदलने के कारण मिला है। देखते ही देखते कभी लाल मालूम पड़ने लगता है तो कभी एकदम हरा हो जाता है और फिर फौरन ही पीला मालूम पड़ने लगता है। इसका रंग बदलने का यह कारण है कि इसके शरीर में रंगों के कण होते हैं, जिन्हें वर्णकोश कहते हैं। ये वर्णकोश जब ऊपरी खाल में फैल जाते हैं, तब उसी तरह का रंग दिखाई पड़ने लगता है। ठीक उसी तरह जैसे किसी पर क्रोधित होने से मनुष्य का चेहरा लाल हो जाता है या डर जाने पर सफेद हो जाता है।

भारत में बहुरूपी, गंगा के दक्षिणी क्षेत्रों के जंगलों में मिलता है। यह बिल्कुल जंगल का रहने वाला है।

बहुरूपी की पूंछ, सिर और बदन की लम्बाई से लम्बी होती है। शरीर के ऊपर दाने और पीठ पर दांतेदार धारी होती है, गले पर भी कांटेदार उभार होता है। माथे पर एक उठी हुई कलंगी सी हड्डी होती है और दोनों आंखों के बीच का भाग उभरा होता है। रही रंग की बात, सो वह तो ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता, क्योंकि वह आसपास के वातावरण के अनुकूल रंग बना कर रहता है। इसके पैरों की अंगुलियां दो भागों में विभाजित रहती हैं और खाल से जुड़ी रहती हैं। बहुरूपी की बड़ी-बड़ी आंखों पर दाने होते हैं और पलक मोटे होते हैं। सबसे अनोखी बात है इसकी जीभ की, जो बहुत लम्बी, गोल मुग्दर की सी होती है, जिसमें लगे चिपचिपे पदार्थ से बहुरूपी कीड़ों को बैठे-बैठे ही मजे से खाता रहता है।

मय 8 इंच लम्बी पूंछ के बहुरूपी की कुल लम्बाई लगभग 15 इंच होती है और इसकी लम्बी पूंछ ही इसे पेड़ पर चढ़ने में सहायता देती है। पूंछ से पेड़ की शाखा पकड़ कर बहुरूपी ऊपर चढ़ता है।

बहुरूपी आलसी और निरीह प्राणी है।

—:o:—

16–सर्प वर्ग (Order Ophidia)

सर्प वर्ग उरगंम समुदाय (Class Raptilia) के अंतर्गत आता है। इस वर्ग को अच्छी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके समुदाय की सब बातें अच्छी तरह समझ ली जाएं। उरंगम समुदाय के सब जन्तु पृथ्वी पर रेंग कर चलते हैं। इनकी भुजाएं रेंगने के अनुकूल बनी होती हैं और कभी-कभी तो बिल्कुल ही नहीं होतीं—जैसे सांप। उरगंम समुदाय के जन्तुओं का शरीर शल्कों से पूरित होता है, अतः उनकी खाल कड़ी होती है—जैसे कछुआ। इस समुदाय के जीवों की त्वचा में त्वचीय ग्रंथियां नहीं होतीं, इसलिए उनकी त्वचा बिल्कुल सूखी रहती

है। इस समुदाय के सब जीव अंडज होते हैं और श्वसन क्रिया फेंफड़ों से करते हैं।



सर्प वर्ग कई वंशों, उपवंशों, जातियों और उपजातियों में विभाजित है। साथ ही यह बात बड़ी रोचक है कि ध्रुवी प्रदेशों को ोड़ कर सर्प वर्ग किसी न किसी वंश, उपवंश, जाति या उपजाति के रूप में विश्व भर में पाया जाता है। प्राणि-शास्त्र के अनुसार 1,700 प्रकार के सांप विश्व भर में पाए जाते हैं। इनमें 300 प्रकार के सांप जहरीले होते हैं, अतः खतरनाक माने जाते हैं।

उरंगम समुदाय में ोने के कारण सर्प वर्ग की बहुत सी बातें अन्य उरंगम जन्तुओं से मिलती-जुलती हैं, पर सर्प वर्ग बनावट की दृष्टि से छिपकली के अधिक निकट है। बड़ा भारी अंतर यह है कि सांप के टांगें नहीं होतीं और उसके सिर का ाग छिपकली ी भांति गरदन से अलग प्रतीत नहीं होता। सर्प वर्ग का शरीर पूंछ की ोर धीरे-धीरे पतला होता जाता है। पर बिना टांगों वाली छिपकलियां भी होती हैं और लोग भूल से उन्हें सांप समझ बैठते हैं, अतः यह आवश्यक है कि इनके भेद को समझ लिया जाय। छिपकलियों और सांपों में मुख्य भेद यह है कि सांपों के नीचे के जबड़ों में कड़े जोड़ का अभाव होता है और जबड़े ठोड़ी में एक लचीले बंध से जुड़े होते हैं। जबड़े के दो अर्धभागों के इस प्रकार अलग रहने के कारण सांप को यह सुविधा होती है कि वह अपना मुंह बेहद फैला सकता है। फलस्वरूप सांप अपने जबड़े के अनुपात से बड़ी चीजों तक को निगलने की क्षमता रखता है। जबड़े की इस बनावट के अतिरिक्त अधिकांश सांपों में एक और बात होती है, जिसके कारण इनका मुंह और अधिक खुल जाता है। वह बात यह है कि सांप के ऊपर के जबड़े की हड्डियां और तालू भी गतिशील होते हैं। भुजाहीन छिपकलियों और सांपों में अन्य भेद भी होते हैं। सांपों की जीभ एक प्रकार की म्यान में खिंच कर चली जाती है और सांपों की रीढ़ में अतिरिक्त जोड़ भी होते हैं तथा कानों के चिह्न सांपों में नहीं होते।

छिपकलियों की आंखों पर पलक होते हैं, पर सांपों की आंखों पर पलकें नहीं होतीं। सांप की आंखों के ऊपर घड़ी के कांच का सा शीशा चढ़ा रहता है। सांप साल में कई बार केंचुली बदलता है। केंचुली बदलते समय आंखों के ऊपर का भाग भी केंचुली में आ जाता है। केंचुली को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। सांप के सिर पर समांशी फलक (Symmetrical Shield) होते हैं। विभिन्न प्रकार के सांपों में इन फलकों के आकार में भेद होता है। अंधे सांपों के सारे शरीर पर एक से शल्क होते हैं और समुद्री सांपों के पेट पर भी पीठ के समान ही शल्क होते हैं।

सांप की पसलियों और शरीर की बनावट ऐसी होती है कि जब सांप के शरीर का कोई भाग जमीन को पकड़ लेता है तब उसका पिछला भाग सिकुड़ कर बल खाता है और आगे बढ़ जाता है, पर बिल्कुल चिकने स्थान पर सांप

गतिशील नहीं हो सकता, क्योंकि सांप बगलू (Lateral) गति से ही गतिशील होता है। सांप का आकार लम्बा होता है, इसलिये उसके भीतरी अंगों की बनावट भी लम्बोतरी होती है। अतः सांप का एक ही फेफड़ा प्रायः विकसित होता है।

सांपों के दांत अलग-अलग दंतोलूख में गड़े नहीं होते। साधारण निर्विष सांपों के ऊपरी जबड़े में दांतों की दो पक्तियां होती हैं और उनके दांत पतले, नुकीले और छोटे होते हैं, जिनमें से सबसे भीतरी दांत तालू की हड्डी में जुड़े होते हैं। नीचे के जबड़े में दांतों की एक-एक पंक्ति दोनों ओर होती है। कुछ सांपों के ऊपरी जबड़े के अगले और पीछे के दांत अधिक बड़े होते हैं और वे नलिका के समान होते हैं, इस प्रकार के दांत वाले सांप ही विषैले होते हैं। पर बहुत ही विषैले सांपों के दांत कुछ विशेष प्रकार के होते हैं। अति विषैले सांपों के ऊपर के जबड़े में दो बड़े-बड़े दांत होते हैं, जो प्रायः तालू में जबड़े से सटे समतल पड़े रहते हैं और सांप के मुंह खोलते ही आड़े हो जाते हैं। इस प्रकार अति विषैले सांपों के ये दांत नलिका के समान डाक्टर की सिरेंज जैसे होते हैं, पर कुछ अन्य साधारण विषैले सांपों में ये दांत खोखले तो होते हैं, पर परिखायें सी होती हैं, जिससे विष की थैली से एकाएक विष न आकर धीरे-धीरे रिस-रिस कर आता है। विषैले सांपों के ऊपरी जबड़े में दोनों ओर आंख के पीछे और नीचे एक-एक विष की थैली होती है। किन्हीं-किन्हीं सांपों में तो ये विष की ग्रंथियां इतनी विकसित होती हैं कि वे शरीर की ओर काफी लम्बी बढ़ी चली जाती हैं। विष-ग्रंथि के ऊपर मांसपेशी होती है, जो आवश्यकता पड़ने पर खिच कर ग्रंथि से सटे खोखले दांत में विष का स्राव कराने में सहायक होती है। जब सांप काटने के लिए मुंह खोलता है तब मांसपेशी सक्रिय हो उठती है और दांत गड़ते ही विष का स्राव होने लगता है। विष के निकालने में सांप को काफी शक्ति लगानी पड़ती है और खोखले दांत के अंतिम सिरे में कभी-कभी पिचकारी की धार के समान जहर निकलता दिखाई देता है। अपेक्षाकृत कम जहरीले सांपों के कीले जबड़ा बंद होने पर समतल नहीं रखे जाते, क्योंकि उनके कीले छोटे होते हैं और आड़े ही रहते हैं। विषैले दांत या कीले सांप की एक शक्ति हैं, क्योंकि वह उनसे अपने शिकार को पकड़ कर मार देता है। मारने के बाद ही वह शिकार को निगलता है। विषैले सांपों को अपनी उस मारने की शक्ति का पता रहता है। अधिक विकसित अति विषैले सांपों के दांत कभी-कभी क्रोध से हमला करने में टूट भी जाते हैं, पर बड़े कीलों के पीछे विकास की विभिन्न दशाओं में अन्य अनेक दांत होते हैं, जो बड़े कीलों का स्थान ले लेते हैं।

यों तो विषैले और निर्विष सांपों को देखने से ही पहचान लेने के कुछ ढंग हैं, पर ऊपरी कसौटी पूर्णतया ठीक नहीं है, क्योंकि विषैले और निर्विष सांपों की कभी-कभी अनेक बाह्य बातें मिल जाती हैं। कोई सांप विषैला है या नहीं इसकी ठीक पहचान तो उसके दांतों, कीलों और जबड़ों की जांच से ही होती है। वैसे साधारण काम चलाऊ ज्ञान के लिए सूरत शक्ल से सांपों को पहचाना जा सकता है। उदाहरण के लिए काला सांप फन से, करैत धब्बों से और धोबिया अपने

रंग और तिकोने सिर से पहचान में आ जाता है। सांपों की घिसटन से भी विषैले सांपों की पहचान होती है, क्योंकि निर्विष सांपों की घिसटन अपेक्षाकृत सीधी होती है, जबकि विषैले सांपों की घिसटन गुंजलकदार होती है, पर पहचान का यह कोई वैज्ञानिक ढंग नहीं है। जो प्रकृति का अध्ययन करते हैं और सांपों के स्वभाव को साधारण तौर से समझते हैं वे खूब जानते हैं कि जब निर्विष सांप काटते हैं तब उनके ऊपर के दांतों की दोनों पंक्तियों के चिह्न अंकित हो जाते हैं और जब विषैले सांप काटते हैं तो काटने के स्थान पर आगे की ओर एक या दोनों कीलों के बड़े चिह्न होते हैं और अन्य दांतों की एक ही पंक्ति के चिह्न होते हैं।

इस वर्ग की शरीर-रचना में चवाने या टुकड़े करने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं है, इसलिए वे जो कुछ खाते हैं उसे समूचा ही निगलते हैं और अधिकतर जीवित प्राणियों को ही निगल लेते हैं। चूंकि सांपों के छाती की हड्डी नहीं होती इसलिए उनकी गरदन और पेट भी आवश्यकता के अनुसार फैल जाते हैं। शिकार को निगलने या खाने में भी सांपों को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। जब किसी शिकार को ये पकड़ लेते हैं तव मुड़े दांतों के कारण वह उनमें फंस जाता है और बाहर नहीं आ सकता। शिकार को निगल जाना भी बड़ा कष्टप्रद होता है, पर पाचन-क्रिया सांपों की बड़ी प्रवल होती है और बिना खाए भी वे बड़ी लम्बी अवधि तक जीवित रहते हैं। कुछ सांप तो साल में तीन चार मेंढकों से ही गुजर कर लेते हैं। पेड़ पर रहने वाले सांप पतले और लम्बे होते हैं और प्रायः अंडे खाते हैं। वैसे जमीन पर रहने वाले सांप भी बड़ी आसानी से पेड़ पर चढ़ जाते हैं। अजगर तो पेड़ पर से बंदर तक को पकड़ लेता है और गुंजलकों में दबा कर पसली तोड़ कर निगल लेता है। एक वार धौलखण्ड डिवीजन में लेखक ने एक अजगर मरा पड़ा देखा और पेट में उसके लकड़ियां सी भरी दिखाई देती थीं। मार कर पेट चीरा गया तो वे लकड़ियां सी काकड़ के सींग थे। समुद्री सांप जो जहरीला होता है, अपनी पूंछ की बनावट के कारण खुश्की पर नहीं आता।

अंधे सांप जमीन के भीतर ही रहते हैं और यदा-कदा ही ऊपर आते हैं। सांप शीतकाल में शीत निद्रा में सोते हैं। गरम क्षेत्रों में भी जहां शीत भी काफी पड़ती है—जैसे पंजाव, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में शीतकाल में लकड़ी के झुरमुटों या गहरे छेदों में सांप सो जाते हैं और ग्रीष्मकाल के आगमन पर बड़े कमजोर होकर निकलते हैं। इन दिनों जहरीले सांप बड़े भयानक होते हैं। जहां ठंड नहीं पड़ती वहां पर तो सांप बारह महीने ही सक्रिय रहते हैं।

अधिकांश सांप लम्वोतरे अंडे देते हैं। सापिन उन अंडों को सेती नहीं है, वरन प्राकृतिक गरमी से ही वे सेए जाते हैं और बच्चे समय पर निकल आते हैं, पर अजगर की मादा स्वयं अंडे सेती है और वह अपने शरीर से वाह्य वातावरण में कुछ ऊंचा तापमान बना लेती है। तालावों और नदियों के पानी तथा समुद्र में रहने वाले सांपों के अंडे मादा के भीतर ही सेए जाते हैं। भीतर सेए जाने के वाद बच्चे बाहर निकल आते हैं।

सर्प वर्ग नौ बड़े वंशों में विभाजित है। इन नौ वंशों में से सात वंशों के सांप विषहीन होते हैं, अतः न तो उनके विष की ग्रंथि होती है और न विष-दंत ही होते हैं। इन सात वंशों में 287 प्रकार के सांप होते हैं। आठवां वंश अर्थात घोबिया (Viperidae) में 110 प्रकार के सांप मिलते हैं और ये सब विषैले होते हैं। नवें वंश में अन्य सब प्रकार के सांप होते हैं, जो प्रायः खुश्की पर दिखाई देते हैं। इनमें से 199 प्रकार के सांप तो निश्चित रूप से विषैले होते हैं। इसमें ही 55 प्रकार के समुद्री सांप भी शामिल हैं, जो सबके सब विषैले होते हैं।

यह नवां वंश (Colubridae) तीन भागों में विभाजित है। विभाजन का आधार यह है कि इन सांपों के ऊपरी जबड़े के दांत दंतोलूख (Grooved) में हैं या नहीं। अगर वे दंतोलूख में हैं तो जबड़े में आगे की ओर हैं या पीछे की ओर।

300 प्रकार के अन्य सांप ऐसे होते हैं, जिनकी राल में विषैले अंश होते हैं। इसलिए उनको थोड़ा विषैला कहा जा सकता है। उनके ऊपरी जबड़े में विकसित कीले नहीं होते, पर जबड़े के पिछले भाग में कुछ विकसित दांत होते हैं, जिनसे काट कर वे अपने शिकार को अचल और बेहोश कर देते हैं। मनुष्य के लिए ये सांप विघातक नहीं होते।

ऊपर बताया गया है कि विश्व में 1,700 प्रकार के सांप होते हैं, जिसमें से अकेले भारत में 330 प्रकार के सांप मिलते हैं। भारत में मनुष्य के लिए जो विघातक सांप हैं उनमें 29 प्रकार के समुद्री सांप हैं और 40 प्रकार के खुश्की के सांप हैं, जिनमें घोबिया (Viper) करैत, कोरल और काले सांप सम्मिलित हैं।

व्यवहारिक दृष्टि से सांपों के रहने के ढंगों के अनुसार उन्हें पांच प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:—

(1) बिलों में या जमीन के भीतर रहने वाले सांप—इनमें अंधे सांप और दुमुही इत्यादि आते हैं। ये सब विषहीन सांप होते हैं और मिट्टी के भीतर या बिलों में रहते हैं।

(2) वृक्ष सांप—ये सांप अपना अधिक समय पेड़ों और झाड़ियों में ही बिताते हैं। इनकी पूंछ शाखा को पकड़ने में बड़ी सहायक होती है। ये पतले, लगलगे और लम्बे होते हैं। वृक्ष सांपों की खुराक में छिपकलियां, अंडे और पेड़ों के मेंढक होते हैं। अधिकांश सांप प्रायः निर्विष होते हैं। वृक्ष सांपों में कोड़ा सांप और भूरे सांप ऐसे सांप हैं, जिनकी राल में तनिक सा जहर होता है, पर आदमी के लिए वह तनिक भी घातक नहीं होता।

(3) समुद्री सांप—ये सब सांप बहुत जहरीले होते हैं। उनकी पूंछ चपटी और बालों से दबी हुई होती है, जो तैरने में सहायक होती है। समुद्री सांपों के नथनें थूथन के ऊपर होते हैं। इन सांपों की खुराक समुद्री मछलियां हैं।

(4) **ताजे पानी के सांप**—इन सांपों की खुराक मछलियां और मेंढक हैं। इनके नथने थूथन के ऊपरी भाग के निकट होते हैं, ताकि जब वे पानी के भीतर हों तब भी सांस ले सकें। पनिहा सांप तालाबों, नदियों या उनके निकट पाए जाते हैं और निर्विष होने के कारण मनुष्यों के लिए बिल्कुल हानिकारक नहीं हैं।

(5) **खुश्की के सांप**—जिन सांपों को हम प्रायः देखते हैं, वे खुश्की के ही सांप होते हैं। वे जमीन पर या झाड़ियों में या बिलों में रहा करते हैं। स्वभावतः वे पानी में नहीं जाते और न पेड़ पर ही चढ़ते हैं, पर फिर भी वे पेड़ों पर आसानी से चढ़ जाते हैं और तैरते भी खूब हैं। खुश्की के सांपों में दोनों प्रकार के विषैले और विषहीन सांप होते हैं, उदाहरण के लिए—काला सांप, करैत और धोबिया जहरीले सांपों में हैं और धामिन तथा अजगर विषहीन सांपों के उदाहरण हैं। खुश्की के सांपों का सिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है और चूहे तथा गिलहरियां इनकी प्रिय खुराक होती है।

• विषैले सांप

भारत के मुख्य विषैले सांप हैं :

(1) **काला सांप** (Cobra)

(2) **करैत धोबिया** (Viper)

(3) **समुद्री सांप**

(4) **मूंगिया** (Coral Snakes)

काले सांपों के दो भेद हैं, एक तो नाग या काला सांप दूसरा नागराज। कोरल सांप भी, जो बड़े चमकीले रंग के होते हैं जहरीले होते हैं, क्योंकि इनके विषग्रंथि और विषदंत होते हैं, पर मनुष्य के लिए वे भयंकर रूप से घातक नहीं हैं। अतः कोरल सांपों के विस्तृत वर्णन की आवश्यकता यहां नहीं है।

करैत भयंकर रूप से विषैला होता है। करैत सांपों के दो मुख्य भेद हैं। एक तो कौड़िया करैत और दूसरा गंडदार करैत, जिसे काल गंडेश कहते हैं।

धोबिया सांप भी बड़े प्रसिद्ध सांप हैं। इन के मुख्य दो भाग हैं। एक तो गड्ढे वाले धोबिया और दूसरे गड्ढा रहित धोबिया। जिन सांपों की नाक और आंखों के बीच गड्ढा सा होता है वे गड्ढे वाले धोबिया विषैले होते हैं, पर मनुष्य के लिए उनका विष कम विघातक होता है। गड्ढारहित धोबिया वह है, जिसके गड्ढा नहीं होता और उसके दो मुख्य भेद हैं। एक तो 'रसल धोबिया' और दूसरा 'फुरसा धोबिया'। दोनों ही बड़े खतरनाक होते हैं।

समुद्री सांप सभी विषैले होते हैं और वे समुद्री तट पर या तट के समीप पाए जाते हैं। जहरीले होने पर भी वे काटते कम हैं।

मूंगिया सांप भी सब विषैले होते हैं।

(क) काले सांप

131—नाग (Indian Cobra)

विश्व भर में काले सांपों की दस उपजातियां होती हैं, जिनमें से सात तो अफ्रीका में ही पाई जाती हैं, एक फिलिपीन में मिलती है, शेष दो भारतवर्ष में होती हैं। काले सांपों की भारत की इन दो उपजातियों के प्रकारों को (1) **नाग (काला सांप) और** (2) **नागराज** कहते हैं।

नाग या काले सांप को सभी लोग जानते हैं और हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसने सपेरे को बीन से नाग को खिलाते न देखा हो। काले सांप की विशेषता है उसका फन। तनिक सा चौकन्ना होने पर अथवा क्रोधित होकर फन फैलाकर वह जमीन से एक फुट ऊंचा खड़ा हो आक्रमण के आसन पर जम जाता है। नाग के सिर के बाद जो पसलियां शुरू होती हैं वे बड़ी होती हैं और मांसपेशियों से समन्वित होती हैं, पर गरदन की पसलियां अपेक्षाकृत कम और छोटी होती हैं। अतः जब गरदन की मांसपेशियां सिकुड़ती हैं तो बड़ी पसलियां बाहर की ओर खड़ी हो जाती हैं और इस प्रकार सर के बाद का भाग फूल जाता है अर्थात फन बन जाता है। अन्य सांप भी क्रोधित होने पर गुंजलकों में खड़े हो जाते हैं और गरदन सिकोड़ते हैं और इस अवस्था में फनहीन सांपों की सिकुड़ी गरदन अनजान आदमी को फन सी प्रतीत हो सकती है, पर नाग का फन स्पष्ट रूप से मालूम देता है और फन के पीछे प्रायः चश्मा सा बना होता है या अंग्रज़ी का 'वी' (V) अक्षर सा होता है। कुछ नागों के दुहरे चश्मे भी होते हैं। दुहरे चश्मे वाले नाग बम्बई में और एक चश्मेवाले नाग बंगाल में पाए जाते हैं। एक प्रकार का नाग ऐसा भी होता है, जिसके फन के पीछे कोई चिह्न नहीं होता। ऐसे नाग कच्छ, राजपूताना, काठियावाड़ और मध्यप्रदेश में होते हैं। जब नाग जीवित अवस्था में फन फैलाता है तब फन के पीछे का चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है, पर मरने पर उसकी गरदन के जोड़ अकड़ जाते हैं और वह चिह्न नहीं दिखाई पड़ सकता।

यों तो जीवित नाग की बड़ी आसानी से पहचान उसके फैले फन से हो जाती है, पर मरे हुए नाग का फन फैलता नहीं है और लोग कभी-कभी अन्य सांपों को भी—विषहीन तक को—नाग कहने लगते हैं। भारतीय नाग का रंग प्रायः काला होता है, पर फिर भी सांप का रंग जिस प्राकृतिक स्थान में वह रहता है वहां से प्रभावित होता है, इसलिए भारत में ही नाग काले, भूरे और गेंहुए रंग का होता है। अफ्रीका में लालरंग का नाग पाया जाता है, तो स्याम में हरे रंग का और बिलोचिस्तान में बालू के से रंग का नाग होता है। कभी-कभी, पर बहुत कम, सफेदी मायल रंग का नाग भी पाया जाता है। बम्बई की हैफकिन इंस्टीट्यूट में ग्वालियर से भेजा गया सफेदी मायल नाग रक्खा है। ऐसी दशा में फन और रंग की पहचान ही नाग को पहचानने में निर्णायक नहीं हो सकती। अतः कुछ

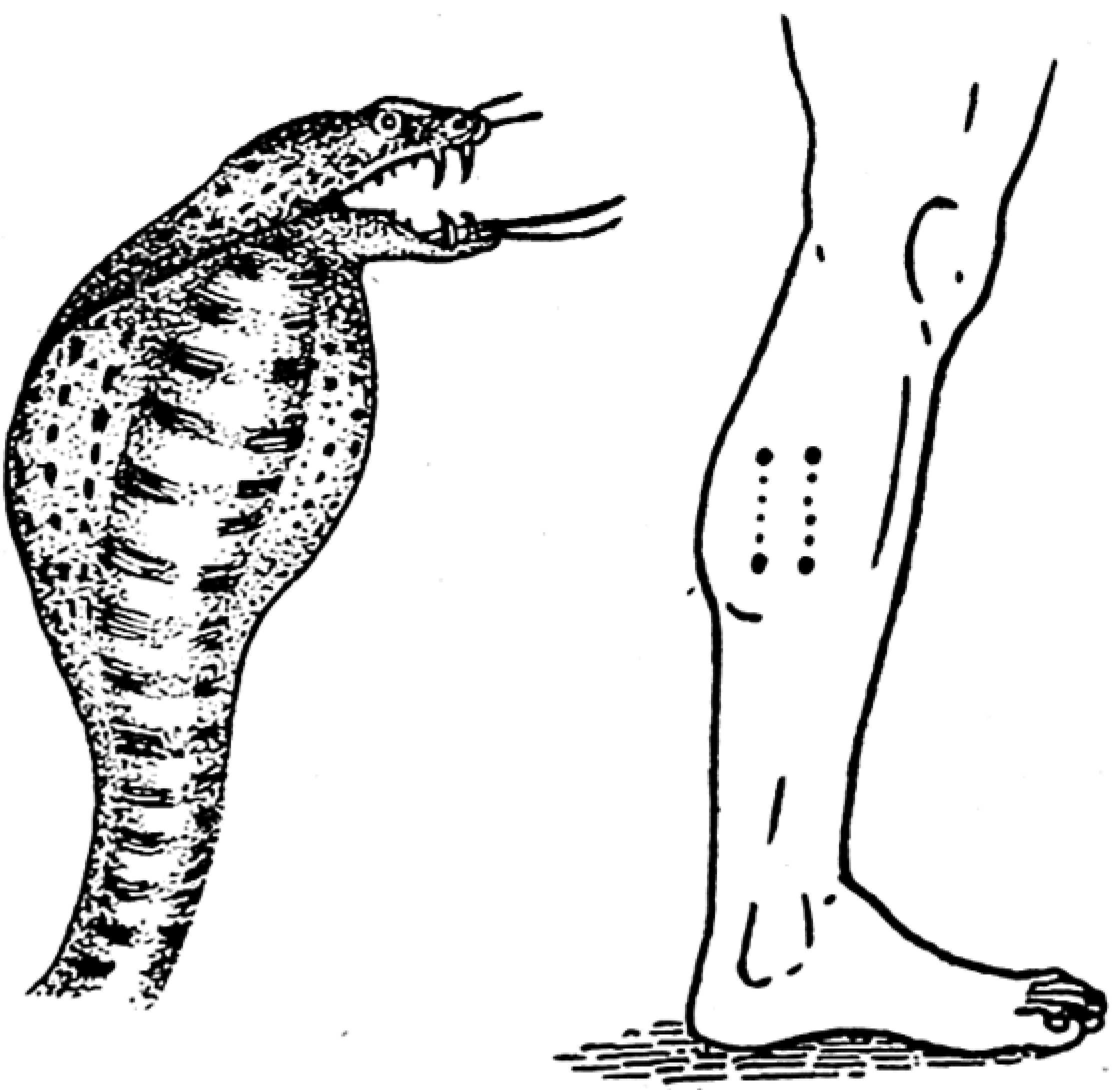
निर्णायक बातों पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए ताकि नाग को निश्चित रूप से पहचाना जा सके, वे बातें हैं :—

(1) यदि ऊपरी होंठ का तीसरा फलक (शील्ड) अपेक्षाकृत बड़ा है और आंख से लगाकर नाकवाले फलक तक उसका फैलाव है तो सांप निश्चित रूप से नाग है।

(2) भारतीय नाग के नीचे के होंठ के चौथे और पांचवें फलक के बीच में एक बहुत छोटा सा फलक होता है। बहुत कम हालतों में ही यह छोटा सा फलक नहीं होता है।

(3) पूंछ के नीचे के फलक दुहरे होते हैं । उपर्युक्त तीन बातें फैले फन के अभाव में नाग की पहचान के लिए यथेष्ठ हैं, पर एक चौथी अचूक पहचान और भी जिसके बारे में लोग कम ध्यान देते हैं वह यह है कि यदि दो या तीन खूब गहरे लगभग काले रंग के सिलसिलेवार पटल पेट की ओर गरदन के नीचे हों तो वह निश्चय रूप से नाग होगा। यह पहचान-चिह्न अन्य किसी सांप में नहीं होता ।

नाग खुश्की के स्थानों में सर्वव्यापी है। वह झाड़ी, पेड़, घास, कूड़ा-करकट,



दोनों जबड़ों की दूर-दूर एकहरी दंत-पंक्ति और कीले के निशान और विषैले सांप के काटे का चिह्न

मंदिर, पुराने मकानों की दरारों, ईटों के ढेरों में रहता है। मनुष्यों और आवादी के निकट भी पाया जाता जाता है और मकानों में चूहे खाने के लिए घुस आता है।

संपेरे प्रायः पूरे नाग को ही रखते हैं, क्योंकि अर्धवयस्क नाग बड़ा गतिशील और खतरनाक होता है। यह ठीक है कि नाग बड़ा क्रोधी होता है, पर स्वभावतः पूरा वयस्क नाग डरपोक होता है और आदमी को देख कर वह पहले बच कर भागने की ही कोशिश करता है, पर किसी के अति निकट आने पर वह फन फैला कर अपने शरीर के एक तिहाई भाग को उठा लेता है और फुसकार मारता है।

नाग जब काटता है तब बड़ी झपट के साथ काटता है और कभी-कभी चिपट कर रह जाता है। चिपट कर जब वह पलट जाता है तब जहर पिचकारी की भांति मनुष्य के शरीर के भीतर तो जाता ही है, बाहर भी फैलता जाता है। आंखों में जहर पड़ने पर आंखों को यह सुजा देता है। अफ्रीका में एक सांप होता है, जो सीधा आंखों में ही जहर थूकता है। उस जहर से मनुष्य को बड़ी तकलीफ होती है और 20-25 दिन तक दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। दूध के धोने से आंखें ठीक हो जाती हैं। नाग के काट लेने पर और जहर की घातक मात्रा पहुंचने पर कोई भी व्यक्ति दो घंटे से लगाकर छः घंटे तक के भीतर मर जाता है। नाग की एक बार की पूरी भरी विष ग्रंथि में पंद्रह आदमियों को मारने योग्य विष होता है। कुछ लोगों का भ्रम है कि काले सांप के बच्चों में जहर नहीं होता, पर सपोरे (छोटे बच्चे) में जन्म से ही विष होता है। नाग अगर रक्त वाहिनी नस पर काट ले तो विष का असर बड़ी जल्दी होता है। जहर का असर होने पर आदमी खड़ा नहीं रहना चाहता। वह लेटता है, आंखें बन्द होने लगती हैं, नक्सीर फूट जाती है, लार टपकने लगती है, क्योंकि नाग के जहर का असर सीधा दिमाग पर होता है और दम घुट कर आदमी मर जाता है। नाग के काटे का इलाज थाली बजाना नहीं है, वरन डाक्टर से तत्काल जहर-निरोधक इंजेक्शन लगवाना है।

नाग प्रायः दिन में अपने शिकार को निकलता है। यह बात निर्मूल है कि नाग सपेरे की बीन से मोहित होता है। यदि नाग मोहित हो सकता है तो अन्य सांप भी मोहित होने चाहिएं। बीन के इधर-उधर होने से वह अपना सर भी इधर-उधर करता है। असली बात यह है कि सांप के बाह्य श्रवण रंध्र होते ही नहीं, इसलिए वह इन अर्थों में बहरा होता है कि वायु द्वारा कोई शब्द नहीं सुन सकता। हां, धरती पर कोई धमाका हो, तो जमीन से वह गति उसके शरीर को छू लेती है और सांप सचेत होकर चला जाता है या आक्रमण के लिए तैयार हो जाता है। संस्कृत में सांप को 'चक्षुश्रवा' इसलिए कहा गया है कि वह बाह्य कानों से न सुन कर देखने से अधिक काम लेता है। गांव वाले बरसात के दिनों में लाठी को खटखट करके इसलिए चलते हैं कि लाठी का धमाका सांप अनुभव कर ले और भाग जाए। नाग तो क्या कोई भी सांप बन्दूक चलने तक की आवाज नहीं सुन सकता।

नाग की फुसकार का संबंध उसकी सांस की क्रिया से है और जब वह सांस जोर से खींचता और बाहर निकालता है तब फुसकार की आवाज होती है। अन्य सांपों की भांति नाग पानी बहुत पीता है, इसलिए प्रायः स्नानागर में मिल जाता है।

नाग की खुराक में छोटे बड़े चूहे, मेंढक, अंडे, चिड़ियां, मुर्गी के चूज़े हैं। नाग कभी-कभी धामिन तथा अन्य सांपों को खा जाता है और नागराज नाग को खा जाता है।

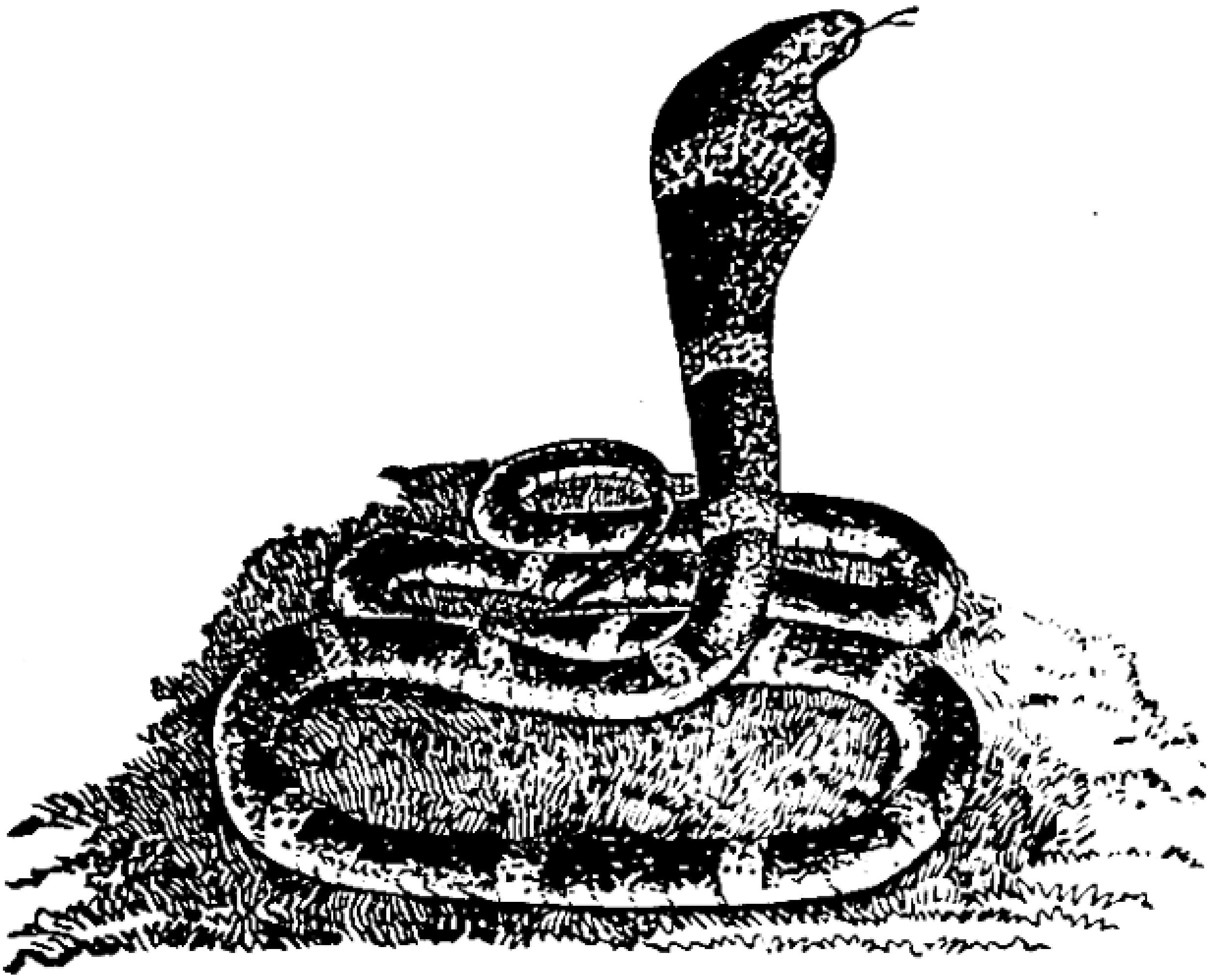
नागिन बारह से बाईस तक अंडे देती है, जो दो इंच लम्बोतरे सफेद रंग के होते हैं और दो मास में सेए जाते हैं। नागिन उन्हें नहीं सेती। अंडों में से आठ-दस इंच लम्बे छोटे बच्चे निकलते हैं और नाग की तरह ही पूरे जहरीले होते हैं। बड़े नाग की औसत लम्बाई 3-4 फुट होती है, पर 7 फुट तक के नाग का लेखा भी किताबों में मिलता है।

लोग कहते हैं कि नेवले और नाग की लड़ाई में जब नाग नेवले को काट लेता है तब नेवला कोई दवा खा लेता है, पर यह बात गलत है, क्योंकि अगर नाग काट ले तो नेवला बच नहीं सकता । हां, नाग नेवले की खुराक है और नेवला उसके पेंच में न आकर उसे मार कर खा जाता है।

यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है कि नाग बदला लेता है और इस बात को लेखक ने कई बार आजमाया भी है । गांव में सांप मार कर कभी भी घसीट कर नहीं ले जाते, उठा कर दूर फेंकते हैं । घसीट कर ले जाने में कभी-कभी जोड़े का दूसरा सांप घिसटन पर आकर ले जाने वाले की गंध पर चला आता है । जंगली जानवरों, कीड़ों-मकोड़ों और सांपों की घ्राण शक्ति बड़ी अदभुत होती है। लेखक ने नाग और करैत में तो यह बात आजमाई है। लेखक ने जान-बूझ कर नाग मार कर घसीट कर खेत में फेंका, फिर निगरानी रखी। दूसरा नाग लगातार कई दिनों तक छिप-छिप कर लेखक की चारपाई के पास तक आया। पहले से प्रबन्ध था, अतः उसे मार डाला गया। बदला लेने की बात नाग और करैत में तो आजमाई है और कदाचित यह बात अन्य जहरीले सांपों में भी सत्य हो, पर निर्विष सांपों में यह भावना नहीं होती ।

132—नागराज (King Cobra)

दुनिया के अत्यधिक जहरीले सांपों में दो प्रकार के सांप ही सबसे अधिक खतरनाक हैं। एक तो अफ्रीका का मम्बा और दूसरा हमारे देश का नागराज, जिसे अंग्रेज़ी में 'किंग कोबरा' कहते हैं। नागराज मम्बा से अधिक खतरनाक होता है या मम्बा नागराज से अधिक, उसके बारे में मतभेद है। कई जानकारों के मत से नागराज अधिक खतरनाक होता है और कई जानकारों के मत से मम्बा अधिक होता है, पर मम्बा के विषय में लिखा हुआ है कि जिस क्षेत्र में वह रहता है, वहां के लोग सिंह से भी अधिक मम्बा से डरते हैं । अपने क्षेत्र में मम्बा पशुओं तक को नहीं आने देता, अकारण ही आक्रमण करके मार देता है। मम्बा की चपेट से ही आदमी मर जाता है। वह पेड़ पर बैठा रहता है और खोपड़ी पर काट खाता है। इसलिए अफ्रीका के आदिम निवासी मम्बा के क्षेत्र में सिर पर गीली मिट्टी रख कर चलते हैं।



नागराज

नागराज और नाग में लम्बाई की भिन्नता तो होती ही है साथ ही नागराज के ऊपरी होंठ का तीसरा फलक बहुत बड़ा होता है और नीचे के होंठ का छोटा सा फलक नहीं होता है। नागराज की लम्बाई 8 से 12 फुट तक होती है, पर 15-16 फुट की लम्बाई के नागराज भी पाए गए हैं । यदि कोई आदमी मोटर में बैठा हो, तो नागराज फन फैला कर इतना ऊंचा खड़ा हो जाता है कि आदमी के सिर पर वह आसानी से काट सकता है, इतना बड़ा सांप और इतना ऊंचा खड़ा हो जाए तो उसके आतंक का क्या ठिकाना, पर नागराज मैदानी इलाके का सांप नहीं है, वह तो घने जंगलों के तटवर्ती स्थानों का, जहां वर्षा होती है, वहां का सांप है। इसलिए नागराज उत्तर भारत में असम, बंगाल और हिमालय की तलहटी के इलाके में तथा दक्षिण भारत के घने जंगलों में ही पाया जाता है।

कहा जाता है कि नागराज कभी-कभी अकारण ही हमला कर देता है। यह बात निस्संदेह ठीक है, पर वह अपने हिसाब से खतरा समझ कर ही आक्रमण करता है। नागराज की खुराक में खास तौर से अन्य सांप हैं। करैत और नाग भी इससे नहीं बचते। नागराज फन फैला लेता है, पर नाग की तरह इसके फन पर कोई चिह्न नहीं होता। पूरे जवान नागराज का रंग उस क्षेत्र की घासपात से मिलता-जुलता होता है। पीले, हरे, भूरे और काले रंग पर पीली और सफेद पटरियां ही पड़ी होती हैं। गले का रंग हलका पीला या मक्खन जैसा होता है। नागराज के बच्चे बिल्कुल काले होते हैं और पूंछ तथा शरीर पर पीली या सफेद गड़रियां होती हैं ।

नागराज का काटा आदमी कुछ ही घंटों में मर जाता है, पर स्वभावतः यह आदमी को देख कर भाग जाना पसन्द करता है। नागराज को कहीं-कहीं राज सांप या कालिंग भी कहते हैं।

अन्य सांपों की तरह नागराज शीत-निद्रा में रहता है।

(ख) करैत सांप

करैत 11 प्रकार के होते हैं, जिनमें से 10 प्रकार के करैत भारतवर्ष में पाए जाते हैं। पर भारत में अधिकांश दो ही प्रकार के करैत अधिक दिखाई देते हैं। वे हैं:—

(1) साधारण करैत

(2) गण्डेदार करैत या काल गण्डेश।

अन्य प्रकार के करैत साधारण करैत से ही मिलते-जुलते होते हैं।

करैत बहुत विषैला सांप है और भारत में उसके काटने से बहुत मौतें होती हैं, अतः उसकी पहचान भी बहुत आवश्यक है। उसको पहचानने की कुछ बातें ये हैं:—

(1) करैत के पेट पर के पटल चौड़े होते हैं।

(2) करैत का सर फलकों से पूरित होता है।

(3) पूंछ नुकीली न होकर गोल सी होती है।

(4) इसकी पीठ के नीचे की ओर शल्क स्पष्ट रूप से अधिक बड़े होते हैं और आकार में वे लगभग षटकोण होते हैं।

(5) नीचे के होंठ के दोनों ओर केवल चार-चार फलक होते हैं।

(6) पूंछ के नीचे के पटल पूर्ण होते हैं, कटे या बंटे नहीं।

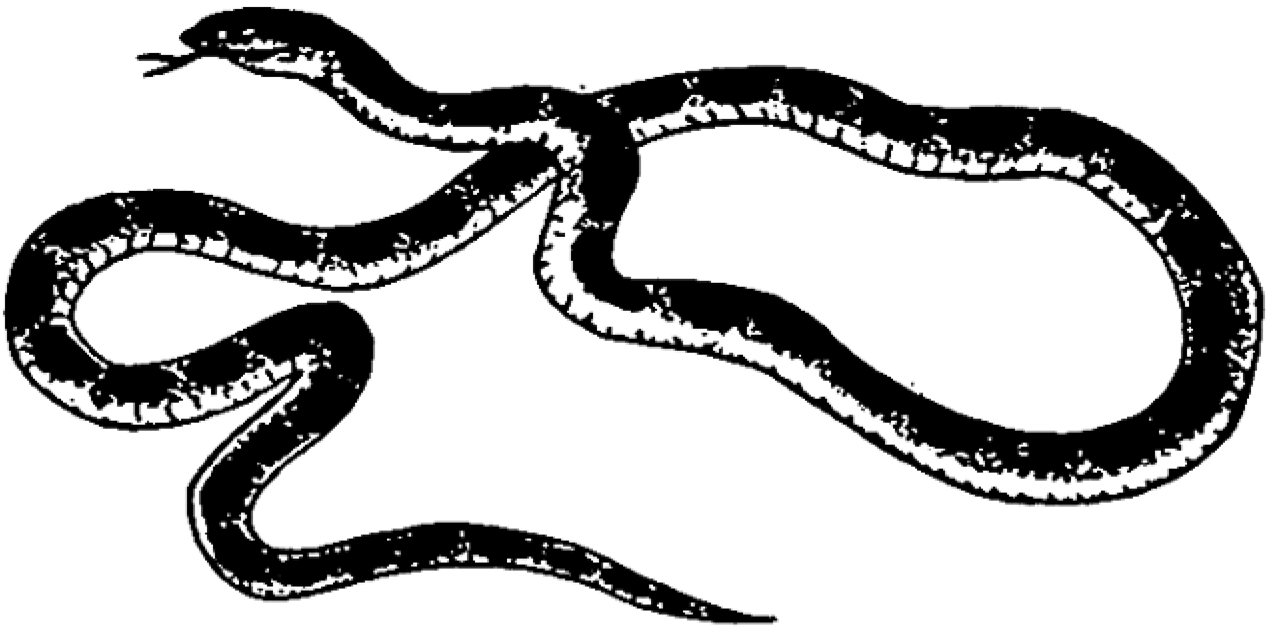
उपर्युक्त पहचान-चिह्नों में चौथा और छठा चिह्न करैत को पहचानने में निर्णायक है।

अन्य विषैले सांपों की अपेक्षा करैत के विष कीले छोटे होते हैं और उसका मुंह भी बड़ा नहीं खुलता। इसलिए जब करैत काटता है तब उसकी विष-मात्रा थोड़ी ही शरीर में प्रविष्ट करती है, पर वह आदमी को मारने के लिए काफी है। करैत सांप के ऊपर के जबड़ों में कील-विषदन्तों के अतिरिक्त चार छोटे दांत और होते हैं।

133—साधारण करैत

साधारण करैत लगभग सारे भारत में पाया जाता है। साधारण करैत छोटा सा 3-4 फुट लम्बा सांप है, पर कभी-कभी 5 फुट या उससे अधिक लम्बा भी मिल जाता है।

नाग की तरह करैत क्रोधी नहीं होता और छेड़खानी करने पर वह अपना फन अपने शरीर के नीचे छिपाता है तथा मौका पाते ही काटता है। पैर पड़ जाने पर या दबाए जाने पर भी वह काट लेता है। हां, करैत का जहर नाग के जहर से तिगुना विषैला होता है।



साधारण करैत

स्वभाव से साधारण करैत रात में निकलने वाला सांप है। सायंकाल होते ही वह खुराक की तलाश में निकलता है और प्रायः जोड़े में ही रहता है। एक करैत को मार दिया जाय तो जोड़े वाले करैत को भी उसी स्थान पर तलाश करके मारना चाहिए। करैत मकानों में तथा आसपास रहना ही पसंद करता है। कूड़ा-करकट, नालियां, छप्पर, स्नानागार, दरारें और चाहे जहां वह मिल सकता है, क्योंकि वह चूहे, चुहियां, मेंढक तथा छोटे सांप बहुत खाता है।

करैत के काटने पर भी वे ही लक्षण होते हैं, जो नाग के काटने से होते हैं। बस एक और अतिरिक्त लक्षण यह होता है कि पेट में खून बहने लगता है। करैत का काटा हुआ व्यक्ति कुछ घंटों से लगा कर एक या दो दिन तक में मर सकता है। मरने का समय विष की मात्रा पर निर्भर है। भारत में सबसे अधिक मौतें करैत के काटने से होती हैं।

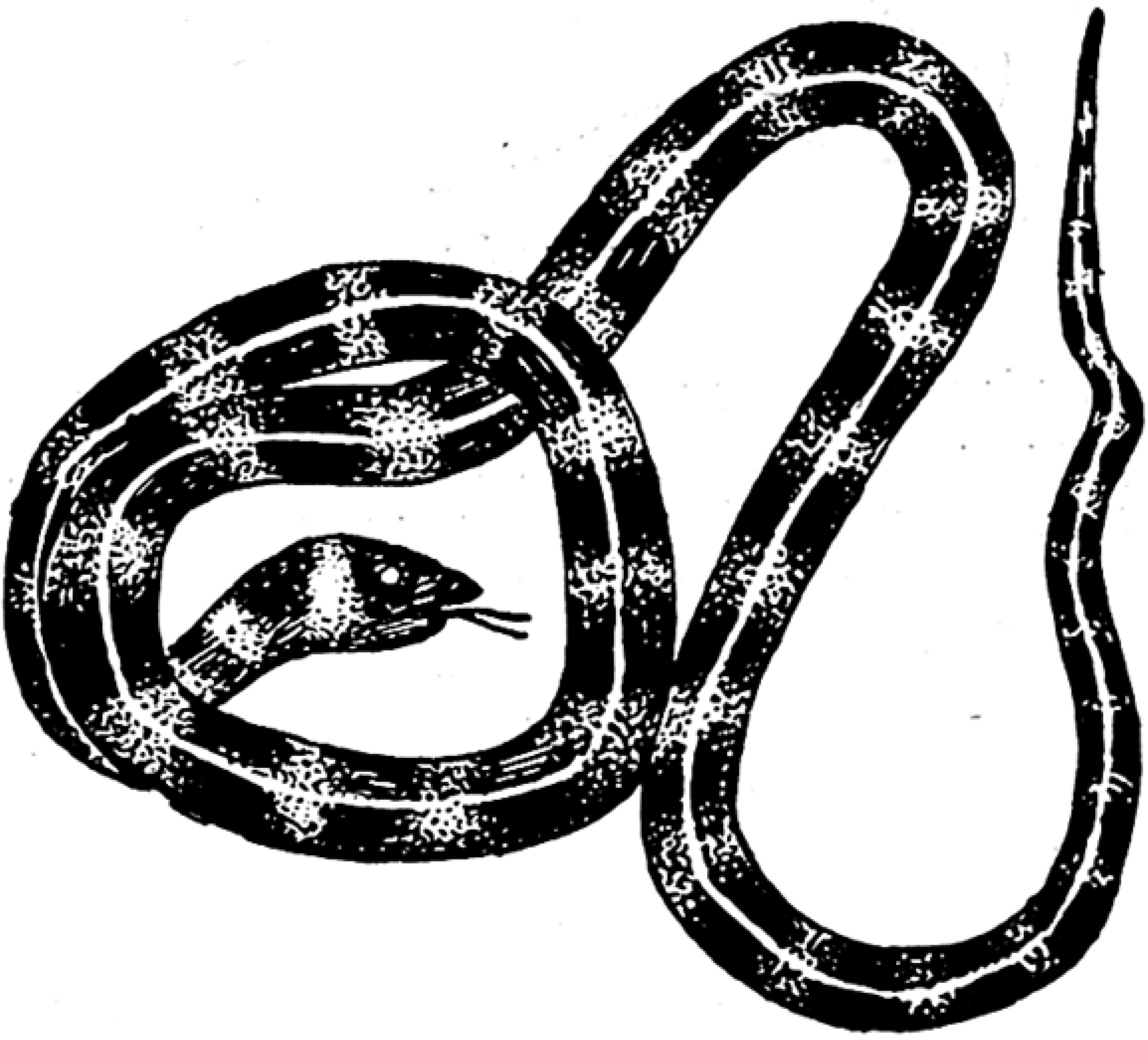
मादा करैत 6 से 10 तक अंडे देती है, जो डेढ़ इंच लम्बे होते हैं। साधारणतया करैत चमकदार काले रंग का होता है और पीठ पर सफेद महराब से बराबर-बराबर दूरी पर होते हैं। ये सफेद महराब सिर से थोड़ी दूर से शुरू होते हैं और पूंछ तक चले जाते हैं।

घरों में या बस्तियों में करैत से मिलता-जुलता एक और सांप पाया जाता है, जिसे लोग अज्ञानवश साधारण करैत सांप समझ लेते हैं। वह वृक सांप (वुल्फ स्नेक) है, जिसमें नाम मात्र को ही विष होता है। साधारण करैत सांप और वृक सांप में भी भेद समझना चाहिए। दोनों सांपों का एक सा आकार होने पर भी भेद यह है कि करैत के सफेद महराब सिर से थोड़ी दूर से शुरू होकर पूंछ तक जाते हैं जबकि वृक सांप के सफेद मेहराब एक दम सिर से शुरू होकर पूंछ से कुछ पहले ही गायब हो जाते हैं। वृक सांप बड़ा क्रोधी और लड़ाकू होता है तथापि इनकी संख्या भी काफी होती है, पर वृक सांप के काटने से आदमी मरता नहीं।

134--गण्डेदार करैत या काल गण्डेश

गण्डेदार करैत या काल गण्डेश, अपेक्षाकृत बड़ा और मोटा होता है। इसकी लम्बाई भी साधारण करैत से अधिक होती है, जो 5-6 फुट और कभी-कभी 7 फुट तक पहुंच जाती है।

काल गण्डेश की पीठ पर एक या डेढ़ इंच चौड़े पीले तथा काले गण्डे पड़े होते हैं, जिनसे वह देखने में बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है, पर वह है बड़ा ही खतर-



काल गण्डेश

नाक सांप। गण्डेदार करैत का जहर नाग के जहर से सोलह गुना अधिक विषैला होता है ।

भारत में यह उत्तरी पूर्वी इलाके में महानदी तक पाया जाता है और इस बात का भी लेखा है कि वह हैदराबाद के दक्षिण में भी मिला है।

अन्य सांपों की तरह करैत भी शीत-निद्रा में रहते हैं।

(ग) धोबिया सांप (Viper)

धोबिया को अंग्रेज़ी में 'वाइपर' कहते हैं और जितने भी 'वाइपर' हैं वे सब अंडे न देकर बच्चे देते हैं, क्योंकि उनके अंडे मादा धोबिया के पेट में ही सेए जाते हैं। विषैले सांपों में धोबिया का एक विशेष स्थान है। धोबिया का सर चौड़ा चपटा और तिकोना होता है ओर उस पर छोटे-छोटे शल्क होते हैं। इसकी गरदन

पतली, आंख की पुतली खड़ी और अंडवृत्ताकार तथापि पूंछ अपेक्षाकृत छोटी होती है। धोबिया सांपों का शरीर मोटा और भारी होता है।

धोबिया सांपों के दो भेद होते हैं (1) **गड्ढ़हीन धोबिया और (2) गड्ढ़ धोबिया।** भारतवर्ष में सात प्रकार के गड्ढ़हीन धोबिया होते हैं। इनमें 'रसल धोबिया' और 'फुरसा धोबिया' प्रमुख हैं। गड्ढ़ धोबियों के ग्यारह प्रकार भारत में पाए जाते हैं। सब प्रकार के धोबिया सांप विषैले होते हैं, पर कुछेक का विष ही मनुष्य के लिए



वि नक होता है। काले सांप से इसका जहर सोलह गुना तीव्र होता है।

● गड्ढ़हीन धोबिया

135–रसल धोबिया

इस सांप का नाम रसल धोबिया इसलिए पड़ा, क्योंकि सन् 1796 में सबसे पहले डा० पैट्रिक रसल ने ही वैज्ञानिकों के सामने इसे रखा। इसके सिर के ऊपर अपेक्षाकृत छोटे शल्क और पेट पर बड़े-बड़े पटल होते हैं। इसके शरीर पर बड़े-बड़े काले चकत्ते होते हैं, इन चकत्तों की तीन पंक्तियां रसल धोबिया की पीठ पर होती हैं, एक तो ठीक बीच में और दो अगल-बगल।

इसके भूरे शरीर पर ये काले रंग के छल्लेदार चकत्ते जंजीर जैसे प्रतीत होते हैं, अतः कहीं-कहीं इसे 'जंजीर धोबिया' भी कहते हैं। 'रसल धोबया' का रंग इतना स्पष्ट होता है कि इसको पहचानने में कभी भी गलती नहीं हो सकती। इस सांप के सिर पर भी ये चकत्ते कभी-कभी होते हैं, पर सिर पर सदा अंग्रेजी के 'वी' (V) अक्षर जैसा चिह्न अवश्य होता है। रसल धोबिया के पेट का रंग पीलापन लिए सफेद होता है, जिस पर छोटी-काली चित्तियां होती हैं। पूंछ छोटी होती है।

रसल धोबिया के दांत खूब विकसित होते हैं नाग तथा करैत से बहुत बड़े। बस डाक्टर की सिरिंज के समान आधी-आधी इंच लंबे, एक बार घुस जाने पर बहुत सा जहर तेजी से चढ़ा देते हैं। रसल धोबिया के नथुने अन्य किसी भी

भारतीय सांप की अपेक्षा बड़े होते हैं और फेफड़े भी खूब फैले हुए, इसलिए फुसकार की क्षमता इसमें अधिक होती है। इसकी भयंकर फुसकार को एक बार सुन कर फिर भूला नहीं जा सकता, क्योंकि वह बड़ी आतंकपूर्ण होती है। कभी-कभी यह सांप अपने बिल में बड़े जोरों से घण्टों फुसकारें मारा करता है।

रसल घोबिया मैदानी क्षेत्र का सांप है, पर समुद्र तट से 7,000 फुट तक की ऊंचाई तक पाया जाता है। यह घने जंगलों का सांप नहीं है, इसकी लम्बाई 4 फुट तक होती है और अजगर को छोड़ कर सब भारतीय सांपों से मोटा होता है। यह प्रायः रात में ही निकलता है और दिन में कहीं छिपा पड़ा रहता है। इसको खुले मैदान और धूप के स्थान पसंद आते हैं। स्वभावतः घोबिया सुस्त होता है और हमला नहीं करता, पर क्रोधित होने पर भयंकर हमला करता है। यह घरों में तथा उनके आस-पास इसलिए पाया जाता है, क्योंकि इसे चूहे बहुत पसंद हैं।

देखने में सुस्त होने पर भी क्रोधित होकर बड़ी जोर से आक्रमण करके काटता है, पर छोटे बच्चे इतने सुस्त नहीं होते, अतः बड़ी जल्दी काटने को दौड़ते हैं। एक बार चिपट जाने पर आसानी से झटका मार कर इसे नहीं छुटाया जा सकता, रसल घोबिया का जहर नाग और करैत के विष के समान भयंकर नहीं होता, पर इसके बड़े विषदंत जहर की मात्रा अधिक चढ़ा देते हैं। इस सांप के काटने पर भयंकर दर्द होता है और सूजन हो जाती है। काटा हुआ आदमी विष की मात्रा थोड़ी जाने पर तो बचाया जा सकता है, अन्यथा विष की मात्रा के अनुसार कुछ घण्टों से लेकर कुछ दिनों के भीतर मर जाता है।

अन्य घोबिया सांपों की भांति रसल घोबिया की मादा भी अंडे न देकर बच्चे देती है, जिनकी लम्बाई 8 से 11 इंच तक होती है और सब बच्चे सुन्दर, स्पष्ट चकत्तों से अंकित होते हैं। ये बच्चे जन्म के समय बड़े फुर्तीले होते हैं और इनका जहर भी बड़े सांपों की तरह घातक होता है। रसल घोबिया एक बार में 30 से 40 तक बच्चे देता है। साधारणतया पूरे बड़े रसल घोबिया की लम्बाई 4 फुट तक होती है, पर ये 5 फुट तक लम्बे भी हो जाते हैं।

कभी-कभी लोग अजगर और शाही सांप को भी रसल घोबिया समझ लेते हैं। इसलिए रसल घोबिया को पहचानने के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिएं :

(1) पेट पर बड़े और चौड़े पटल हों।
(2) सिर पर छोटे-छोटे शल्क हों।
(3) पीठ पर काले चकत्तों की तीन पंक्तियां शृंखलाकार हों।
(4) पूंछ के नीचे फलक जुड़े न हों।

136–फुरसा घोबिया

फुरसा घने जंगलों और घास-पात में रहना पसंद नहीं करता। एक तरह से वह रेगिस्तान का सांप है। रसल घोबिया और फुरसा में मुख्य भेद यह है कि फुरसा

की पूंछ के नीचे के पटल अविभाजित होता हैं। बम्बई में रत्नगिरि जिले में वह बहुतायत से होता है।

फुरसा अपेक्षाकृत छोटा सांप है। जिसकी लम्बाई डेढ़ फुट होती है, पर कहीं-कहीं 2 फुट 7 इंच तक के फुरसा सांप मिल जाते हैं। इसका रंग भूरा, पीलापन लिए और हरा होता है। इसकी दोनों बगलों में पीली और सफेद धारियां होती हैं और पीठ पर चौकोर सफेद चकत्ते होते हैं। अन्य घोबियों के समान इसका सिर भी तिकोना होता है और उस पर तीर जैसा चिह्न होता है। इसका पेट सफेद होता है और भूरे रंग के चकत्ते होते हैं।



रसल घोबिया

अत्यंत क्रोधी फुरसा के सिर और दोनों बगलों में आरीनुमा शल्क होते हैं। नाराज होने पर अंग्रेजी का आठ (8) जैसा होकर वह अपनी बगलों के शल्क रगड़ता है और आवाज निकालता है। शल्कों की रगड़ की ध्वनि 'फुस' 'फू' सी सुनाई पड़ती है। इसीलिए इसका नाम फुरसा पड़ा है। फुरसा छोटा सांप है। इसलिए काटने पर विष की मात्रा अधिक नहीं पहुंचा सकता। अतः काटे गए व्यक्तियों में से पच्चीस प्रतिशत ही मरते हैं, जो एक दिन से लगा कर बीस दिन तक में मर सकते हैं। फुरसा बड़ा ही क्रोधी और लड़ाकू सांप है। वह मरुभूमि पसंद करता है और दिन में धूप लेता हुआ खूब मिलता है।

इसकी खुराक में चुहियां ही विशेष रूप से हैं। फुरसा पंजाब, मैदानी इलाकों और 6,000 फुट तक की ऊंचाई तक पाया जाता है। डा० घोरपड़े के लेखानुसार सन् 1862 में बम्बई के रत्नगिरि जिले में फुरसा पकड़ने की सरकारी योजना बनी थी, जिसके अनुसार आठ दिनों में 115,921 फुरसा पकड़े गए थे।

● अन्य गड्ढ़हीन धोबिया

भारतवर्ष में दो अन्य प्रकार के गड्ढ़हीन धोबिया भी पाए जाते हैं।

137–मैक मोहन धोबिया

यह धोबिया भारत और पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा पर पाया जाता है। यह रेगिस्तानी सांप है और 2 फुट लम्बा होता है।

138–लेवेन्टाइन धोबिया

भारतवर्ष में यह केवल कश्मीर में ही पाया जाता है। यह 5 फुट लम्बा होता है, और इसके सिर पर अंग्रेजी के 'वी' (V) जैसा चिह्न तथा आंखों के पीछे काले धब्बे होते हैं। इसकी पूंछ का सिरा पीला होता है और बहुत कुछ रसल धोबिया से मिलता है।

● गड्ढ़ धोबिया

गड्ढ़ धोबियों को साधारण रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, एक तो वे, जिनके सिर पर छोटे शल्क होते हैं और दूसरे वे, जिनके सिर पर शल्क होते हैं। इनमें से पहले प्रकार के गड्ढ़ धोबियों में सात प्रकार के धोबिया होते हैं।

139–साधारण हरा धोबिया

यह पहाड़ी में 1,500 फुट की ऊंचाई से 6,000 फुट तक की ऊंचाई पर पाया जाता है। इसका सर चपटा, बड़ा और तिकोना होता है, पेट पीला या सफेद, आंख की पुतली काली होती है, और डेले सुनहरे। इस सांप की लम्बाई प्रायः 2 फुट 6 इंच होती है पर 3 फुट 8 इंच के भी सांप पाए जाते हैं। इसका रंग हरा होता है और यह बांसों की झाड़ियों तथा शाखाओं में रहना पसंद करता है। इसकी गति बड़ी धीमी होती है, पर क्रोधित होने पर आक्रमण करता है। इसका काटना शायद ही कभी विघातक होता हो, पर काटे व्यक्ति को उबकाई आती है और जी मचलाता है, तथा ज्वर आ जाता है, जो दो दिनों तक रहता है। काटी हुई जगह सूज जाती है।

यह सांप मद्रास के दक्षिणी भाग को छोड़ कर पश्चिमी घाट और दक्षिणी भारत में पाया जाता है। हिमालय में भी यह मिलता है और बंगाल तथा सुन्दरबन में भी पाया जाता है।

140–बड़ा धब्बेदार धोबिया

यह केवल हिमालय के क्षेत्र में ही पाया जाता है। इसकी लम्बाई 3 फुट होती है और भूरे रंग का होता है तथा पीठ पर बड़े-बड़े बेतरतीब काले चकत्ते होते हैं। सिर इसका गहरे भूरे रंग का होता है और उस पर वी (V) का सा चिह्न होता है।

141–अश्वनाल धोबिया

इसके गरदन के पिछले भाग पर पीले रंग का घोड़े की नाल का सा चिह्न होता है और आंखों के पीछे गहरे रंग की रेखा होती है। यह सांप केवल पश्चिमी घाट, नीलगिरि और दक्षिणी भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में मिलता है। उटकमंड के आसपास भी प्राय: मिल जाता है।

142–कन्टूर धोबिया

यह अंडमान और निकोबार में ही पाया जाता है। इसका रंग हरा होता है, जिस पर भूरी या काली चित्ती होती है और 3-4 फुट लम्बा होता है।

143–ग्रे धोबिया

यह साधारण हरे धोबिया की तरह होता है और बंगाल तथा हिमालय में पाया जाता है। इसकी लम्बाई 4 फुट होती है। यह हरे या भूरे मिले हुए रंग का सा होता है। इसकी बगल में पीली या सफेद स्पष्ट पंक्ति होती हैं।

144–जर्डन धोबिया

इसकी लम्बाई ढाई फुट तक होती है। इसका रंग हरा और काला होता है। सिर काला होता है, जो पीले रंग से युक्त होता है। यह धोबिया असम में पाया जाता है।

145–अनामलाई धोबिया

अनामलाई धोबिया पश्चिमी घाट और कृष्णा नदी के पश्चिम के पहाड़ी क्षेत्र में पाया जाता है। यह साढ़े तीन फुट लम्बा होता है। इसका रंग हरा मायल और काला मायल होता है तथा बगलें पीली होती हैं।

● अन्य गड्ढ़ धोबिया

अन्य गड्ढ़ धोबिया, जो भारतवर्ष में पाए जाते हैं, उनके केवल चार प्रकार हैं। इन धोबियों के सिर पर शल्क होते हैं।

146–हिमालय धोबिया

यह कश्मीर और हिमालय के पश्चिमी प्रदेशों में पाया जाता है। इसकी लम्बाई 2 फुट तक होती है। इसका रंग भूरा होता है और इस पर धब्बे होते हैं, पेट सफेद होता है, जिस पर लाल और काली बुंदके होती हैं। सताये जाने पर यह सिमटता है और पूंछ को तेजी से थरथराता है तथा खरखराहट की आवाज निकालता है और सारे शरीर को चपटा करके जमीन को कस कर पकड़ लेता है।

147–कूबड़ नक्र धोबिया

यह केवल भारत के दक्षिणी भाग में ही पाया जाता है। इसकी लम्बाई 18 इंच होती है और भूरे शरीर पर गहरे अंडाकार चकत्ते होते हैं तथा थूथन पर कूबड़-सा उठा होता है।

148–मिलई धोबिया

यह धोबिया करवार जिले से बम्बई तक पाया जाता है। यह एक फुट या कुछ अधिक लम्बा होता है। यह कूबड़ नक्र धोबिया से मिलता-जुलता होता है। इसका कूबड़ अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसका रंग भूरा होता है और शरीर पर चकत्ते होते हैं।

149–विशाल शल्क धोबिया

यह दक्षिण भारत के पहाड़ी क्षेत्र में ही पाया जाता है। इसकी पीठ का रंग चमकीला हरा होता है और पेट हलका हरा तथा लम्बाई दो फुट होती है।

150–छलिया धोबिया

छलिया धोबिया में धोबिया का यह गुण अवश्य है कि वह अंडे न देकर बच्चे देता है, पर वह विषहीन सांप है। इसकी पूंछ छोटी, सिर चपटा और शरीर मोटा होता है। परेशान किए जाने पर हिमालय के धोबिया की तरह आक्रमण करता है। इसकी लम्बाई 1 से 2 फुट तक होती है। यह जंगलों का रहने वाला सांप है और खसिया पहाड़ियों और पूर्वी हिमालय में 3,000 से 6,000 फुट तक की ऊंचाई तक पाया जाता है।

(घ) समुद्री सांप

समुद्री सांपों की 55 उपजातियां पाई जाती हैं, जिनमें से 29 भारतीय समुद्रों में मिलती हैं। वे समुद्रतट के किनारे या समुद्र में ही मिलते हैं, इसलिए उनका विस्तार से वर्णन करना या भेदों-उपभेदों पर लिखना व्यर्थ है।

सब समुद्री सांप जहरीले होते हैं। उनकी पूंछ चपटी और बगलों से दबी हुई होती है, जो तैरने में सहायक होती है। इन सांपों के नथुने थूथन के ऊपर होते हैं। ये बड़ी आसानी से और ठाट से सिर ऊंचा किए हुए तैरते हैं और आतंकित होने पर डुबकी मार जाते हैं। वयस्क सांप 2-4 फुट तक लम्बे होते हैं, पर उनकी लम्बाई 9 फुट तक हो जाती है। वे प्राय: भारी होते हैं, पर कुछ लगलगे भी पाए जाते हैं।

इनकी खुराक मछली है तथापि स्वभाव से वे सीधे होते हैं, क्योंकि उनकी प्रवृत्ति काटने की नहीं होती। मछुओं के जाल में वे प्राय: आ जाते हैं और मछुए उन्हें जाल से निकाल कर फिर समुद्र में फेंक देते हैं। समुद्री सांपों के विषदंत पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते और उनके पीछे प्राय: 3-4 दांत होते हैं। समुद्री सांपों की पीठ पर हरी और नीली धारियां होती हैं और पेट का रंग पीला या सफेद होता है।

समुद्री सांप अंडे नहीं देते वरन बच्चे देते हैं, जिनके सिर काले होते हैं तथा उन पर अश्वनाल का चिह्न भी होता है।

खुश्की पर समुद्री सांपों को चलने में बड़ी कठिनाई होती है।

(ङ) मूंगिया सांप (Coral Snakes)

मूंगिया सांप आकार में छोटे पर बड़े चमकदार होते हैं। अनेक मूंगिया सांपों के नीचे पेट का भाग गुलाबी होता है। होते तो वे सब विषैले हैं, पर उनका विष मनुष्य के लिए घातक नहीं होता। नाग की भांति मूंगिया सांपों के ऊपरी होंठ का तीसरा फलक भी नथुने और आंखों के फलक को छूता है। अत: मूंगिया सांप और नाग का वर्गीकरण शल्कों की दृष्टि से एक में ही होता है। दोनों ही विषैले हैं, बस उनके विष की मारक शक्ति में बहुत अन्तर है अर्थात मूंगिया का विष नाग के विष के समान घातक नहीं होता। भारत में चार प्रकार के मूंगिया सांप पाए जाते हैं:—

151–विवरन मूंगिया सांप

यह सांप तो एक प्रकार से दुर्लभ है और भारत में केवल पश्चिमी घाट में ही पाया जाता है। इसकी लम्बाई 2 फुट या अधिक होती है। सिर का अगला भाग काला और पेट लाल होता है, जिस पर काली धारियां आड़ी पड़ी होती हैं और पीठ बिल्कुल लाल होती है।

152–मेकलेलेंड सांप

भारत में यह सांप हिमालय, सिक्किम और असम में पाया जाता है। इसकी लम्बाई 2 फुट होती है। इसकी पीठ का रंग बिल्कुल लाल होता है, जिस पर किसी-किसी में काली धारियां होती हैं। इसके काले सिर पर सफेद आड़ी लकीरें होती हैं तथा पेट पीले रंग का होता है।

153–लगलगा मूंगिया सांप

यह बहुत ही लगलगा 13 इंच लम्बा सांप होता है। इसका शरीर हलके पीले या भूरे रंग का होता है। सिर और गरदन काले होते हैं और पूंछ पर दो काले छल्ले से होते हैं। पेट का रंग गुलाबी होता है। यह सांप भारत में दक्षिण और बंगाल में पाया जाता है। यह सांप भी दुर्लभ है, पर दक्षिण भारत में यह मिल जाता है।

154–साधारण भारतीय मूंगिया

भारतीय मूंगिया सांपों में यह सबसे बड़ा होता है और पश्चिमी भारत में मद्रास में पाया जाता है। इसके सिर और गरदन काले रंग के होते हैं। पीठ का रंग लाल या भूरा और उस पर 3 या 5 चकत्तों की धारी सी होती है।

155–अंधे सांप

ये सांप 5 से 12 इंच तक लम्बे होते हैं और जमीन के अन्दर ही रहते हैं। इनकी खुराक दीमक और कीड़े-मकोड़े ही हैं। इसलिए ये नालियों और दिमौर में ही मिलते हैं। ये बिल्कुल निर्विष सांप हैं। इनकी आंखें इतनी छोटी-छोटी और शल्कों से ढंकी रहती हैं कि बिल्कुल दिखाई नहीं पड़तीं, इसलिए इसे अंधे सांप कहते हैं।

156--बिलों या जमीन में रहने वाले सांप

बिलों में रहने वाले इन निर्विष सांपों के 44 प्रकार होते हैं। दक्षिणी भारत में इनकी बहुतायत है। इनकी लम्बाई एक फुट से लगा कर दो फुट तक होती है। देखने में तो यह सांप बड़े सुन्दर होते हैं, पर इनकी पूंछ बड़ी भद्दी और टेढ़ी-मेढ़ी होती है। ये सांप क्रोधी भी नहीं होते और न काटने का प्रयत्न करते हैं। ये सांप सीलनदार जंगली इलाकों को अधिक पसन्द करते हैं।

157--दुमुंही सांप

दुमुंही, जिसे 'अर्थ स्नेक' कहते हैं, दो प्रकार की होती हैं। एक तो 'रसल' साहब के नाम पर रसल दुमुंही सांप कहते हैं। रसल दुमुंही की तो पूंछ छोटी सी होती है, पर जौन दुमुंही मुंह और पूंछ दोनों ओर एक सी मोटी होती है। इसी कारण इसे दुमुंही का नाम दिया गया है, मानों इसके दोनों ओर मुंह हो।

रसल दुमुंही की लम्बाई 2 से 9 इंच होती है, पर जौन दुमुंही 4 फुट तक बढ़ जाती है। दुमुंही बिल्कुल निर्विष सांप है और गति में बिल्कुल सुस्त। वह आदमी को देख कर भागती नहीं है, वरन धीरे-धीरे रेंगती रहती है और निकट जाने पर बिल्कुल सिकुड़ कर बैठ जाती है। पकड़ कर उठा लेने से भी यह नहीं काटती। हां, क्रोधित किये जाने पर आक्रमण कर देती है। कितनी भी सीधी दुमुंही हो यदि उसे पानी में फेंक दिया जाय तो बाहर निकल जाती है और इसी तरह से दो चार बार तंग किए जाने पर मुंह फाड़ कर दौड़ती है। दुमुंही घरों में चूहे खाने आ जाती है। स्वभावतः दुमुंही वालू और मिट्टी में छुप कर रहना पसन्द करती है और कम गहरे बिलों में रहती है। दुमुंही अपने शिकार को गुंजलकों में दबा कर मार देती है और जब शिकार मर जाता है तब सटक जाती है। अजगर और दुमुंही का शिकार मारने का एक ही ढंग है। यदि इसे कोई मरा चूहा मिल भी जाय तब भी गुंजलकों में दबा कर ही खाती है।

नेवला, जो धामिन और काले सांप जैसे फुर्तीले सांपों को मार कर खा जाता है, दुमुंही को नहीं मार पाता। दुमुंही के गरदन नहीं होती, शरीर का भाग ही सिर होता है। हमने दसियों बार दुमुंही को नेवलों के मार्ग में रखा है, पर नेवले को देख कर वह अपना सिर अपने शरीर के गुंजलकों में छिपा लेती है। नेवला दूसरी ओर आक्रमण करता-करता थक जाता है, पर दुमुंही धैर्यपूर्वक सब सहती हुई भी अपना मुंह नहीं निकालती, घायल होती रहती है, पर टस से मस नहीं होती। आधे घण्टे तक हमला करते-करते नेवला थक कर चूर हो चला जाता है, तब मौका पाकर वह कहीं सरक जाती है।

दुमुंही के विषय में एक हास्यास्पद भ्रम यह प्रसिद्ध है कि वर्ष के छः माह वह एक ओर मुंह रखती है और शेष छः माह दूसरी ओर, और दीपावली के अवसर पर सिर बदलती है।

158--अजगर

अजगर एक भारी भरकम सांप है, जिसकी लम्बाई आठ फुट से सोलह फुट तक होती है। अजगर तीस फुट तक लम्बे हो जाते हैं, पर इतने लम्बे बहुत कम मिलते हैं।

इसे चित्ती सांप भी कहते हैं। अजगर की आंखें बिल्ली की आंखों की तरह होती हैं और वह दिन और रात दोनों ही में शिकार करता है। बड़े अजगर का वजन तीन मन तक होता है।

अजगर ढलवां पहाड़ियों, नम और गरम जंगल तथा पानी के किनारे रहना पसन्द करते हैं। अजगर प्रायः निकलता रात में है। गरमी के दिनों में इसका शिकार खेलने का ढंग यह होता है कि पानी के स्थानों में, जहां जानवर पानी पीने आते हैं अजगर छिप जाता है और गीदड़, लोमड़ी, हिरन, काकड़ आदि जैसे ही पानी पीते हैं, वह उन्हें विद्युत गति से पकड़ कर अपनी गुंजलकों में दाब लेता है। जानवर की हड्डियों का भुरता हो जाता है और जब वह बिल्कुल चकनाचूर हो जाता है तब अजगर अपने मुंह से एक तरल चिकना पदार्थ निकाल कर उस पर लपेटकर धीरे-धीरे सारा जानवर सटक जाता है।

अन्य सांपों की भांति अजगर के भी जबड़ा नहीं होता, इसलिए इसका मुंह इतना अधिक फैल जाता है कि साधारण व्यक्ति उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। एक दो बार बाघ तक को अजगर ने निगला है, ऐसे भी समाचार मिले हैं। गर्मी के दिनों में शिकारियों को पठारों पर जहां पानी हो, सम्भल कर चलना चाहिए, क्योंकि अजगर के मार्ग में मिलने की सम्भावना हो सकती है। यदि भूल से भी आदमी का पैर पड़ गया, तो अजगर के लिए फौरन लपेट कर तोड़ डालना मामूली सी बात है। एक बार धोलखण्ड (देहरादून) में एक अजगर को लेखक ने क्रोधित होकर एक गाय को पकड़ते देखा। अजगर मार्ग में बैठा था, गाय ने उसे मार्ग से हटाना चाहा। बिगड़ कर वह गाय पर टूट पड़ा और गाय की गरदन में मुंह गड़ाकर अपने भारी और मोटे शरीर में उसने गाय को कस लिया। गाय गिर पड़ी और अजगर ने उसकी हड्डियां तोड़ दीं। गाय गाभिन थी और उसका अर्ध-विकसित बच्चा निकल पड़ा।

अजगर पेड़ पर चढ़ कर भी शिकार खेलता है। पूंछ के पिछले भाग को वह शाखा में लपेट लेता है और नीचे से बेखबर निकलने वाले जानवरों को झपट्टा मार कर पकड़ लेता है। जहां अजगर रहते हों वहां पेड़ों के नीचे संभल कर चलना चाहिए। अजगर तो बन्दर और लंगूर जैसे चालाक जानवर को भी पकड़ लेता है, पर झीलों के किनारे अजगर को भी कभी-कभी ऊदबिलाव बड़ी आसानी से मार लेता है।

मादा अजगर एक बार में 8 से 100 तक अण्डे देती है, जो बिल्कुल बतख के अण्डों के से होते हैं, बस जरा बड़े होते हैं—$3\frac{1}{2}$ इंच लम्बे और $2\frac{1}{2}$ इंच चौड़े। अण्डों से निकलने वाले बच्चे दो फुट या इससे अधिक लम्बे होते हैं।

अजगर का मांस भी बड़े स्वाद से खाया जाता है।

● धामिन सांप (Rat Snakes)

धामिन का अंग्रेजी नाम 'रैट स्नेक' इसलिए है, क्योंकि धामिन सांप चूहे खाने का बड़ा शौकीन होता है। धामिन सांप 8 फुट तक का होता है। इस सांप की आंखें बड़ी-बड़ी होती हैं और पूंछ लम्बी होती है। संसार के 20 प्रकार के धामिन सांपों में से 10 प्रकार के धामिन भारत में होते हैं। धामिन सांप प्रायः दिन में निकलते हैं। धामिन का अर्थ है

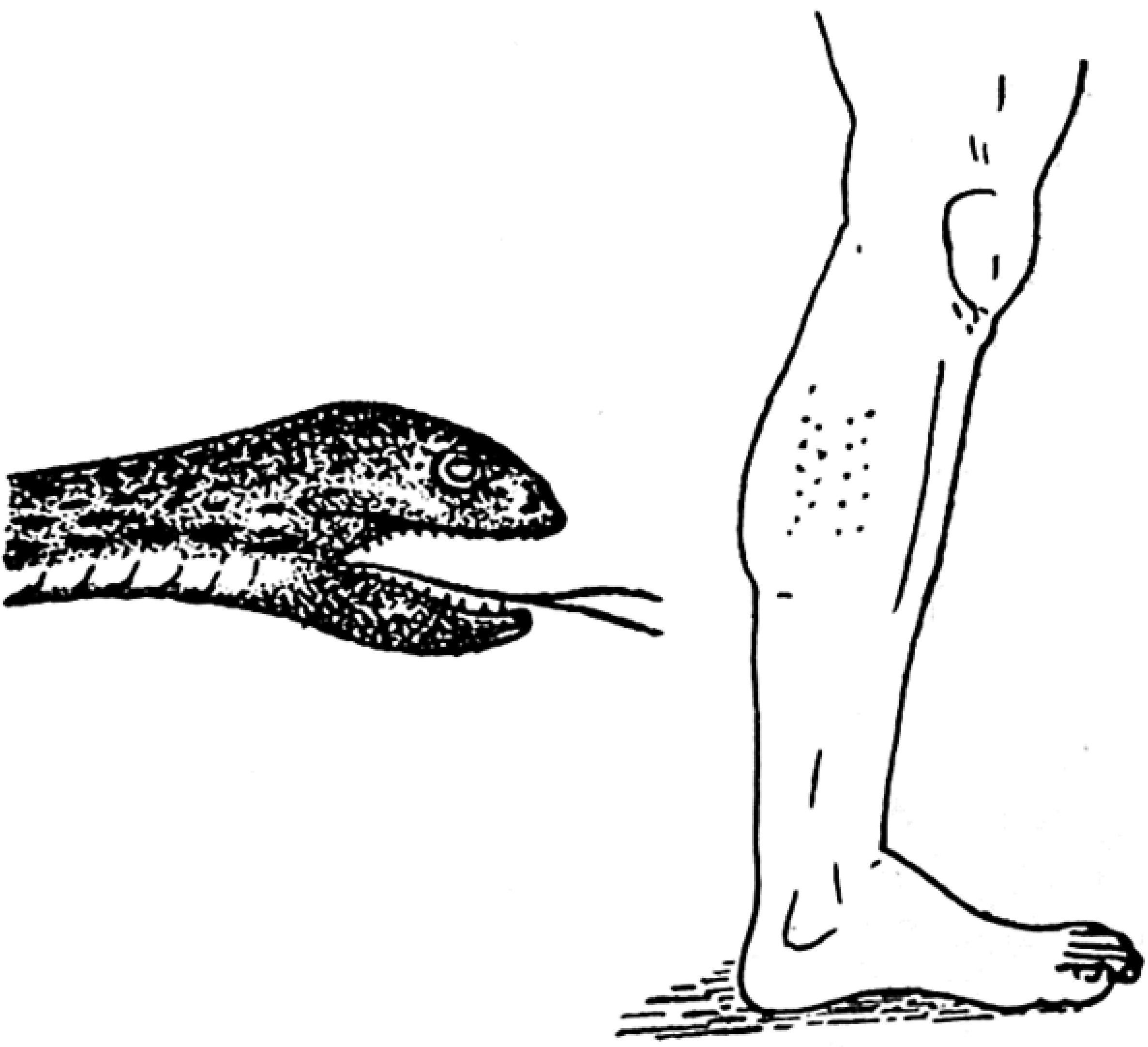
रस्सी और यह सांप मोटी रस्सी जैसा ही होता है। भारत के 10 प्रकार के धामिन सांपों में पांच प्रमुख हैं, जिनका नीचे वर्णन दिया जाता है।

159–साधारण धामिन सांप

यह धामिन सारे भारत में पाया जाता है। यह सांप मैदानी क्षेत्र का है, पर 6,000 फुट या उससे अधिक की ऊंचाई पर भी मिल जाता है। मैदानी क्षेत्रों का सबसे तेज चलने वाला, सबसे बढ़िया तैराक और पेड़ पर चलने वाला यही सांप है। इसकी औसत लम्बाई 6 फुट होती है, पर पुराने धामिन सांप 8-10 फुट तक भी बढ़ जाते हैं और शरीर की मोटाई चार इंच होती है। यह निर्विष सांप है, इसलिए इसके दांतों की दो पंक्तियां होती हैं। साधारण धामिन का रंग भूरापन या हरापन लिए होता है। पेट सफेद और पिलछौंह तथा पीठ पर चौखाने से होते हैं। छोटे बच्चे भी वैसे ही होते हैं, बस रंग जरा राखी या आस्मानी सा होता है।

सब स्थानों में पाया जाने वाला यह सांप नगरों, घरों, गांवों के आसपास बहुत मिलता है और जब मनुष्यों के समीप रहता है, तो दिन में कम मिलता है अन्यथा दिन में खूब शिकार करता है। झाड़ियां, धान के खेत, साग-सब्जी के खेतों की मेड़ों में रहना इसे बहुत प्रिय है। मकानों की दरारों में भी रहता है।

साधारण धामिन के विषय में कई भ्रम फैले हुए हैं। एक तो यह कि धामिन काले सांप के खानदान का है और उससे भी अधिक जहरीला है। दूसरा भ्रम यह है कि वह



दोनों जबड़ों के पास-पास दुहरी दंत-पंक्ति वाले निर्विष सांप के काटे का चिह्न

रात में गाय के थन से लग कर दूध पी जाता है और तीसरा भ्रम यह है कि धामिन गायों और भैंसों की नाक में पूंछ डाल कर उन्हें मार डालता है, पर यह जानना जरूरी है कि इसमें तनिक भी विष नहीं होता। आदमी से यह भागता है और मुकाबला करने पर ही आक्रमण करता है। काटने के बाद यह आदमी के उस अंग पर गुंजलकें कसता है। नेवला इसे भी मार डालता है, पर कभी-कभी घात लगने पर यह भी नेवले को पकड़ कर गुंजलकों में भींच कर मार देता है।

साधारण धामिन सांप किसानों का बड़ा मित्र है। यों कहना चाहिए कि जितने भी निर्विष सांप हैं, वे सब किसानों के मित्र हैं, क्योंकि वे खेती के भयंकर शत्रु चूहे, गिलहरी खाते हैं। यह तो चिड़ियां और छिपकलियां भी खूब खाता है। इस सांप की आदत दिन में निकलने की है, अत: मारा अधिक जाता है, जब कि इसे मारना बिल्कुल नहीं चाहिए, क्योंकि यह खेती के लिए बहुत लाभदायक है। अन्य सांपों की तरह यह भी शीत-निद्रा में सोता है।

160–शो धामिन या गण्डेदार धामिन सांप

आकार रंग और मोटाई में यह धामिन सांप बहुत कुछ नाग से मिलता है, इसलिए कभी-कभी भ्रमवश लोग इसे नाग समझ बैठते हैं, पर इसके ऊपरी होंठ का तीसरा फलक बड़ा नहीं होता और न वह आंख को छूता है। इसके शरीर का रंग हलका भूरा या गहरा भूरा होता है।

गण्डेदार धामिन सांप की लम्बाई 4 फुट होती है, पर कभी-कभी थोड़ा बड़ा भी मिल जाता है। घिराव में आने पर यह भी साधारण धामिन सांप की तरह क्रोधित होकर आक्रमण करता है।

161–ग्रे धामिन सांप

यह सांप उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिण भारत में पाया जाता है। इसकी लम्बाई 3 से 4 फुट तक होती है। इसका रंग भद्दा पीलापन लिए हुए हरा होता है। किसी-किसी ग्रे धामिन सांप की रीढ़ पर लाल धारी होती है।

162–आकर्षक धामिन सांप

यह लगलगा सुन्दर सांप दक्षिण भारत में पाया जाता है और अहमदनगर के आस-पास बहुत है। इसकी लम्बाई दो फुट या कुछ अधिक होती है। इसका रंग सिलेटी होता है और सिर तथा पीठ पर सफेद काली धारें होती हैं। इसके सिर पर दो या तीन सफेद आधे छल्ले होते हैं, जिनकी कोरें काली होती हैं।

163–शाही धामिन सांप

यह सांप भारत के खुश्क इलाकों—कच्छ, पंजाब, राजपूताना और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाया जाता है। इसकी लम्बाई 5 फुट से 7 फुट तक होती है। इसकी पीठ

पर काले बड़े-बड़े धब्बों की तीन पंक्तियां होती हैं, इसलिए यह सांप शांतिप्रिय होता है, पर प्रायः फुसकारें मारता है और अपने शरीर को काले सांप की तरह फुलाता है।

164–वृक्ष सांप (Tree Snakes)

वृक्ष सांप पेड़ों या झाड़ियों में रहते हैं और कभी-कभी नीचे भी उतर आते हैं। इनका रंग भूरा या हरा-सा होता है, जो आसपास के वातावरण से मिल जाता है। वृक्ष सांपों के बारे में एक गलत धारणा यह है कि वे उड़ते हैं, पर वास्तव में वे उड़ते नहीं हैं, वरन अपने शरीर को सिकोड़ कर उचट कर एक शाखा से दूसरी शाखा पर चले जाते हैं। वृक्ष सांप मुख्यतया चार प्रकार के होते हैं:

(1) **कोड़ा सांप** (2) **मार्जार सांप** (3) **कांस-पीठ सांप** (4) **सुनहरी वृक्ष सांप।**

इन सबके स्वभाव लगभग एक से होते हैं। बस रंग और आकार का अन्तर होता है।

165–बलुआ सांप (Sand Snakes)

यह निर्विष सांप दक्षिण भारत, राजपूताना, पंजाब और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है। इसकी लम्बाई 3 फुट या कुछ अधिक होती है, जिसमें एक चौथाई पूंछ होती है। यह मेंढक, छिपकलियां तथा अन्य छोटे सांपों को खाता है। बलुआ सांप धान के खेतों, घास के मैदानों, खुले जंगलों और मरुभूमि तक में रहता है। इसकी पीठ काली होती है और सिर से लेकर पूंछ तक चार पीली, हलकी हरी या भूरी लाइनें होती हैं।

● वृक सांप (Wolf Snakes)

भारत में वृक सांप नौ प्रकार के होते हैं। इनका नाम वृक भेड़िया इसलिए पड़ा, क्योंकि इनके भेड़िए के समान कूकुर दांत होते हैं। स्वभावतः ये सांप क्रोधी होते हैं और रात में निकलते हैं। छिपकलियां और छोटे चूहे इनकी खुराक हैं, इसलिए मकानों के आस-पास मिल जाते हैं और करैत के धोखे में मार डाले जाते हैं। उन सांपों की लम्बाई लगभग 2 फुट होती है। इन सांपों के तीन प्रमुख प्रकार हैं:

(166) **साधारण वृक सांप,**
(167) **धारीदार वृक सांप,**
(168) **पीले चित्ते वाला वृक सांप।**

169–मुंडेरदार सांप

मुंडेरदार सांपों के चार वंश भारतवर्ष में पाए जाते हैं। इन सांपों की लम्बाई 2 से 3 फुट तक होती है। इनको मुंडेरदार सांप इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनकी पीठ के सब शल्कों में मुंडेर सी होती हैं। इन मुंडेरों के कारण इनकी पीठ बड़ी खुरखुरी होती है।

ये सांप सारे भारत में पाए जाते हैं और फुरसा की तरह क्रोधी होते हैं। पानी के किनारे ान के खेतों में से प्रायः ये आदमियों को काट खाते हैं।

170–पनिहा सांप

पनिहा सांप ताजे पानी के सांप हैं। इन सांपों के सब प्रकार निर्विष होते हैं। वे अच्छे तैराक होते हैं और उनके नथुने थूथन के ऊपर होते हैं, जिनसे तैरते समद सांस लेने में सुविधा होती है। भारत वर्ष में पनिहा सांप पांच प्रकार के होते हैं। ये समुद्र के निकट की नदियों, ज्वारभाटा आने वाली नदियों की तथा गंगा और जमुना के दलदल में मिलते हैं। काटने की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं होती। मछुओं द्वारा पकड़े जाने पर भी इनकी इच्छा छूट कर भाग जाने की होती है।

● सहायक सन्दर्भ-ग्रन्थ

लेखक ने 'भारत के वन्य पशु' की रचना में अपने व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभव के अतिरिक्त निम्नांकित पुस्तकों से सहायता ली है। विस्तृत तथा गहन अध्ययन के लिए ये पुस्तकें बड़ी उपयोगी होंगी और इसलिए इनकी सूची यहां दी जाती है:—

1. The Royal Natural History in 6 vols—Richard Lydekker.
2. The Natural History of Animals in 8 vols.—Davis.
3. Wonders of Nature—Adhams.
4. Tiger and other game—A. E. Stewart.
5. Wild Animals in Central India—A. A. Dunbar Brander.
6. 13 Years Among the Wild Beasts of India—Sanderson.
7. Snakes of the World—R. L. Ditmars.
8. The Snakes of India—K. G. Ghorpurey.
9. Jungle Folk—D. Dewar.
10. Man Eaters and Other Denizens of the Indian Jungle—Silver Hackle.
11. With a Camera in Tiger Land—F. W. Champion.
12. Man Eaters of Kumayun—Jim Corbett.
13. Man Eating Leopard of Rudra Prayag—Jim Corbett.
14. Temple Tiger and other Man Eaters of Kumayun—Jim Corbett.
15. Wild Beasts and Their Ways—Sir Samuel Baker.
16. Wood's Natural History.
17. Rifle and Romance in the Indian Jungle—A.I.R. Glasfurd.

M166DPD/64—21-7-67—GIPF.